KESAVA-GRANTHAVALI

1977

Pt. 1

G. K. V.

HARDWAR

केशव-ग्रंथावली

[खंड १]

सम्पादक

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
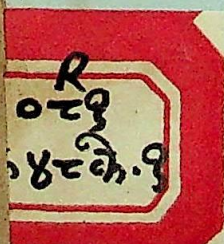
[हिं]दुस्तानी एकेडेमी

उत्तर प्रदेश इलाहाबाद

केशव-ग्रंथावली

खंड १

[रसिकप्रिया और कविप्रिया]

प्रथम संस्करण : १९५४
द्वितीय संस्करण : १९७७, ११०० प्रतियाँ
प्रकाशक : हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद
मुद्रक : सरयू प्रसाद पाण्डेय
नागरी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद
~~मूल्य : दस रुपये~~

प्रकाशकीय

हिन्दुस्तानी एकेडेमी की एक योजना रही है कि हिंदी के प्रमुख कवियों की समस्त रचनाओं के ऐसे संस्करण प्रकाशित किए जाएँ जिनके पाठ यथासंभव प्रामाणिक तथा सुसंपादित हों। इस योजना के अंतर्गत एकेडेमी से 'जायसी-ग्रंथावली' तथा 'तुलसी-ग्रंथावली' (खंड १) का प्रकाशन हो चुका है अब केशव-ग्रंथावली' (खंड १) इस क्रम की नई कड़ी के रूप में पाठकों के समक्ष है।

'केशव-ग्रंथावली' का संपादन अधिकारी विद्वान् श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अनेक नई और पुरानी छपी तथा हस्तलिखित पोथियों के आधार पर किया है, जिसमें 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'रामचंद्रचंद्रिका', 'छंदमाला', 'शिखनख', 'रतनबावनी', 'वीरसिंहदेवचरित', 'जहाँगीरजसचंद्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' ये नौ रचनाएँ सम्मिलित हैं। पूरी ग्रंथावली के तीन खंडों में प्रकाशन का आयोजन है। इस खंड में केशव की दो रचनाएँ 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' प्रस्तुत हैं।

आचार्य और कवि केशवदास हिंदी की विभूति हैं। दुःख है कि अभी तक इनके ग्रंथों का सुसंपादित संस्करण प्रकाश में नहीं आ सका था। आशा है प्रस्तुत ग्रंथावली के संपूर्ण होने पर हिंदी के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति होगी।

हिंदुस्तानी एकेडेमी,
उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद
सितंबर, १९५४

धीरेंद्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

दूसरे संस्करण का प्रकाशकीय

हिन्दी के अधिकारी विद्वान आचार्य श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र के इस ग्रन्थ 'केशव ग्रन्थावली' का दूसरा संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने इस ग्रन्थ का पहला संस्करण सन् १९५४ में प्रकाशित किया था।

यह ग्रन्थ कई विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में निर्धारित है। विश्वास है, यह संस्करण भी विद्वज्जनों, विद्यार्थियों और सुधी पाठकों के बीच समादृत होगा।

उमाशंकर शुक्ल
सचिव तथा कोषाध्यक्ष

जुलाई, १९७७

ग्रंथ-सूची

संकेत

रसिकप्रिया

बाल०—बालकृष्णदासजी (ग्रंथस्वामी) का हस्तलेख, सं० १७२२ ।

बाल० खं०—बालकृष्णदासजी का खंडित हस्तलेख, पुष्पिका खंडित ।

रस०—रसगाहकचंद्रिका का हस्तलेख, टीकाकार सूरति मिश्र, १७९० के आसपास निर्मित ।

नवल०—नवलकिशोर प्रेस की मुद्रित प्रति, टीकाकार सरदार कवि, सं० १९०३ में निर्मित ।

कविप्रिया

बाल०—बालकृष्णदासजी का हस्तलेख, सं० १७२४ ।

याज्ञिक०—याज्ञिक-संग्रह (काशी नागरीप्रचारिणी सभा) का हस्तलेख, सं० १७५८ ।

याज्ञिक अ०—याज्ञिक-संग्रह का अपूर्ण हस्तलेख, लिपिकाल अज्ञात ।

सहज०—सहजरामचंद्रिका का हस्तलेख, टीकाकार राम कवि, सं० १८३४ में निर्मित ।

हरि०—हरिचरणदास की कविप्रियाभरण टीका (मुद्रित), सं० १८३५ में निर्मित ।

लाला०—लाला भगवानदीनजी का हस्तलेख, लिपिकाल अनुल्लिखित ।

सरदार०—सरदार कवि की टीका (मुद्रित), सं० १९११ में निर्मित ।

दीन०—दीनजी की प्रियाप्रकाश टीका, सं० १९८२ में मुद्रित ।

रत्ना०—रत्नाकरजी द्वारा सं० १७२४ के हस्तलेख से संपादित 'नखशिख' (मुद्रित) ।

अन्यत्र—अन्य संग्रहादि के हस्तलेख ।

वही—पूर्वगामी संकेत ।

ष़—ख ।

रसिकप्रिया

१

अथ मंगलाचरण

श्री गणेश-वंदना–(छप्पय)

एक-रदन, गजबदन, सदनबुधि, मदन-कदन-सुत ।
गौरि-नंद आनंद-कंद, जग-बंद, चंद-युत ।
सुख-दायक, दायक-सुकीर्ति, जगनायक-नायक ।
खल-घायक, घायक-दरिद्र सब लायक-लायक ।
गुरु-गुन अनंत, भगवंत-भव, भनतिवंत भव-भय-हरन ।
जय केसवदास निवास-निधि, लंबोदर, असरन-सरन ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण वंदना–(छप्पय)

श्रीबृषभानु-कुमारि-हेत सृंगार-रूप भय ।
बास हास-रस हरे, मातु-बंधन करुनामय ।
केसो-प्रति अति रौद्र, बीर मारो बत्सासुर ।
भय दावानल-पान, पियो बीभत्स बकी-उर ।
अति अदभुत बंचि बिरंचि-मति, सांत संततै सोच चित ।
कहि केसव सेवहु रसिक जन, नवरसमय ब्रजराज नित ॥ २ ॥

अथ कवि-वर्णन–(दोहा)

नदी बेतवै-तीर जहँ, तीरथ तुंगारन्य ।
नगर ओड़छो बहु बसै, धरनीतल में धन्य ॥ ३ ॥
आस्रम चारि बसे जहाँ, चारि बर्न सुभ कर्म ।
जप, तप, विद्या बेद-बिधि, सबै बढ़े धन धर्म ॥ ४ ॥

---

[१] गौरि-गवरि (रस०) । युत-जुत (रस०) । दायक-दाइक (रस०) । सुकीर्ति-सुकृति (रस०) । जग-गरण (रस०) । गुरु-गुन-गुन-गन (रस०) ।

[२] रौद्र-रुद्र (रस०) । मारो-मारचो (रस०) । पियो-कियो (रस०) । संततै-सुसंतत (रस०) । [३] जहँ-तहँ (रस०) । [४] बसे-बसें (रस०) ।

दिन प्रति जहँ दूनो लहैं, जहाँ दया अरु दान।
एक तहाँ 'केसव' सुकवि, जानत सकल जहान॥ ५ ॥
अपने अपने धर्म तहँ सबै सदा सुखकारि।
जासों देस विदेस के रहै सबै नृप हारि॥ ६ ॥
रच्यो बिरंचि बिचारि तहँ, नृपमनि मधुकर साहि।
गहरवार कासीस-रवि, कुल-मंडन जसु जाहि॥ ७ ॥
ताको पुत्र प्रसिद्ध महिमंडन दूलहराम।
इंद्रजीत ताको अनुज, सकल धर्म को धाम॥ ८ ॥
दीन्ही ताहि नृसिंह जू तन मन रन जय सिद्धि।
हित करि लच्छन-राम ज्यों भई राज की बृद्धि॥ ९ ॥
तिन कवि केसवदास सों कीन्हो धर्म-सनेहु।
सब सुख दै करि यों कह्यो, 'रसिकप्रिया' करि देहु॥ १० ॥
संवत सोरह सै बरष बीते अठतालीस।
कातिग सुदि तिथि सप्तमी बार बरनि रजनीस॥ ११ ॥
अति रति-गति मति एक करि, बिबिध बिवेक बिलास।
रसिकन कों रसिकप्रिया कीनो केसवदास॥ १२ ॥
ज्यों बिनु डीठि न सोभिजै लोचन लोल बिसाल।
त्यों हो 'केसव' सकल कबि, बिनु बानी न रसाल॥ १३ ॥
तातें रुचि सों साचि पचि कीजै सरस कवित्त।
'केसव' स्याम सुजान को, सुनत होइ बस चित्त॥ १४ ॥

अथ नवरस-वर्णन—(दोहा)

प्रथम सिंगार सुहास्य-रस करुना-रुद्र सुबीर।
भय बीभत्स बखानियँ अद्भुत सात सुधीर॥ १५ ॥
नवहू रस के भाव बहु, तिनके भिन्न बिचार।
सबको 'केसवदास', हरि नायक है सृंगार॥ १६ ॥

अथ शृंगाररस-लक्षण—(दोहा)

रति मति को अति चातुरी, रतिपति मंत्र बिचार।
ताही सों सब कहत हैं कबि कोबिद सृंगार॥ १७ ॥

---

[९] की—सों (रस०)। कीन्हो०—कियौ धर्म सों नेहु (रस०)।
[१३] सोभिजै-सोभियै (रस०)। न०—निरसाल (रस०)।

अथ शृंगार के भेद—(दोहा)

सुभ संजोग बियोग पुनि द्वै सिंगार की जाति।
पुनि प्रच्छन्न प्रकास करि, दोऊ द्वै द्वै भाँति ॥१८॥

अथ प्रच्छन्न-संयोग-शृंगार-लक्षण—(दोहा)

सो प्रच्छन्न संयोग अरु, कहैं बियोग प्रमान।
जानैं पीउ पिया कि सखि होइ जु तिनहिं समान ॥१९॥

अथ प्रच्छन्न-संयोग-शृंगार—(सवैया)

बन में बृषभानु-कुमारि मुरारि रमैं रुचि सों रस-रूप पियें।
कल कूजत पूजत काम-कला बिपरीत रची रति केलि कियें।
मनि सोभित स्याम जराइ जरी अति चौकी चलै चल चारु हियें।
मखतूल के झूल झुलावत 'केसव' भानु मनों सनि अंक लियें ॥२०॥

अथ प्रकाश-संयोग औ प्रकाश-वियोग-लक्षण—(दोहा)

सो प्रकास-संयोग अरु, कहैं प्रकास-बियोग।
अपने अपने चित्त में जानैं सिगरे लोग ॥२१॥

अथ प्रकाश-संयोग, यथा—(सवैया)

'केसव' एक समै हरि-राधिका आसन एक लसैं रँग-भीनें।
आनंद सों तिय-आनन की दुति देखत दर्पन में दृग दीनें।
भाल के लाल में बाल बिलोकितहीं भरि लालन लोचन लीनें।
सासन पीय सबासन सीय हुतासन में मनों आसन कीनें ॥२२॥

अथ श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न-वियोग-शृंगार, यथा—(सवैया)

कीट ज्यों काटत काननि कान्ह सों मानहूँ में कहि आवति ऊनो।
ताहि चलें सुनि कै चुप ह्वै रहे नीकहिं 'केसव' एक न दूनो।
नेक अटें पट फूटति आँखि सु देखति हैं कब को ब्रज सूनो।
काहे कों काहू को कीजै परेखोऽब जीजे री जीव की नाक दै चूनो ॥२३॥

अथ राधिका को प्रकाश-वियोग-शृंगार, यथा—(सवैया)

जिनके मुख की दुति देखत ही निसि-बासर 'केसव' दीठि अटी।
पुनि प्रेम-बढ़ावन की बतियाँ तजि आन कछू रसना न रटी।

---

[२२] रंग-रस (रस०)। में दृग-त्यौं दृग (बाल०), सौं दृग (रस०)। सवा-सन-सवासिन (नवल०)। [२३] राधिका-प्रिया (रस०)। रहे-गए (नवल०)। एकन-एकहि (नवल०)।

जिनके पद पानि उरोज-सरोज हिये धरि कै पल नैन घटी।
तिनके सँग छूटत ही फटु रे हिय तोहिं कहा न दरार फटी ॥२४॥

(कवित्त)

सीतल समीर टारि चंद्र-चंद्रिका निवारि
'केसोदास' ऐसें ही तो हरषु हिरातु है।
फूलन फैलाइ डारि झारि डारि घनसारु
चंदन कों ढारि चित्तु चौगुनो पिरातु है।
नीर-हीन मीन मुरझाइ जीवै नीर ही तें
छीर छिरके तें कहा धीरजु धिरातु है।
पाई है तैं पीर किधौं यों ही उपचारु करै,
आगि को तौ डाढ्यो आँगु आगि ही सिरातु है ॥२५॥

श्रीकृष्ण को प्रच्छन्न-वियोग, शृंगार-यथा—(सवैया)

'केसव' रूठि रह्यो तुमहीं सों किधौं भय काहू के भीत भयो है।
बेच्यो है काहू के हाथनि नाथ किधौं तुम काहू के साथ दयो है।
मेरी सौं मोसहुँ मानहु वेगि इहाँ मनु नाहिं कहाँ पठयो है।
साँची कहौ हरि हारयो है काहू सों काहू हर्यो कि हिराइ गयो है ॥२६॥

श्रीकृष्ण को प्रकाश-वियोग-शृंगार यथा—(सवैया)

बात कहैं न सुनैं कछु काहू त्यों हेरें नहीं कोउ कैसेहूँ हेरो।
खाइं कछू न पियैं कछु केसो छुवैं न कछू कर कौरौ करेरो।
हूलि उठी ब्रज बैठी कहा उठि आवहु देखि कह्यो करि मेरो।
जानै को माइ कहा भयो कान्ह को जोग-संयोग बियोग कि तेरो ॥२७॥

(दोहा)

यों परछन्न प्रकास बिधि बरने जोग बियोग।
अब नायक-लच्छन कहौं गूढ़-अगूढ़ प्रयोग ॥

इति श्री मन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां प्रच्छन्नप्रकाशसंयोगवियोग-वर्णन नाम प्रथमः प्रभावः ॥१॥

---

[२४] यह 'बाल०' में नहीं है। [२५] डारि-डोर (नवल०)। ढारि-टा- (बाल०)। मुरझाइ-मुरझाति (बाल०)। तैं-पै (बाल०)।

[२८] 'बाल० खं०' में यह दोहा और है—
सुभग सवैया षट करे पुनि दोहा उनईस। केसव प्रथम प्रभाव में रसिकप्रिया के ईस ॥

२

अथ साधारण-नायक-लक्षण—(दोहा)

अभिमानी त्यागी तरुन, कोक-कलानि प्रबीन।
भव्य छमी सुंदर धनी सुचि-रुचि सदा कुलीन ॥ १ ॥
ये गुन 'केसव' जासु में सोई नायक जानि।
अनुकुल दछ सठ धृष्ट पुनि चौबिधि ताहि बखानि ॥ २ ॥
प्रीति करै निज नारि सों, पर-नारी-प्रतिकूल।
'केसव' मन-बच-कर्म करि, सो कहियै अनुकूल ॥ ३ ॥

अथ प्रच्छन्न-अनुकूल, यथा—(सवैया)

और के हास बिलास न भावत साधुनि को यह सिद्ध सुभावै।
बात वहै जु सदा निबहै हरि कोऊ कहूँ कछु सोधु न पावै ॥
आसन बास सुबासन भूषन 'केसव' क्यौं हूँ यहौ बनि आवै।
मो बिनु पान न खात जु कान्ह सु बैरु किधौं यह प्रीति कहावै ॥ ४ ॥

अथ प्रकाश अनुकूल, यथा—(सवैया)

'केसव' सूधे बिलोचन सूधी बिलोकनि कों अवलोकें सदाई।
सूधियै बात सुनें समुझें कहि आवति सूधियै बात सुहाई ॥
सूधी सी हाँसी सुधानिधि सो मुख सोधि लई बसुधा की सुधाई।
सूधे सुभाइ सबै सजनी बस कैसें किये अति टेढ़े कन्हाई ॥ ५ ॥

अन्यच्च—(सवैया)

मेरें तौ नाहिन चंचल लोचन नाहिन 'केसव' बानी सुधाई।
जानौं न भूषन-भेद के भावनि भूलिहू मैं नहिं भौंह चढ़ाई ॥
भोरेहूँ ना चितयो हरि-ओर त्यों घैरु करैं इहिं भाँति लुगाई।
रंचक तौ चतुराई न चित्तहिं कान्ह भए बस काहे तें माई ॥ ६ ॥

अथ दक्षिण-लक्षण—(दोहा)

पहिलौ सो हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि।
चित्त चलें हूँ ना चलै, दच्छिन-लच्छन जानि ॥ ७ ॥

अथ प्रच्छन्न-दक्षिण, यथा—(कवित्त)

हरि से हितू सों भ्रम भूलिहू न कीजै मान,
हातो कियें हिय हूँ तें होति हित हानियें।

[१] कोक-केलि (बाल० खं०, रस०)। [२] अनुकुल-अतुल (नवल०)। चौबिधि०-चारि प्रकार (बाल० खं०)। [५] सूधियै-सूधी सी (बाल०)। सुधानिधि-सुधाकर (नवल०)। [६] भेद०-भाव के भेदनि (बाल० खं०)।

लोक में अलोक आनि नीकेहूँ कों लागतु है,
सीता जू को दूत गीत कैसें उर आनियें।
आँखिन जो देखियत सोई सांची 'केसौदास',
काननि की सुनी साँची कबहूँ न मानिय।
गोकुल की कुलटा ये यों हीं उलटावति हैं,
आजु लौं तौ वैसेई हैं कालि की न जानियें ॥८॥

अथ प्रकाश-दक्षिण, यथा–(सवैया)

चित चोंप चितैबे की तैसियै है अरु तैसियै भांति डरात घनै।
अरु तैसेई कोमल बोल गुपाल के मोहत हैं तिहि भाँति मनै।
गुन तैसेई, हास-बिलास सबै हुते तैसेई 'केसव' कौन गनै।
सखि तू कहै आन बधू के अधीन हैं सो परतीक किधों सपनै ॥९॥
बहि अंतर गूढ़-अगूढ़ निरंतर काम-कला कुल कौन गनै।
कहि 'केसव' हास-बिलास सबै प्रतिद्यौस बढ़े रसरीति सनै॥
जिनको जिय मेरई जीव जियें सखि काय मनो बच प्रीति घनै।
तिनकों कहै आन बधू के अधीन हैं सो परतीक किधौं सपनै ॥१०॥

अथ शठ-लक्षण–(दोहा)

मुँह मीठी बातैं कहै, निपट कपट जिय जानि।
जाहि न डरु अपराध को, सठ करि ताहि बखानि ॥११॥

अथ प्रच्छन्न-शठ, यथा–(सवैया)

रुचि पंकज चंदन बंदन कंचन रंचन रोचन हूँ की बची।
कहियै किहिं कारन को इते लायक का पर भामिनि भौंह नची॥
अनुमानत हौं अँखियाँ लखि लाल ये नाहिं नै राति के रोष रची।
तन तेरे बियोग तप्यो तरुनी तिहि मानहुँ मो हिय माँह तची ॥१२॥

अथ प्रकाश-शठ, यथा–(कवित्त)

काननि के रगे रंग नैननि के डोलौ संग,
नासा अंग रसना के रसहीं समाने हो।
और गूढ़ कहा कहौं सूढ़ हौ जू ? जानि जाहु,
प्रौढ़रूढ़ 'केसोदास' नीकें करि जाने हौ।
तन आन मन आन, कपट-निधान कान्ह,
साँची कहौ मेरी आन काहे कौं डराने हौ।

[८] नीके०-नीक हू लगावत हैं (नवल०)। की न-कहा (नवल०)।
[१०] प्रीति-प्रेम (रस०)।

तौ हैं बिकानो हाथ मेरें हौं तिहारें हाथ,
तुम ब्रजनाथ हाथ कौन के बिकाने हौ ? ॥१३॥

अथ धृष्ट-लक्षण—(दोहा)

लाज न गारिहु मार की छाँड़ि दई सब त्रास।
देख्यौ दोष न मानही धृष्ट सु कहियै तास ॥१४॥

अथ प्रच्छन्न-धृष्ट, यथा—(सवैया)

नेह भरे लै लै भाजत भाजन कौन गनै दधि दूध मठाए।
गारि दिये तें हँसैं बरज घर आवत हैं जनु बोलि पठाए।
लाज की और कहा कहौं 'केसव' जे सुनियें ते सबै गुन ठाए।
मामी पियै इनकी मेरि माइ को हैं हरि आठहुँ गाँठ अठाए ॥१५॥

अथ प्रकाश-धृष्ट, लक्षण—(दोहा)

मनसा बाचा कर्मना बिहसनि चितवनि लेखि।
चलनि चातुरी आतुरी आठौं गांठि बिसेषि ॥१६॥

अथ प्रकाश-धृष्ट, यथा—(सवैया)

सौंह को सोचु सकोचु न पांच को डोलत साहु भए करि चोरी।
बैननि बंचकताई रची रति नैनन के संग डोलति डोरी।
लाज करै न डरे हित-हानि तें आनि अरे जिय जानि कै भोरी।
नाहिनै 'केसव' साख जिन्हैं बकि कै तिन सों दुखवै मुख को री ॥१७॥

(दोहा)

बरने कबि-नायक सबै, नायक इहि अनुसार।
सब-गुन-लायक नायिका सुनि अब बहुत प्रकार ॥१८॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां चतुर्विधनायकप्रच्छन्नप्रकाश-वर्णनं नाम द्वितीयः प्रभावः ॥२॥

---

[१४] कहियै०—केशवदास (बाल०, नवल०)। मीमी-मीमी (रस०)।
[१६] कै तिन-ऐसि न (बाल० खं०)। [१७] बाल० में नहीं है।

३

अथ नायिका-जाति-वर्णन—(दोहा)

प्रथम पद्मिनी चित्रनी, जुवती जाति प्रमान।
बहुरि संखनी हस्तिनी 'केसवदास' बखान ॥ १ ॥

अथ पद्मिनी-लक्षण—(दोहा)

सहज सुगंध सरूप सुभ, पुन्य प्रेम सुखदानि।
तनु तनु भोजन रोष रति, निद्रा मान बखानि ॥ २ ॥
सलज सुबुद्धि उदार मृदु हास बास सुचि अंग।
अमल अलोम अनंग-भुव पदमिनि हाटक-रंग ॥ ३ ॥

पद्मिनी, यथा—(कवित्त)

हँसत कहत बात फूल से झरत जात,
गूढ़ भूरि हाव भाव कोक की सी कारिका।
पन्नगी नगी-कुमारि आसुरी सुरी निहारि
डारौं वारि किन्नरी नरी गँवारि नारिका।
ता पै हौं कहा ह्वै जाउं बलि जाउं 'केसोदास',
रची विधि एक ब्रजलोचन की तारिका।
भौंर से भंवत अभिलाष लाख भाँति दिव्य,
चंपे की सी कली बृषभान की कुमारिका ॥ ४ ॥

अथ चित्रिणी लक्षण—(दोहा)

नृत्य गीत कबिता रुचै, अचल चित्त चल दृष्टि।
बहिरति रति अति सुरत-जल मुख सुगंध की सृष्टि ॥ ५ ॥
विरल लोम तन मदन-गृह, भावत सकल सुबास।
मित्र-चित्र-प्रिय चित्रनी, जानहु 'केसवदास' ॥ ६ ॥

चित्रिणी, यथा—(सवैया)

बोलिबो बोलनि को सुनिबो अवलोकनि कै अवलोकनि जो ते।
नाचिबो गाइबो बीन बजाइबो रीझि रिझाइ को जानति तो ते ॥
राग बिरागनि के परिरंभन हास-बिलासनि तें रति कोते।
तौ मिलतौ हरि मित्रहिं कों सखि! ऐसे चरित्र जौ चित्र मैं होते ॥ ७ ॥

---

[१] केसवदास—केसवराइ (बाल०, रस०)। [२] बखान—सुजान (बाल०)
[३] सलज—सहज (बाल० खं०)। [४] भंवत—भ्रमत (रस०)।
[५] बहिरति—विहरत (बाल०)। मुख-मधु (बाल०, रस०)।

अथ शंखिनी लक्षण–(दोहा)

कोपसील कोबिद-कपट, सलज सलोम-सरीर।
असन-बसन नखदान-रुचि, निलज निसंक अधीर॥ ८॥
छार-गंधजुत मार-जल, तप्त भूरि भग होइ।
सुरतारति अति संखनी, बरनत हैं सब कोइ॥ ९॥

शंखिनी, यथा–(सवैया)

जातु नहीं कदली की गलीनि भली बिधि लै बदरी मुँह लावै।
चाहै न चंपकली की थली मलिनी नलिनी की दिसा नहि धावै।
जो कोउ 'केसव' नाग-लवंगलता-लवली-अवलीनि चरावै।
खारक दाख खवाइ मरौ कोउ ऊँटहि ऊँट-कटारोई भावै॥ १०॥

अथ हस्तिनी-लक्षण–(दोहा)

थूल अंगुरी चरन मुख अधर भृकुटि कटि बोल।
मदन-सदन रद कंधरा मंद चालि चित लोल॥ ११॥
स्वेद मदन-जल द्विरद-मद-गंधित भूरे केस।
अति तीछन बहु लोम तन, भनि हस्तिनि इभ-भेस॥ १२॥

हस्तिनी, यथा–(सवैया)

सब देह भई दुरगंधमई मति अंध दई सुख पावत कैसे।
कछु साल तें लोम बिसाल से हैं श्रुति ताड़न 'केसव' बोल अनैसे।
अलि ज्यों मलिनी नलिनी तजि कै करिनी के कपोलनि मंडित तैसे।
छिति छोड़ि कै राजिसिरी बस-पाप निरै-पद राज बिराजत जैसे॥ १३॥

(दोहा)

ता नायक की नायिका, ग्रंथनि तीन प्रमान।
स्वीया परकीया अवर स्वीया परकीया न॥ १४॥

अथ स्वकीया-लक्षण–(दोहा)

सँपति बिपति जो मरत हू, सदा एक अनुहारि।
ताहि सुकीया जानियै, मन-क्रम-बचन बिचारि॥ १५॥

स्वकीया-भेद–(दोहा)

मुग्धा मध्या प्रौढ़ गति, तिनकी तीनि बिचारि।
एक एक की जानियहु, चारि चारि अनुहारि॥ १६॥

---

[१०] लै–हो (नवल०)। दिसा०–दिसानि सिधावै (नवल०)। ऊँट०–ऊँट कटेरोई (रस०)।
[११] कटि-कटु (नवल०)।

मुग्धा-भेद—(दोहा)

नवलबधू नवयौवना, नवलअनंगा नाम।
लज्जा लियें जु रति करै, लज्जाप्राय सु बाम॥१७॥
तासों मुग्धा नवबधू, कहैं सयाने लोइ।
दिन दिन दुति दूनी बढ़ै, बरनि कहै कबि कोई॥१८॥

यथा—(सवैया)

मोहिबो मोहन की गति को गति ही पढ़ो बैन कहा धौं पढ़ैगी।
ओप उरोजनि की उपजे दिन काहि मढ़ै अँगिया न मढ़ैगी।
नैननि की गति गूढ़ चलाचल 'केसवदास' अकास चढ़ैगी।
माई कहाँ यह माइगी दीपति जौ दिन द्वै इहि भाँति बढ़ैगी॥१९॥

अथ नवयौवना-भूषिता-मुग्धा-लक्षण—(दोहा)

सो नवजोबनभूषिता मुग्धा को यह वेस।
बाल-दसा निकसै जहाँ जोबन को परवेस॥२०॥

यथा—(सवैया)

'केसव' फूलि नची भृकुटी कटि लूटि नितंब लई बहु काली।
बननि सोच सँकोच सु नैननि छूटि गई गति की चल चाली।
द्योसक धीर धरौ न धरौ अब लै तुम कों मिलिबो बनमाली।
वाको अयान निकारन कौं उर आए हैं जोबन के अबिताली॥२१॥

अथ नवलअनंगा-मुग्धा-लक्षण—(दोहा)

नवलअनंगा होइ सो, मुग्धा 'केसवदास'।
खेलै बोलै बाल-बिधि, हँसै त्रसै सबिलास॥२२॥

यथा—(कबित्त)

चंचल न हूजै नाथ, अंचल न ऐंचौ हाथ,
　　सोवै नेक सारिकाहू सुक तौ सुवायो जू।
मंद करौं दीप-दुति चंद-मुख देखियत,
　　दौरि कै दुराइ आऊँ द्वारि त्यों दिखायो जू।
मृगज-मराल-बाल बाहिरै बिडारि देहुँ,
　　भायौ तुम्हैं 'केसव' सु मोहू मन भायो जू।

---

[१८] तासों—जासों (नवल०)। कोइ—सोइ (नवल०)।
[२१] नची-नचैं (नवल०)। मिलिबो-मिलऊं (बाल० खं०). मिलिबै (नवल०)।
[२१] इसके बाद निम्नलिखित छंद 'बाल० खं०' तथा 'रस' में अधिक है—

छल के निवास ऐसे बचन-बिलास सुनि,
चौगुनो सुरति हूँ तें स्याम सुख पायो जू ॥२३॥

अथ लज्जाप्राया रतिमुग्धा-लक्षण–(दोहा)

मुग्धा लज्जाप्राय-रति, बरनत कबि इहिं रीति।
करै जु रति अति लाज सों पतिहिं बढ़ावति प्रीति ॥२४॥

यथा–(सवैया)

बोली न हौं वे बुलाइ रहे हरि पाइ परे अरु ओलियौ ओड़ी।
'केसव' भेटिबे कौं भरि अंक छुड़ाइ रहे जक हौं नहिं छोड़ी।
सूधें चितैबे कौं केतो कियो सिर चाँपि उठाइ अँगूठनि ठोड़ी।
मैं भरि चित्त तऊ चितयो न रही गड़ि नैननि लाज निगोड़ी ॥२५॥

मुग्धाशयन-लक्षण–(दोहा)

मुग्धा सोइ रहै नहीं पिय-सँग सुनहु सुजान।
जौ क्योंहूँ सोवै सखी! सुख नहिं ताहि समान ॥२६॥

यथा–(सवैया)

पाइ परें मनुहारि कियें पलिका पर पाइ धरे भय-भीने।
सोइ गई कहि 'केशव' कैसहूँ कोरहिं कोरिक सौहनि कीने।
साहस कै मुख सों मुख छ्वै छिन में हरि मानि सबै सुख लीने।
एक उसासहिं के उससें सिगरेई सुगन्ध बिदा करि दीने ॥२७॥

धनु-भ्रू धरि लोचन लोलत मेल सु कांड कटाछ की कोर कढ़ी।
मुख माधुरी बानी बसी चतुराई सु 'केसव' मोहन तासु पढ़ी।
कुच तंबू तनें तन लाज बिराजति बार गहै चहुँ ओर मढ़ी।
न बढ़ी दुति बालहिं बालकता हति अंग अनंग की फौज चढ़ी।

मुकता मनिनि की है मुकति-पुरी सी नाक
दारयों दंत दाननि कों हंसती बतीसी है
मोहन के मंत्रनि के अषरानि की सी रेख।
भृकुटी सुबेष भावभेद छबि छी सी है।
चित चतुराई उझकी सी उझके से उर
कुच सकुचौ तौ नयननि उझकी सी है।
'केसोदास' रूप की सी साला प्रेम की सी माला
आजु लौं न देखी सुनी जैसी आजु दीसी है॥

[२३] त्यों–तौ (नवल०)। [२५] हौं नहिं–मैं पै न (बाल०, रस०)। गड़ि–गहि (बाल०)। [२७] कियें–करैं (बाल०, नवल०)। कोरहिं०–सबै करोरहूँ (नवल०)। सबै–महा (नवल०)।

मुग्धा को सुरतु-लक्षण–(दोहा)

मुग्धा सुरत करै नहीं, सपनेहूँ सुख मानि।
छल बल कीने होति है, सुख-शोभा की हानि ॥२८॥

यथा–(कबित्त)

सुखदै सखीनि बीच दै कै सौं हैं घ्याइ कै,
खवाइ कछू स्वाइ बस कीनो बरबसु है।
कोमल मृनालिका सी मल्लिका की मालिका सी,
बालिका जु डारी मीड़ि मानुसु कि पसु है।
जानै न बिभात भयो 'केसव' सुनै को बात,
देखौ आनि गात जात भयो किधौं असु है।
चित्र सी जु राखी वह चित्रनी बिचित्र यह,
देखौ धौं नए रसिक या में कौन रसु है ॥२९॥

मुग्धा को मानु–(दोहा)

मुग्धा मान करै नहीं, करै तौ सुनहू सुजान।
त्यों डरपाइ छुड़ाइयै ज्यों डरपै अज्ञान ॥३०॥

यथा–(सवैया)

बोलै न बाल बुलावतहूँ नख-रेख लिखै भुव प्रेम परेखौ।
आपनो हाथ बिलोकि बिलोकि कही तब 'केसव' बुद्धि बिसेखौ।
छोटी बड़ी बिधि-रेख लिखी जुग आयु की रेख सु कौन जु लेखौ।
प्रेम तें बोल सह्यो न पस्यो अकुलाइ कह्यो पिय कैसो है देखौ ॥३१॥

अथ मध्या के चतुर्भेद–(दोहा)

मध्या आरुढ़जोबना, प्रगलभबचना जानि।
प्रादुर्भूत मनोभवा, सुरति-बिचित्रा आनि ॥३२॥

अथ मध्या-आरूढ़यौवना-लक्षण–(दोहा)

मध्या-आरुढ़जोबना पूरन जोबनवंत।
भाग सुहाग भरी सदा, भावति है मन-कंत ॥३३॥

यथा–(कबित्त)

चंद को सो भाग भाल भृकुटी कमान ऐसी,
मैन कैसे पैन सर नैननि बिलासु है।

---

[२८] सुख-सिख (बाल०)।
[२९] वह–ग्रति (बाल० खं०); गति (नवल०)। देखौ–कहि (बाल० खं०)।
[३०] सुजान–निदान (बाल०)। त्यों–यों (रस०. बाल० खं०); ज्यों (बाल०)।

नासिका सरोज, गंधबाह से सुगंध बाह,
दारयों से दसन 'केसो' बीजुरी सो हासु है।
भौंहैं ऐसी ग्रींव-भुज, पान सो उदर अरु,
पंकज से पाइ गति हंस की सी जासु है।
देखी है गुपाल एक गोपिका मैं देवता सी,
सोने सो सरीर सब सोंधे को सो बासु है ।।३४।।

अथ प्रगल्भवचना-मध्या-लक्षण–(दोहा)

प्रगलभबचना जानि तिहिं, बरनौं 'केसवदास'।
बचननि माँझ उराहनो, देइ दिखावे त्रास ।।३५।।

यथा–(सवैया)

कान्ह भले जु भले ढँग लागे भलें इन्ह नैननि के रँग रागे।
जानति हौं सबही तुम जानत आपु से 'केसव' लालच लागे।
जाहु नहीं अहो जाहू चले हरि जात जितै दिनहीं बनि बागे।
देखि कहा रहे धोखें परे उबटोगे जू देखौऽब देखहु आगे ।।३६।।

अथ प्रादुर्भूतमनोभवा-मध्या-लक्षण–(दोहा)

प्रादुर्भूतमनोभवा मध्या कहौं बखानि।
तन मन भूषित सोभियै 'केसव' काम-कलानि ।।३७।।

यथा–(सवैया)

आजु मैं देखी है गोप सुता इक, होइ न ऐसी अहीर की जाई।
देखत हीं रहियै दुति देह की देखे तें और न देखी सुहाई।
एक हीं बंक बिलोकनि ऊपर वारैं बिलोकि त्रिलोक-निकाई।
'केसवदास' कलानिधि सो बर बूझियै काम कि मेरी कन्हाई ।।३८।।

अथ सुरतविचित्रा-मध्या-लक्षण–(दोहा)

अति बिचित्रसुरता सु तौ जाकौ सुरत बिचित्र।
बरनत कबि-कुल कौं कठिन, सुनत सुहावे मित्र ।।३९।।

यथा–(कबित्त)

'केसोदास' सबिलास मंदहास जुत,
अबिलोकनि अलापनि को आनँद अपार है।
बहिरति सात पुनि अंतरति सात, पुनि
रति बिपरीतनि को बिबिध बिचार है।

[३४] ऐसी–की सी (बाल० खं०)।
[३६] इन्ह–ह्वै है (बाल०); ह्वै ह्वै (रस०)। जितै–जहीं (नवल०)। दिन–नित (बाल० खं०)। उबटोगे–उमिट किये देखिवें (बाल० खं०)
[३८] बूझियै–बुझिहै (नवल०)।

छूटि जात लाज तहाँ भूषन सुदेस केस,
टूटि जात हारे सब मिटत सिंगार है।
कूजि कूजि उठै रति कूजितनि सुनि खग,
सोई तौ सुरत सखी और बिवहार है ॥४०॥

अथ सात बहिर्रति-वर्णन–(दोहा)

आलिंगन, चुंबन, परस, मर्दन नख-रद-दान।
अधर-पान सों जानियै बहिरति सात सुजान ॥४१॥

अथ सात अंतर्रति-वर्णन–(दोहा)

थिति, तिर्यक, सनमुख, बिमुख, अध, ऊरध, उत्तान।
सात अंतरति समुझियै 'केसवराइ' सुजान ॥४२॥

अथ षोडश-शृंगार-वर्णन–(कबित्त)

प्रथम सकल सुचि मंजन अमल बास,
जावक सुदेस केस-पास को सुधारिबो।
अंगराग भूषन बिबिध मुख-बास-राग,
कज्जल-कलित लोल लोचन निहारिबो।
बोलन हँसनि मृदु चातुरी चितौनि चारु,
पल पल प्रति पतिव्रत प्रतिपारिबो।
'केसोदास' सबिलास करहु कुंवरि राधे,
इहिं बिधि सोरह सिंगारनि सिंगारिबो ॥४३॥

अथ सुरतांत–(सवैया)

सुंदरता पय पावक जावक पीक हियें नख-चंद नए हैं।
चंदन चित्र सुधा, बिष अंजन, टूटि सबै मनिहार गए हैं।
'केशव' नैननि नींदमई मदिरा-मद घूमत मोहमए हैं।
केलि कै नागर-नागरी प्रात उजागर सागर-भेष भए हैं ॥४४॥

अथ मध्याधीरादि-भेद-लक्षण–(दोहा)

सिगरी मध्या तीन बिधि धीरा और अधीर।
धीराधीरा तीसरी, बरनत हैं कबि धीर ॥४५॥

---

[४०] पुनि–भाँति (बाल०खं०); सुभ (बाल)। सात–पाँच (बाल० खं०)। पुनि–सुन (नवल०)। तहाँ–जहाँ (बाल० खं०, रस०)।

[४१] जानियै–समझिए (बाल०)।

[४२] उत्तान–उमान (बाल० खं०)। समुझियै–जानिए (बाल०)।

धीरा बोलै बक्र बिधि, बानी बिषम अधीर।
पिय सों देइ उराहनो सो धीरा न अधीर ॥४६॥

अथ मध्याधीरा, यथा–(सवैया)

ज्यों ज्यों हुलास सों 'केसवदास' बिलास निवास हिये अवरेख्यो।
त्यों त्यों बढ़्यो उर कंप कछू भ्रम भ्रान्ति भयो किधौं सीत बिसेख्यो।
मुद्रित होत सखी बरहीं मेरे नैन-सरोजनि साँचु कै लेख्यो।
तैं जु कह्यो मुख मोहन को अरबिंद सो है सु तौ चंद सो देख्यो ॥४७।

अथ मध्या अधीरा, यथा–(कबित्त)

तात को सो गात सब बल बलबीर को सो,
मात को सो मुख महा मोह मन भायो है।
थल सो अचल सील अनल सो चल चित्त,
जल से अमल तेज तेज को सो गायो है।
'केसोदास' बसत अकास के प्रकास घोष,
घट घट घर घर घैरु घनो छायो है।
रति की सी रति नाथ रूप रतिनाथ को सो,
कहौ केसोराइ झूठ कौन यह पायो है ॥४८॥

अथ मध्या धीराधीरा, यथा–(सवैया)

कान्ह भलें जु भलें समुझाइहौं मोह समुद्र को ज्यों उमह्यो हो।
'केसव' आपनो मानिक सो मन हाथ पराएँ दै कौने लह्यो हो।
नैननि ही मिलिबो करियै अब बैननि को मिलिबो तौ रह्यो हो।
जाइ कह्यो तुम जैसें सखीनि सों एहो गुपाल मैं ऐसें कह्यो हो ॥४९॥

अथ प्रौढ़ा-भेद चतुर्विध–(दोहा)

सुनि समस्त-रस-कोबिदा चित्र-बिभ्रमा जाति।
अति आक्रामित नायका लुब्धापति सुभ भाँति ॥५०॥

अथ समस्तरसकोविदा-लक्षण–(दोहा)

सो समस्तरसकोबिदा, कोबिद कहत बखानि।
जो रस भावै प्रीतमहि ताही रस की दानि ॥५१॥

[४६] अधीर-अमीर (नवल०)।
[४७] बढ़्यो-भयो (बाल० खं०)। भ्रांति-भीतु (बाल०, नवल०)।
[४९] अब-सब (नवल०)।
[५०] लुब्धापति-लब्धापति (बाल०)।

यथा—(कवित्त)

देखो है गुपाल एक गोपिका मैं देवता सी
सोने तें सलोनी बास सोंधे तें सुहाई है।
सोभा ही सुभाउ अवतार लियो घनश्याम
किधौं यह दामिनीयै कामिनो ह्वै आई है।
देबी कोउ मानवी न दानवी न होइ ऐसी
भानवी न हाय-भाव भारती पढ़ाई है।
'केसोदास' सब सुख साधन की सिद्धि यह
मेरे जान मैन हीं सों मेनका की जाई है ॥५२॥

अथ विचित्रविभ्रमा प्रौढ़ा-लक्षण—(दोहा)

अति बिचित्रविभ्रम सु वह प्रौढ़ा कहत बखानि।
जाकी दीपति दूतिका पियहि मिलावै आनि ॥५३॥

यथा—(सवैया)

हे गति मंद मनोहर 'केसव' आनंदकंद हियें उलहे हैं।
भौंह बिलासनि कोमल हासनि अंग सुबासनि गाढ़े गहे हैं।
बंक बिलोकनि कों अवलोकि सुमार ह्वै, नंदकुमार रहे हैं।
एई तो काम के बान कहावत फूलनि के बिधि भूलि कहे हैं ॥५४॥

अथ आक्रामित नायिका प्रौढ़ा-लक्षण—(दोहा)

सो आक्रामित नायिका प्रौढ़ा कहि दै चित्त।
मनसा बाचा कर्मना जिनि बस कीनो मित्त ॥५५॥

यथा—(सवैया)

तो हित गाइ बजावत नाचत बार अनेक सिंगार बनाओ।
जी हू में आन को आनिबो छाड़्यो री तौऊ न तेरो भयो मनभायो।
भावै सु तूँ करिबो करि भामिनि भागु बड़े बस तैं करि पायो।
कान्ह त्यों सूधे जु चाहति नाहि सु चाहति है अब पाइ लगायो ॥५६॥

लुब्धापति प्रौढ़ा-लक्षण—(दोहा)

सो लुब्धापति जानियै, 'केसव' प्रगट प्रमान।
कानि करै पति कुल सबै प्रभुता प्रभुहि समान ॥५७॥

---

[५२] देवता सी-अनूप रूप (बाल; नवल०)।
[५४] उलहे-उमहे (नवल०)
[५५] कहि दै-करिबे (नवल०)। जिनि-जिहि (बाल०)।
[५६] छाड़्यो री-छाड़ियो (नवल०)। तैं करि-चौकड़ि (नवल० हे करि (बाल०)।

यथा–(सवैया)

आजु विराजत हैं कहि 'केसव' श्रीबृषभानु-कुमारि कन्हाई।
बानी बिरंचि बहिक्रम काम रची जु बची सु बधूनि बनाई।
अंग बिलोकि त्रिलोक में ऐसी को नारि नहीं जिन नारि नवाई।
मूरतिवंति सिंगारि समीप-सिंगार कियें जनु सुंदरताई॥५८॥

अथ प्रौढ़ा धीरा-लक्षण–(दोहा)

आदर माँझ अनादरै, प्रकट करें हित होइ।
आकृति आप दुरावई, प्रौढ़ा धीरा दोइ॥५९॥

प्रौढ़ा सादरा धीरा, यथा–(सवैया)

आवत देखि लिये उठि आगें ह्वै, आपुहीं 'केसव' आसन दीनो।
आपुहीं पाइ पखारि भलें जल, पानी को भाजन लाइ नवीनो।
बीरी बनाइ कै आगें धरी, जब बैहर कों कर बीजना लीनो।
बाँह गही हरि ऐसें कह्यो हँसि, मैं तौ इतो अपराध न कीनो॥६०॥

अथ आकृतिगुप्ता प्रौढ़ा धीरा, यथा–(सवैया)

चितवौ चितवाँएँ हँसाँएँ हँसौ हौ, बुलाएँ तें बोंलौ रहौ ननु मौनें।
सौंह अनेकनि आवहु अंक, करौ रति कों प्रति रैन की रौनें।
ख्वाएँ तें खाहु बरच्याइ बिरी, जनु आई हौ 'केसव' आजु ही गौनें।
मोहन के मन मोहन कौं, सु कहौ यह धौं सिखई सिख कौनें॥६१॥

पुनर्यथा–(सवैया)

हित कै इत देखहु, देख्यो सबै, हित बात सुनौ, जु सुनी सबहीं हैं।
यह तौ कछु और, वहै सब ही अरु, सौंह करौऽब करी जु तहीं हैं।
समुझाइ कहौं, समुझीं सब 'केसव' झूठीं सबै हम सों जु कहीं हैं।
मान कियो, अपमान करौ, तौ हँसौं अब के, हँसिबे कों रहीं हैं॥६२॥

अथ प्रौढ़ा अधीरा-लक्षण–(दोहा)

पति को अति अपराध गनि हतन कहै हित मानि।
कहत अधीरा प्रौढ़ तिहिं 'केसवदास' बखानि॥६३॥

यथा–(सवैया)

हौं सुख पाइ सिखाइ रही सिख सीखे न ये सखि तैं हू सिखाई।
मैं बहुतै दुख पाइहू देख्यो पै 'केसव' क्यों हूँ कुटेव न जाई।

---

[५८] बची-बरी (नवल०)।
[६०] जब बैहर-जबै हरि (नवल०)। अपराध न-अवराधन (नवल०)।
[६१] बरच्याइ-औ बिरी (नवल०)। सु कहौ०–तोहि नहीं (नवल०)।
[६२] सबहीं-निबहीं (नवल०)। अरु-अब (बाल० खं०)।

दंड दियें बिनु साधुनि हू सँग छूटत क्यों खल की खलताई।
देखहु दै मधु की पुट कोटि मिटै न घटै विष की विषमाई ॥६४॥

अथ प्रौढ़ा धीराधीरा-लक्षण—(दोहा)

मुख रूखी बातैं कहै जिय में पिय की भूख।
धीराधीरा जानियै जैसी मीठी ऊख ॥६५॥

यथा—(सवैया)

हो मन मैलो न जोलौं कछु अब छाड़हु बोलिबो बोल हँसौंहैं।
'केसव' औरनि सों रसरास रस्यो रसबाद सबै हम सौंहैं।
देखहु धौं इक बार सकोचन आरस-लोचन आरसी-सौंहैं।
आए जू वैसेई साज सों आजु सु भूलि गई पिय काल्हि की सौंहैं ॥६६॥

इति स्वकीया।

अथ परकीया-लक्षण—(दोहा)

सब तें पर परसिद्ध जग ताकी प्रिया जु होइ।
परकीया तासों कहैं परम पुराने लोइ ॥६७॥

अथ परकीया-भेद—(दोहा)

परकीया द्वै भाँति पुनि ऊढ़ा एक अनूढ़।
जिन्हैं देखि सुनि होत बस संतत मूढ़ अमूढ़ ॥६८॥

अथ ऊढ़ा-अनूढ़ा-लक्षण—(दोहा)

ऊढ़ा होइ विवाहिता अविवाहिता अनूढ़।
तिनके कहौं बिलास सब 'केसव' गूढ़-अगूढ़ ॥६९॥

ऊढ़ा, यथा—(सवैया)

बैठी सखीनि की सोभै सभा सब ही के सु नैननि माँझ बसै।
बूझत बात बरयाइ कहै मन ही मन 'केसवराइ' हँसै।
खेलति है इत खेल उतै पिय चित्त खिलावति यों बिलसै।
कोऊ जानै नहीं दृग दौरि कबै कित ह्वै हरि-आनन छ्वै निकसै ॥७०॥

अनूढ़ा, यथा—(सवैया)

बैठी हुती ब्रजनारिन में बनि श्रीबृषभानु-कुमारि सभागी।
खेलति ही सखी चौपरि चारि भई तिहिं खेल खरी अनुरागी।
पीछे तें 'केसव' बोलि उठे सुनि कै चित्त चातुरी आतुरी जागी।
जानो न काहू कबै हरि के सुर-मारगहीं सर सौ दृग लागी ॥७१॥

---

[६४] पाइ-खाइ (नवल०)। [६६] ज़ोलौं-बोलौं (नवल०)।
[७१] मारगहीं-मारगही (नवल०)।

(दोहा)

काहू सों न कहै कछू बात अनूढ़ा गूढ़।
सखी सहेली सों कहै ऊढ़ा गूढ़ अगूढ़ ॥७२॥

ऊढ़ा-वचन, यथा–(सवैया)

केसवराइ की सौंहैं ककै कछू एकनि आपु में होड़ परी।
एक चितै मुसिकाइ इतै उत बात कहैं बहु भाइ-भरी।
चारु चकोर-बिलोचन-भा सी चहूँ दिसि तें अँगुरी पसरी।
सखि कालिह गई हुती गोकुल हौं सबहीं मिलि द्वैज को चंद करी ॥७३॥

(दोहा)

जग नायक की नायिका बरनी 'केसवदास'।
तिनके दर्सन-रस कहौं सुनौ प्रछन्न प्रकास ॥७४॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
स्वकीयापरकीयादिभेदवर्णनं नाम तृतीयः प्रभावः ॥३॥

४

अथ दर्शन-लक्षण–(दोहा)

ये दोऊ दरसैं दरस होहिं सकाम सरीर।
दरसन चारि प्रकार को बरनत हैं कबि धीर ॥१॥
एक जु नीकं देखियै दूजें दरसन चित्र।
तीजें सपनें देखियै चौथें श्रवननि मित्र ॥२॥

साक्षात् दर्शन, यथा– (दोहा)

नीद भूख दुति देह की गई सुनत हीं जाहि।
को जानै ह्वैहै कहा 'केसव' देखें ताहि ॥३॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न साक्षात् दर्शन, यथा–(सवैया)

कहि 'केसव' श्रीवृषभानु-कुमारि सिंगार सिंगारि सबै सरसै।
सबिलास चितै हरि नायक त्यौं रतिनायक सायक से बरसै।
कबहूँ मुख देखति दर्पन लै उपमा मुख की सुखमा सरसै।
जनु आनंदकंद सँपूरन चंद दुख्यो रबिमंडल में दरसै ॥४॥

[१] कवि–मति (नवल॰, बाल॰)।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

पहिलें तजि आरस आरसी देखि घरीकु घसे घनसारहि लै।
पुनि पोंछि गुलावति लौं छि फुलेल अंगौछे में आछे अंगौछनि कै।
कहि 'केसव' मेद जुबाद सों माँजि इते पर आँजे मैं अंजन दै।
बहुर्‌यो दुरि देखौं तो देखौं कहा सखि लाज तौ लोचन लागियै है ।।५।।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

भाल गुही गुन लाल लटैं लपटीं लर मोतिन की सुखदैनी।
ताहि बिलोकति आरसी लै कर आरस सों इक सारसनैनो।
'केसव' कान्ह दुरें दरसो परसी उपमा मति की अति पैनी।
सूरजमंडल में ससिमंडल मध्य धसी जनु जाइ त्रिबैनी ।।६।।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश साक्षात् दर्शन, यथा—(सवैया)

इक तौ उर और उरोज अनूपम तैसो मनोहर हार महा री।
सखि चित्त चले तरुनीनिहूँ को तरुनैन की 'केसव' बात कहा री।
हितु सों हित की कहि आवति है पर कौ लगि होंवंरी कौतुकहारी।
अब अंचल दै, नँदलाल बिलोकत री दधि नोखो बिलोवनहारी ।।७।।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न चित्र-दर्शन, यथा—(सवैया)

लोचन ऐंचि लिये इति कों मन की गति जद्यपि नेह-नहीं है।
आनन आइ गए श्रम-सीकर रोम उठे तन कंप लही है।
तासों कहा कहियै कहि 'केसव' लाज-समुद्र में बूड़ि रही है।
चित्रहु में हरि-मित्रहि देखत यों सकुची जनु बाँह गही है ।।८।।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश चित्र-दर्शन, यथा (कवित्त)

'केसोदास' नेह दसा-दीपक सँजोइ कैसें,
ज्योति ही के ध्यान तम-तेजहि नसायहै।
आँखिन सों बाँधें अन्न काहू की बुझानी भूख ?
पानी की कहानी रानी ! प्यास क्यों बुझायहै।

---

[५] घरीकु—कछुक (बाल० खं०)। जुबाद—जवादि (रस०)। बहुरयौ—बहुरयौ दुरि देखौं जो देखौं तो देखि री (बाल०); बहुरयौ फिरि देखि जो देख्यौ है तो देखि री (बाल० खं०)।
[६] मति की—मति ते (बाल०खं०)। जनु ताहि—मनु ताहि (रस०)।
[७] कहि०—कहि ही परि आवति (बाल०, बाल० खं०)। होंवें री—होहुँ री (बाल०, बाल० खं०)।
[८] गति—मति (बाल० खं०)। तन—अति कंपत ही है (बाल० खं०)।

एरो मेरी इंदुमुखी ! इंदीवर-नैनी लिखें
इंदिरा के मंदिर में संपति सिधायहै।
ऐसे दिन ऐसें हीं गँवावति गँवारि कहा,
चित्र देखें मित्र के मिले को सुख पायहै ? ॥९॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न चित्र-दर्शन, यथा–(कवित्त)

रूठिबे को तूठिबे को मृदु मुसिक्याय कै
बिलोंकिबे को भेद कछू कह्यो न परतु है।
'केसोदास' बोलें बिनु बोलनि के सुनें बिनु,
हिलन मिलन बिनु मोहि क्यों सरतु है।
कौ लगि अलोनो रूप प्याय प्याय राखौं नैन,
नीर देखें मीन कैसें धीरज धरतु है।
चित्रिनो बिचित्र चित्र नोकें हीं चितैयै मन,
चित्र में चिताएँ चित्त चौगुनो जरतु है ॥१०॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश चित्र-दर्शन, यथा–(सवैया)

अंतरिच्छ-गच्छनोनि मच्छनी सुलच्छनोनि,
अच्छी अच्छो अच्छनोनि छबि छमनीय है।
किन्नरी नरी सुनारि पन्नगी नगी-कुमारि
आसुरो सुरीनिहूँ निहारि नमनीय है।
भोगिन को भामिनो कि देह धरें दामिनी कि,
काम हीं की कामिनी कि ऐसी कमनोय है।
चित्रहू में चित्तहि चुरावति है 'केसोदास',
राम की सी रमनी रमा सी रमनोय है ॥११॥

अथ स्वप्न-दर्शन, लक्षण–(दोहा)

'केसव' दर्सन स्वप्न को, सदा दुरयोई होय।
कबहूँ प्रगट न जानियै यह जानैं सब कोय ॥१२॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न स्वप्न-दर्शन, यथा–(सवैया)

आतुर ह्वै उठि दौरी अली, जन आतुर ज्यों गहियै सु गही त्यों।
हो मेरी रानी कहा भयो तो कहुँ बूझति 'केसव' बूझियै री ज्यों।
डीठि लगी किधौं प्रेत लग्यो कि लग्यो उर प्रीतम जाहि डरी यों।
आनन सीकर सी कहियै धंक सोवत तें अकुलाइ उठी क्यों ॥१३॥

---

[९] बुझानी-न भागी (नवल०)। क्यों-कैसे कै (बाल० खं०)। मंदिर में-मंदिर क्यों (नवल०)। सिधायहै-समाइहै (बाल० खं०)। देखें-बिना (नवल०)।

[१२] जानियै- देखिये (नवल०)।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न स्वप्न-दर्शन, यथा—(कबित्त)

नख-पद-पदवी को पावै पद द्रौपदी न,
एकौ बिसौ उरबसी उर में न आनिबी।
लोम सी पुलोमजा न तिल सी तिलोत्तमा न,
मैलहू समान मन मेनका न मानिबी।
जानियै न कौन जाति अबहीं जगाएँ जाति,
जीवन तौ जानिहौं जौ ताहि पहिचानिबी।
बातक सी बानी माँहि भाव-सो भवानी माँहि,
'केसोदास' रति में रतीक ज्योति जानिबी ॥१४॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न श्रवण-दर्शन, यथा—(सवैया)

सौंह दिवाय दिवाय सखी इक बारक काननि आनि बसाए।
जानै को 'केसव' काननि तें कित ह्वै कब नैननि माँझ सिधाए।
लाज के साज धरेई रहे सब नैननि लै मनहीं सों मिलाए।
कैसी करौं अब क्यों निकसैं री हरेंई हरें हिय में हरि आए ॥१५॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश श्रवण-दर्शन, यथा—(कबित्त)

कौ लौं पीहौ कान-रस, रूप की बुझैहै प्यास ?
'केसोदास' कैसें न नयन भरि पीजियै।
बीर की सौं मेरी बीर वारी है जु वारौं आनि,
नैंक किन हसहि बलाय तेरी लीजियै।
बरसक माँहि यह बैस अलबेली बीतें,
देहौ सुख सखिन क्यों अबहीं न दीजियै।
एरी लड़बावरी अहीरी ऐसी बूझै तोहि
नाँह सों सनेह कीजै नाँहि सों न कीजियै ॥१६॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न श्रवण-दर्शन, यथा—(कबित्त)

लंघतु है लोक लोक-लीक न उलंघी जात,
सबही तू समुझावै तोहि समुझावै को।
छोड़न कहत तनु तनक न छूटै लाज,
धन मीन राखि दोऊ कोबिद कहावै को।
सोच को सँकोच हू को पूरब-पछिम पंथ
'केसोदास' एक काल एक जन धावै को।
दुख-सुख दूरी दुरादूरि हू तें मेरे मन
जैसी सुनी तैसी तोहि आँखिन दिखावै को ॥१७॥

---

[१५] कब—हरि (नवल०)। किन हसहि—हँसि कहि हौ (बाल०)।

श्रीकृष्णजू को प्रकाश श्रवण-दर्शन, यथा– (कबित्त)

निपट कपटहर प्रेम को प्रकटकर,
बीस बिसे बसीकर कैसें उर आनियें।
काम को प्रहरषन कामना को बरषन
कान्ह को सँकरषन सब जग जानियें।
किधौं 'केसोदास' महि मोहनी को भूषन है
किधौं ब्रजबालनि को दूषन बखानियें।
सुनत हीं छूट्यो धाम बन बन डोलैं स्याम,
राधे तेरो नाम कि उचाट-मंत्र मानियें ॥१८॥

(दोहा)

दरस रमन-रमनीनि के कहे परम रमनीय।
प्रगटन प्रेम-प्रभाव अब कहौं कछू कमनीय ॥१९॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
चतुर्विधदर्शनप्रच्छन्नप्रकाशवर्णनं नाम चतुर्थः प्रभावः ॥४॥

५

अथ दंपति-चेष्टा वर्णन– (दोहा)

तिनके चित की जानि सखि पिय सों कहे सुनाइ।
कहे सखी सों प्रीतमैं आपुन तैं अकुलाइ ॥१॥

श्रीराधिकाजू की सखी को बचन कृष्ण प्रति– (सवैया)

कान्हि की ग्वालि तौ आज हू लौं न संभारति 'केसव' कैसें हू देहै।
सीरी ह्वै जाति, उठै कबहूँ जरि जीव रह्यो कै रही रुचि-रेहै।
कोरि विचार विचारति है उपचारनि के बरसैं सखि मेहै।
कान्ह बुरौ जिन मानौ तिहारी बिलोकनि में बिस बीस बिसे है ॥२॥

श्रीकृष्णजू को बचन राधिका की सखी प्रति– (कबित्त)

प्यास ह्वै रही उदास भागी भूख गहि त्रास,
'केसोदास' नींदहू की निंदा नित ठानी है।
मति को मतौ न लेय विद्या की बिदाई देय,
सोभा सूकी सेइ सेइ सब सुख सानी है।
विष से लगत गीत केलि की न परतीत,
प्रीत उर पाहुनी सी पचि पहिचानी है।

तो ब्रिन कहै को गाथ धीरता न ताके साथ,
मोहिं को मिलावै हाथ लाज के बिकानी है ।।३।।

अथ चेष्टा लक्षण–(दोहा)

पिय सों प्रगटन प्रीति कहँ जितने करैं उपाइ ।
ते सब 'केसोदास' अब बरने सबनि सुनाइ ।।४।।
जब चितवै पिय अनत हीं, तब चितवै निहसंक ।
जानि बिलोकत आपु त्यौं अलिहिं लगावै अंक ।।५।।
कबहूँ श्रुति कंडू करै आरस सों ऐंड़ाइ ।
'केसोदास' बिलास सों बार बार जमुहाइ ।।६।।
झूठे हीं हँसि हँसि उठै कहै सखी सों बात ।
ऐसें मिस हीं मिस प्रिया पियहि दिखावै गात ।।७।।
यों ही पीय प्रियानि प्रति प्रगटत अपनी प्रीति ।
सो प्रच्छन्न प्रकास करि बुधि-बल करत समीति ।।८।।

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न चेष्टा, यथा–(कवित्त)

चोरि चोरि चित चितवति मुँह मोरि मोरि
काहे तें हँसति हियें हरष बढ़ायो है ।
'केसोदास' की सौं तूँ जँभाति कहा बार बार
बीरी खाइ मेरी बीर आरस जौ आयो है ।
एँड़ सों एँड़ाति अति अंचल उड़ात उर
उघरि उघरि जात गात छबि छायो है ।
फूलि फूलि भेंटति रहति उर भूलि भूलि
भूलि भूलि कहति कछू तें आजु खायो है ।।९।।

श्रीराधिकाजू की प्रकाश चेष्टा, यथा–(कवित्त)

मेरो मुख चूमें तेरी पूरी साध चूमिबे की
चाटें ओस असु क्यों सिरात प्यास-डाढ़े हैं ।
छोटे छोटे कर कहा छ्वावति छबीली छाती,
छ्वावौ जाके छ्वाइबे के अभिलाष बाढ़े हैं ।
खेलन जौ आई हौ तौ खेलौ जैसें खेलियत
'केसोदास' की सौं तैं ये कौन खेल काढ़े हैं ।
फूलि फूलि भेंटति है मोहिं कहा मेरी भटू
भेंटै किनि जाइ जे वे भेंटिबे कौं ठाढ़े हैं ।।१०।।

---

[३] धीरता०–धीरजता लैकै साथ (नवल०) ।
[९] बीरी खाइ–विसिखाइ (नवल०) ।
[१०] सिरात–री रात (नवल०) । भेंटै किनि जाइ-भेंटत ना ताहि (बाल० खं०) ।
बार बार-बारि बारि (बाल०, रस०) ।

श्रीकृष्ण जू की प्रच्छन्न चेष्टा, यथा—(कबित्त)

छोरि छोरि बांधौ पाग आरस सों आरसी लै
अनत हीं आन भांति देखत अनैसे हौ।
तोरि तोरि डारत तिनूका कहो कौन पर,
कौन के परत पाइ बावरे ज्यों ऐसे हौ।
कबहूँ चुटकि देति चटकि खुजावौ कान,
मटकि एँड़ाउ जुरी ज्यों जँभात तैसे हौ।
बार बार कौन पर देत मनिमाला मोहि,
गावत कछू के कछू आजु कान्ह कैसे हौ ॥११॥

श्रीकृष्ण जू की प्रकाश चेष्टा, यथा—(सवैया)

जा लगि लांच लुगाइनि दै दिन नाच नचावत सांझ पहाँ ऊँ।
'केसव' मन्त्र करौ बसकारक हारक जंत्र कहाँ लौं गनाऊँ।
हारि रहे हरि क्यों हूँ मिलै न मिलाऊँ जौ ताहि तौ मांगौं सो पाऊँ।
ठाढ़ी वै जाइ मिलौ मिलिवे कहँ और कछू कनियाँ करि लाऊँ ॥१२॥

अथ स्वयंदूतत्व-लक्षण—(दोहा)

जौ क्यों हू न मिलें कहूँ 'केसव' दोऊ ईठ।
तौ तब अपने आपहीं बुधिबल होत बसीठ ॥१३॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न स्वयंदूतत्व, यथा—(सवैया)

दूरि तें देखिबे कौं ह्वै ह्वै दीन मनाई हुती लिखि ही लिखि चीठी।
देखें मिल्यो मनु हौं हू मिली मिलि खेलिबे हूँ कौं मिली मति मीठी।
ऐसें में और चलाइहौ 'केसव' कैसहुँ कान्ह-कुमार दै ढीठी।
लागै न बार मृनाल के तार ज्यों टूटैगी लाल हमें तुम्हें ईठी ॥१४॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश स्वयंदूतत्व, यथा—(सवैया)

धाइ नहीं घर, दाई परी जुर, आई खिलाई की आंखि बहाऊँ।
पौरियै आवै रतौंधु इते पर ऊँचो सुनै सु महा दुख पाऊँ।
कान्ह निबेरहु न्याउ नयो इनि आलिन कौ लगि हौं बहराऊँ।
ये सब मो संग सोवन आवैं कि हौं इनके सँग सोवन जाऊँ ॥१५॥

---

[१४] लागै०—ह्वै है न बार मुराति कें (रस०), मुरारि कें (बाल०)।
निम्नलिखित छंद 'बाल० खं०' और 'नवल०' की प्रतियों में और मिलता है—

छुवो जनि हाथ सों हाय हिये पल ही पल बाढ़त प्रेमकला।
न जानिये जी में कहा बसी जाइ चले फिरि 'केसव' कौन चला।
भले हि भले निबहौ जि भली इह देखिबे ही की हला हू भला।
मिलै मन तौ मिलिबोई कहूं मिलिबो न अलौकिक नंदलला॥

श्रीकृष्ण जू को प्रच्छन्न स्वयंदूतत्व, यथा—(कबित्त)

आपने हीं भाइ के ये सोहत सरीक से, वे
'केसोदास' दास ज्यों चलत चित लीने हैं।
आपु हीं अठाउ कै ये लेत नाऊँ मेरो, वे तौ
बापुरे मिलाप के सँलाप करि हीने हैं।
राधिकै सुनाइ कै कहत ऐसें घनस्याम,
सुबल को लै लै नाम काम-भय-भीने हैं।
साथ लै सखानि अब जैबो वन छाड़्यो हम,
खेलिबे कौं संग सखा साखामृग कीने हैं ॥१६॥

श्रीकृष्ण जू को प्रकाश स्वयंदूतत्व, यथा—(सवैया)

बन जैये चलो कोऊ ठाली हे 'केसव' हौ तुम हें तौ अरो अरिहौ।
कछु खेलियै खेलि न आवत आजु ही भूल्यो न भूल्यो गरें परिहौ।
हितु हे हिय में किधौं नाहि तऊ हितु नाहि हिये तु लला लरिहौ।
हम सों यह बूझियै ऐसी कहौऽब कही हो कही सु कहा करिहौ।

अन्यच्च, यथा—(कबित्त)

'केसोदास' घर घर नाचत फिरत गोप,
एक परे छकि ते मँरेई गुनियत हैं।
बारुनी के बस बलदाऊ भए सखा सब,
संग लै को जैयै दुख सीस धुनियत हैं।
मोहिं तो गएँ हीं बनै दीह दीपमाला पाइ,
गाइनि सँवारिबे कौं चित्त चुनियत हैं।
जौ न बसौं लोलिनैंनि लेरुवा मरहिं सब,
खरक खरेई आज सूने सुनियत हे ॥१८॥

(दोहा)

ऊढ़ा पुनि यहि भाँति करि बहु बिधि हितनि जनाइ।
आपुन हीं तें लाज तजि पियहिं मिलै अकुलाइ ॥१९॥

यथा—(कबित्त)

पंथ न थकत पल मनोरथ-रथनि के
'केसोदास' जगमग जैसें गाए गीत में।
पवन बिचारि चक्र चंक्रमन चित चढ़ि,
भूतल अकास भ्रमै धाम जल सोत में।

---

[१६] संलाप-संताप (नवल०)। राधिकै प्रिया को (नवल०)। भय-रस (बाल०)।
[१८] दुख-देख (बाल० खं०)। बसौं-मिलै (बाल० खं०)। खरक-दरिक (बाल० खं०)। यह छंद 'बाल०' में नहीं है।
[१९] पियहिं-पतिहि (बाल०)।

को लौं राखौं थिर बपु बापी कूप सर सम,
हरि बिनु कीनें बहु बासर बितीत में।
म्यान गिरि फोरि तोरि लाज-तरु जाइ मिलौं,
आपु ही तें आपु गाज्यौ आपुनिधि प्रीतमैं ॥२०॥

अन्यच्च, यथा–(सवैया)

जाति भई संग जाति लै कीरति 'केसव' है कुल सों हित फूट्यो।
गर्ब गयो गुन जोबन रूप को पुन्य सु तौ पल ही पल खूट्यो।
कान्ह निहारियै आन कियें कहीं लाज सों नीको ह्वै नातो ई टूट्यो।
छाँड्यो सबै हम हेरि तुम्हें तुम पै तनकौ कपटौ नहिं छूट्यो ॥२१॥

(दोहा)

अधिक अनूढ़ा लाज तें पिय पै जाइ न आप।
क्यों हूँ करि सखियै कहैं ताके उर को ताप ॥२२॥

यथा–(सवैया)

जानै को 'केसव' कौने कह्यो कब कान्ह हमारे हिंडोरनि झूलै।
पान न खाइ न पान्यों पियै तब तें भरि लोचन लेत समूलै।
जाहु नहीं चलि बेगि बलाइ ल्यौं लेहु सकेलि कहा यह भूलै।
जानत हौ वह कामकली कुँभिलाइ गएँ बहुरयौ फिरि फूलै ॥२३॥

अथ प्रथम-मिलन-स्थान-वर्णन–(दोहा)

जनी सहेली धाइ घर सूने घर निसि चार।
अति भय उत्सव ब्याधि मिस न्यौते सु बन-बिहार ॥२४॥
इन ठौरनि ही होतु है प्रथम मिलन संसार।
'केसव' राजा रंक कों रचि राखे करतार ॥२५॥

जनी के घर को मिलन, यथा—(कबित्त)

बेषु कै कुमारिका को ब्रज की कुमारिकानि
माँझ साँझ 'केसोदास' त्रास पग पेलि कै।
काम की लता सी चपला सी प्रेम पासी सी है
राधिका के बुधिबल कंठ भुज मेलि कै।
दौरि दौरि दुरि दुरि पूरि पूरि अभिलाष
भाँति भाँति के अनूप रूप बहु केलि कै।
जनी के अजिर आज रजनी में सजनी री
साँची करी स्याम चोरमिहचनी खेलि कै ॥२६॥

---

[२०] फोरि-कोरि (बाल०)।
[२३] लोचन-आँखियौ (बाल०)। सु बन-विपिन (बाल० खं०)।

सहेली के घर को मिलन, यथा—(कबित्त)

नैननि के तारनि में राखौ प्यारे पूतरी कै
मुरली ज्यों लाइ राखौ दसन-बसन में।
राखौ भुज बीच बनमाली बनमाला करि
चंदन ज्यों चतुर चढ़ाइ राखौ तन में।
'केसोराइ' कलकंठ राखौ बलि कठुला कै
करम करम क्यों हू आनी हैं भवन में।
चंपककली ज्यों कान्ह सूँघि सूँघि देवता ज्यों
लेहु मेरे लाल! इन्हैं मेलि राखौ मन मैं॥२७॥

धाइ के घर को मिलन, यथा—(कबित्त)

हँसत खेलत खेल मंद भई चंद-दुति
कहत कहानी और बूझत पहेली-जाल।
'केसोदास' नींद-बस अपने अपने घर
हरें हरें उठि गए बालिका सकल बाल।
घोरि उठे गगन सघन घन चहूँ दिसि
उठि चले कान्ह धाइ बोलि उठी तिहिं काल।
आधी राति अधिक अँध्यारे माँझ जैहौ कहाँ
राधिका की आधी सेज सोइ रहौ प्यारे लाल॥२८॥

सूने घर को मिलन, यथा—(कबित्त)

देखत ही चित्र सूनी चित्रसाला बाला आजु
रूप की सी माला राधा रूपकु सुहाए री।
नूपुर के सुरनि के अनुरूप तानैं लेति
पग तल ताल देति अति मन भाए री।
ऐसे में दिखाई दीनी औचकाँ, कुँवर कान्ह
जैसे भए गात तैसे जात न बताए री।
केसोदास' कहे परै अलज सलज से न
जलज से लोचन जलद से ह्वै आए री॥२९॥

निसि-चार को मिलन, यथा—(सवैया)

एक समै सब देखन गोकुल गोपी-गोपाल-समूह सिधायो।
राँति ह्वै आई चले घर कों दसहूँ दिसि मेह महा मढ़ि आयो।

[२७] केसोराइ०—केसोराइ गल मेलि राखो कलकंठी कंठा कल कठुला कै (बाल० खं०)।
[२८] बस-मिसु (नवल०)। बालिका-ग्वालिका (नवल०)। प्यारे-नंद (नवल०)।
[२९] राधा-जनु (बाल० खं०)।

दूसरो बोल ही तें समुझै कहि 'केसव' यों छिति में तम छायो।
ऐसे में स्याम सुजान बियोग बिदा कै दियो सु कियो मनभायो ॥३०॥

अतिभय कों मिलन, यथा—(कबित्त)

जानि आगि लागी बृषभान के निकट भौन
दौरि ब्रजबासी चढ़े चहूँ दिसि धाइ कै।
जहाँ तहाँ सोर भारी भीर नर नारिनि की
सब ही की छूटि गई लाज हाइ भाइ कै।
ऐसे में कुँवर कान्ह सारो सुक बाहिर कै
राधिका जगाई और जुवती जगाइ कै।
लोचन बिसाल चारु चिबुक कपोल चूमि,
चंपे की सी माल लाल लीनी उर लाइ कै ॥३१॥

उत्सव को मिलन, यथा—(कबित्त)

बल की बरस-गाँठि ताकी राति जागिबे कौं,
आईं ब्रजसुंदरी सँवारि तन सोनो सो।
'केसोदास' भीर भई नंदजू के मंदिरनि
अध मध ऊरध बच्यो न कोऊ कोनो सो।
गावति बजावति नचति नाना रूप करि
जहाँ तहाँ उमंगत आनंद को ओनो सो।
साँवरे की सूनी सेज सोवत ही राधिका जू
सोए आनि साँवरेऊ मानि मन गोनो सो ॥३२॥

ब्याधि-मिस को मिलन, यथा—(सवैया)

सोधि निदाननि दान दए उपचार बिचार कियें न धिरानी।
बेद के सासन ब्याधि-बिनासन होम-हुतासन हू न सिरानी।
'केसव' बेगि चलौ बलि बोलति दीन भई बृषभान की रानी।
आए हे मेटि मरू करि कै बहुरयौ उनिके वह पीर पिरानी ॥३३॥

न्यौते के मिस को मिलन, यथा—(कबित्त)

न्यौति कै बुलाई हुती बेटी बृषभानु जू की,
जेंबे कौं जसोधा रानी आनी हैं सिंगारि कै।
भोजन कै, भवन बिलोकिबे कौं पान खात,
ऊपर अकेली गई आनंद बिचारि कै।
देखत देखत हरि भावते कों भागी, देखि
दौरि गही ब्याल ऐसी बेनी डर डारि कै।

---

[३१] भाइ—हाइ (बाल०)।
[३२] अध मध—मधि अध (बाल०)।
[३३] न धिरानी—नंदरानी (बाल० खं०)। बेगि—क्योंहू (बाल०)।

भेंटो भरि अंक मनभायो करि छाड़्यो, मुहुँ
केसरि सों माँड़ि लई बेसरि उतारि कै ॥३४॥

वनविहार के मिस को मिलन, यथा–(सवैया)

देहि री कालिह गई कहि दैन, पसारहु ओलि भरौ पुनि फेंटी।
छाड़ौ नहीं मग छाड़ौं जौ या पै छुड़ावै बिलोकनि लाज-लपेटी।
बात सँभारि कहौ सुनिहै कोऊ जानत हौ यह कौन की बेटी ?।
जानत हैं बृषभानु की है, पर तोहि न जानत कौन की चेटी ॥३५॥

जलविहार को मिलन, यथा–(सवैया)

हरि राधिका मानसरोवर कें तट ठाढ़े री हाथ सों हाथ छियें।
पिय के सिर पाग प्रिया मुकताहल छाजत माल दुहूँनि हियें।
कटि 'केसव' काछनी सेत कछें सबही तन चंदन चित्र कियें।
निकसे छिति छीरसमुद्र ही तें संग श्रीपति मानहुँ श्रीहि लियें ॥३६॥

अन्यच्च, यथा–(सवैया)

रितु ग्रीषम के प्रतिबासर 'केसव' खेलत हैं जमुना-जल में।
इत गोपसुता उँहि पार गुपाल बिराजत गोपनि के दल में।
अति बूड़त हैं गति मीननि की मिलि जाइ उठे अपने थल में।
इँहि भाँति मनोरथ पूरि दोऊ दुरि दूरि रहैं छबि सों छल में ॥३७॥

(दोहा)

इहि बिधि राधा-रमन के बरने मिलन बिसेखि।
'केसवदास' निबास बहु बुधिबल लीजहु लेखि ॥३८॥
और जु तरुनी तीसरी क्यों बरनौं यहि ठौर।
रस में बिरस न बरनियै कहत रसिक-सिरमौर ॥३९॥
ये सब जितनी नायिका बरनी मति-अनुसार।
'केसवदास' बखानियहु, बुधि-बल अष्ट प्रकार ॥४०॥
प्रथम मिलन थल में कहे अपनी मति-अनुसार।
हावभाव बर्नन करौं सुनि अब बहुत प्रकार ॥४१॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
श्रीराधाकृष्ण-चेष्टा-दर्शन-मिलनस्थानवर्णनं नाम पंचम प्रभावः ॥५॥

———

[३५] देहि री–दै दधि (नवल०)। कौन०–को महरेटी (बाल० खं०)।
[३६] कछें–लसी (बाल०)। [३७] गोपनि०–गुवालनि के गन मैं (बाल०)।
[३८] निवास–बिलास (बाल० खं०) [३९] ३९ से ४१ तक के छंद 'रस०' में नहीं हैं।

६

अथ भाव-लक्षण–(दोहा)

आनन लोचन बचन मग, प्रकटत मन की बात।
ताही सों सब कहत हैं भाव कबिनि के तात ॥१॥
भाव सु पंच प्रकार के, सुनि बिभाव अनुभाव।
थाई सात्विक कहत हैं, व्यभिचारी कबिराव ॥२॥

अथ विभाव-वर्णन–(दोहा)

जिन तें जगत अनेक रस, प्रगट होत अनयास।
तिन सों बिर्मात बिभाव कहि बरनत 'केसवदास' ॥३॥

अथ विभाव-नामभेद-वर्णन–(दोहा)

सब बिभाव द्वै भांति के 'केसवदास' बखानि।
आलंबन इक दूसरो उद्दीपन मन आनि ॥४॥
जिन्हैं अतन अवलंबई ते आलंबन जानि।
जिन तें दीपति होति है ते उद्दीप बखानि ॥५॥

अथ आलंबन-स्थान-वर्णन–(छप्पय)

दंपति जोबन रूप जाति लच्छन जुत सखि जन।
कोकिल कलित बसंत फूल फल दल अलि उपबन।
जलचर जलजुत अमल कमल-कमला कमलाकर।
चातिक मोर सु सब्द तड़ित धन अंबुद अंबर।
सुभ सेज दीप सौगंध गृह पान गान परिधान मनि।
नव नृत्य-भेद बीनादि-रव आलंबन 'केसव' बरनि ॥६॥

अथ उद्दीपन-वर्णन–(दोहा)

अवलोकनि आलाप परिरंभन नख-रद-दान।
चुंबनादि उद्दीप ये मर्दन परस प्रमान ॥७॥

अथ अनुभाव-वर्णन–(दोहा)

आलंबन उद्दीपन के, जो अनुकरन बखान।
ते कहियै अनुभाव सब, दंपति प्रीति-विधान ॥८॥

अथ स्थायी भाव-वर्णन–(दोहा)

रति हांसी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह सुजान।
भय निंदा बिस्मय सदा, थाई भाव प्रमान ॥९॥

---

[४] आनु–मानु (बाल० खं०)।
[६] कमला–मधुकर (बाल०)। मान–खान (नवल०)।

अथ सात्विक भाव-वर्णन--(दोहा)

स्तंभ स्वेद रोमांच सुरभंग कंप बैबन्य ।
आंसू प्रलय बखानियै आठो नाम अनन्य ॥१०॥

अथ व्यभिचारी भाव-वर्णन--(दोहा)

भाव जु सबही रसनि में उपजत 'केसवराय' ।
बिना नियम तिन सों कहैं ब्यभिचारी कबिराय ॥११॥

अथ व्यभिचारी-नाम-वर्णन--(दोहा)

निर्बेद ग्लानि संका तथा, आलस दैन्य 'रु मोह ।
स्मृति धृति व्रीड़ा चपलता श्रम मद चिंता कोह ॥१२॥
गर्ब हर्ष आवेग पुनि निंदा नींद बिबाद ।
जड़ता उत्कंठा सहित स्वप्न प्रबोध बिषाद ॥१३॥
अपस्मार मति उग्रता त्रास तर्क औ ब्याधि ।
उन्माद मरन अवहित्थ है ब्यभिचारी युत आधि ॥१४॥

अथ हाव-लक्षण--(दोहा)

प्रेम राधिका कृष्न को है तातें सिंगार ।
ताके भाव प्रभाव तें उपजत हाव बिचार ॥१५॥
हेला लीला ललित मद बिभ्रम विहृत बिलास ।
किलकिंचित बिच्छित्ति कहि अरु बिब्बोक-प्रकास ॥१६॥
मोट्टाइत सुनि कुट्टमित बोधकादि बहु हाव ।
अपने अपने बुद्धिबल बरनत कवि कबिराव ॥१७॥

अथ हेला हाव-लक्षण--(दोहा)

पूरन प्रेम-प्रताप तें भूलत लाज-समाज ।
सो हेला जिहिं हरत हिय राधा श्रीब्रजराज ॥१८॥

अथ श्रीराधिकाजू को हेला हाव, यथा--(सवैया)

अवलोकनि अंकुस ऐंचि अनूपम भ्रू जुग पास भलें गल मेली ।
मृदुहास सुबास उठाइ मिली वह जोन्ह की जामिनि माँझ अकेली ।
अधरासव प्याइ किये बस 'केसवराइ' करी रसरीति नवेली ।
बन में बृषभानुसुता सुखहीं हरि कों हरि लैं गई हेलहि हेली ॥१९॥

---

[१०] अनन्य-सुवर्णा (नवल०) ।
[१४] त्रास-त्राश (नवल०) । उन्माद --अवहित्थ भय आदि दै (रस०) ।
[१७] बोधकादि--बोधादिक (नवल०) ।
[१९] अधरासव--अधरारस (रस०, नवल०) । रसरीति--रतिरीति (बाल०) ।

श्रीकृष्णजू को हेला-हाव, यथा–(सवैया)

बेनु सुनाइ बुलाइ लई बन भौन बुलाइ कै भाँति भली को।
फूलि गयो मन फूल्यो बिलोकत 'केसव' कानन रास थली को।
अधरा-रस प्याइ कियो परिरंभन चुंबन कै मुख काम-कली को।
हेलहिं श्रीब्रजनागर आजु हर्‌यो मन श्रीवृषभानुलली को ॥२०॥

अथ लीला हाव-लक्षण–(दोहा)

करत जहाँ लीलानि कों प्रीतम प्रिया बनाइ।
उपजत लीला हाव तहँ बरनत 'केसवराइ' ॥२१॥

अथ श्रीराधिकाजू को लीला हाव, यथा–(सवैया)

पायन को परिबो अपमान अनेक सों 'केसव' मान मनैबो।
मीठो तमोर खवाइबो खैबो बिसेषि चहूँ दिसि चौंकि चितैबो।
चीर कुचीलनि ऊपर पौढ़िबो पातनि के खरकें भजि ऐबो।
आँखिनि मूँदि कै सीखति राधिका कुंजनि तें प्रतिकुंजनि जैबो ॥२२॥

श्रीकृष्णजू को लीला हाव, यथा–(सवैया)

झाँकि झरोखनि में चढ़ि ऊँचे अवासनि ऊपर देखन धावै।
निंदत गोप चरित्रनि कों कहि 'केसव' ध्यान कके गुन गावै।
चित्रित चित्र में आपुनपौ अवलोकत आनँद सों उर लावै।
आँगन तें घर में घर तें फिरि आँगन बासर कों बिरमावै ॥२३॥

अथ ललित हाव-लक्षण–(दोहा)

बोलनि हँसनि बिलोकिबो चलनि मनोहर रूप।
जैसें तैसें बरनियै ललित हाव अनुरूप ॥२४॥

श्रीराधिकाजू को ललित हाव, यथा–(कबित्त)

कोमल बिमल मन, बिमला सी सखी साथ,
कमला ज्यों लीने हाथ कमल सनाल के।
नूपुर की धुनि सुनि भोरें कलहंसनि के,
चौंकि चौंकि परै चारु चेंटुवा मराल के।
कचनि के भार कुच-भारनि सकुच-भार,
लचकि लचकि जात कटि-तट बाल के।
हरें हरें बोलत बिलोकत हँसत हरें,
हरें हरें चलत हरत मन लाल के ॥२५॥

---

[२०] बुलाइ–मुराइ (रस०)। अधरारस०–रूप महामधुपान कराइ करयौ परंरंभन कामकली को (रस०); चुंबन रंभन कामकली को (बाल०)।

[२२] मीठो–पीठो (बाल०; रस०)। भजि–भगि (रस०)।

[२३] बासर–जो निसि (बाल०)।

श्रीकृष्णजू को ललित हाव, यथा–(सवैया)

चपला पट, मोर-किरीट लसै मघवा-धनु सोभ बढ़ावत हैं।
मृदु गाजत आवत बेंनु बजावत मित्र मयूर नचावत हैं।
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक-चित्त की ताप बुझावत हैं।
घनस्याम घनाघन-बेष धरें जु बने बन तें ब्रज आवत हैं ॥२६॥

अथ मद हाव-लक्षण–(दोहा)

पूरन प्रेम-प्रभाव तें गर्ब बढ़ै बहु भाव।
तिनके तरुन बिकार तें उपजत है मद हाव ॥२७॥

श्रीराधिकाजू को मद हाव, यथा–(कवित्त)

छबि सों छबीली बृषभानु की कुँवरि आजु,
रही हुती रूपमद मानमद छकि कै।
मारहू तें सुकुमार नंद के कुमार ताहि,
आए री मनावन सयान सब तकि कै।
हँसि हँसि सौंहि करि करि पाइ परि परि,
'केसोराइ' की सौं जब हारे जिय जकि कै।
ताही समै उठे घन घोरि घोरि, दामिनी सी
लागी लौटि स्याम घन उर सों लपकि कै ॥२८॥

श्रीकृष्णजू को मद हाव, यथा–(सवैया)

मनमोहिनी मोहि सकै न सखी चपला चल चित्त बखानत हैं।
रति की रति क्यों हूं न कान करैं दुति-चंदकला घटि जानत हैं।
कहि 'केसव' और की बात कहा रमनीय रमाहूँ न मानत हैं।
बृषभानुसुता हित मत्त मनोहर औरहिं डीठि न आनत हैं ॥२९॥

अथ विभ्रम हाव-लक्षण–(दोहा)

बास बिभूषन प्रेम तें जहाँ होइँ बिपरित।
दरसन-रस तन मन रसित, गनि विभ्रम की गीति ॥३०॥

श्रीराधिकाजू को विभ्रम हाव, यथा–(सवैया)

कटि के तट हार लपेटि लियो कल किंकिनी लै उर सों उरमाई।
कर नूपुर सों पग पौंची रची अँगियाँ सुधि अंचल की बिसराई।
करि अंजन रंजित चारु कपोल करी जुत जावक नैन-निकाई।
सुनि आवत श्रीब्रजभूषन भूषन भूषतहीं उठि देखन धाई ॥३१॥

---

[२६] प्रेमप्रभाव–प्रेमप्रताप (रस०, बाल० खं०)।
[२९] मन–महि (बाल०, रस०, नवल०)। [३०] बास–बाँकु (नवल०)।
[३१] रची–बनी (रस०); बिना (बाल०)। रंजित–अंजित (बाल० रस०)।

श्रीकृष्णजू को विभ्रम हाव, यथा–(सवैया)

नँदनंदन खेलत हे बने गात बनी छबि चंदन के जल की।
वृषभानसुताहि बिलोकत ही रुचि चित्त में बिभ्रम की झलकी।
गिरि गात न जानत पाननि खात बिरी करि पंकज के दल की।
बिहँसी सब गोपसुता हरि-लोचन मूँदि सुरोचि दृगंचल की ॥३२॥

अथ विहृत हाव-लक्षण–(दोहा)

बोलनि के समयें बिषें बोलन देइ न लाज।
बिहृत हाव तासों कहैं, 'केसव कबि' कबिराज ॥३३॥

अथ राधिका को विहृत हाव, यथा–(सवैया)

मेरे कहे दहिये जु तऊ फिरि ग्रीष्म ज्यों हठ-काठ दहौगी।
पैरिबो प्रेम-समुद्र पराए कराए करें कृत क्यों निबहौगी।
हौंस मरें सजनी सिगरी कबहूँ हरि सों हंसि बात कहौगी।
पी-चित की चितसारी चढ़ी चित की पुतरी भई कौलौं रहौगी ॥३४॥

श्रीकृष्णजू को विहृत हाव, यथा–(सवैया)

'केसवदास' सों आजु सखी बृषभानु-कुमारी उराहनो दीनो।
गारि दई अरु मारि दई अरबिंदन सों मनु कै हितहीनो।
सीख दई, सुख पाइ लई उर लाइ सुगंध चढ़ाइ नवीनो।
उत्तरु देइ को नंदकुमार कछू सिर नीचे तें ऊँचो न कीनो ॥३५॥

अथ विलास हाव, लक्षण–(दोहा)

खेलत बोलत हँसत अरु चितवत चलत प्रकास।
जल थल 'केसवदास' कहि उपजत बिबिध बिलास ॥३६॥

श्रीराधिकाजू को विलास हाव, यथा–(कबित्त)

किलकत अलिक जु तिलक-चिलक मिस,
भौंहनि में बिभ्रमनि भावभेद दीने हैं।
लोचननि सोचिन सकोचिन नचावति ही
दसन चमक हीं चकित चित कीने हैं।
'केसोदास' मंद हास अनायास दास करि
लीनें केसोराय जिय जद्यपि प्रबीने हैं।
मोहन के तन मन मोहिबे को मेरी आली,
तेरे मुख सुख हीं अनंत ब्रत लीने हैं ॥३७॥

[३४] पैरिबो पौरिवो (बाल० खं०)। करें कृत-किये कित (नवल०)।
[३७] केसौदास०-मंदहास मुखबास अनियास (नवल०)।
[३७] आली-सखी (बाल०); भट्ट (नवल०)।

श्रीकृष्णजू को विलास हाव, यथा—(कवित्त)

जिन न निहारे ते निहोरत निहारिबे कौं,
काहू न निहारे जिनि कैसेंहूँ निहारे हैं।
सुर नर नाग नव कन्यनि के प्रानपति,
पतिदेवतानि हूँ के हियनि बिहारे हैं।
इहि बिधि 'केसोदास' रावरे असेष अंग,
उपमा न उपजी बिरंचि पचि हारे हैं।
रूप-मद-मोचन मदन-मद-मोचन हैं
तीय-ब्रत-मोचन बिलोचन तिहारे हैं ॥३८॥

अथ किलकिंचित हाव, लक्षण—(दोहा)

श्रम अभिलाष सगर्ब स्मित क्रोध हर्ष भय भाव।
उपजत एकहि बार जहँ तहँ किलकिंचित हाव ॥३९॥

श्रीराधिकाजू को किलकिंचित हाव, यथा—(सवैया)

कौने रसै बिहँसै लखि कौनहिं कापर कोपि के भौंह चढ़ावै।
भूलत लाज भटू कबहूँ कबहूँ मुख अंचल मेलि दुरावै।
कौन की लेति बलाय बलाय ल्यौं, तेरी दसा कहि मोहिं न भावै।
ऐसी तौ तू कबहूँ न भई अब तोहि दई जिनि बाइ लगावै ॥४०॥

श्रीकृष्णजू को किलकिंचित हाव, यथा—(सवैया)

ऐसी है गोकुल के कुल की जिनि दच्छिन नैन किये अनुकूले।
खंजन से मनरंजन 'केसव' हास बिलास लता लगि भूले।
बोलें भुकौ उभकौ अनबोलें फिरौ बिभुके से हिये महि फूले।
रूप भए सबके विष ऐसे ह्वै कान्ह कहौं रस कौन के भूले ॥४१॥

अथ बिब्बोक हाव-लक्षण—(दोहा)

रूप प्रेम के गर्व तें कपट अनादर होइ।
तहँ उपजत बिब्बोक-रस यह जानत सब कोइ ॥४२॥

श्रीराधिकाजू को बिब्बोक हाव, यथा—(सवैया)

आवत जानि कै सोइ रही हरएँ हरि बैठे न जानि जगाई।
साहस कै उरु मध्य धर्यो कर जागत रोम की रोंचि जनाई।
नीबी विमोचत चौंकि उठी पहिचानि भुकी बतियाँ कहि बाई।
बासर गाइ गँवार चरावत आवत हैं निसि सेज पराई ॥४३॥

---

[४१] हास विलास-हार बिहार (बाल०)।

श्रीकृष्ण को बिब्बोक हाव, यथा–(सवैया)

एक समै इक गोपी सों 'केसव' कैसहुँ हाँसी की बात कही।
जा कहँ तात दई तजि ताहि कहा हमसों रस-रीति नहीं।
सुनि को प्रतिऊतरु देई सखी दृग-आँसुनि की अवली उमही।
उर लाइ लई अकुलाइ तऊ अधिरातक लौं हिलकी न रही।।४४।।

अथ बिच्छित्ति हाव-लक्षण–(दोहा)

भूषन भूषिबे को जहाँ होइ अनादर आनि।
तहाँ बिछित्ति बिचारिये 'केसवदास' सुजानि।।४५।।

श्रीराधिकाजू को बिच्छित्ति हाव, यथा–(सवैया)

तन आपनें भाए सिंगार सिंगारत हैं ये सिंगार सिँगारै वृथा हीं।
ब्रजभूषन-नैननि भूख है जाकी सु तौ पै सिंगार उतारे न जाहीं।
सब होत सुगंधनि हीं तें सुगंध सुगंध तें जाति सुगंध सुभाहीं।
सखि तोहिं तें हैं सब भूषन भूषित भूषन तें तुम भूषित नाहीं।।४६।।

श्रीकृष्णजू को बिच्छित्ति हाव, यथा–(सवैया)

पान न खाए न पाग रची पलटे पट चित्त कहा धरि कै।
कंठसिरी बनमाल मनोहर हार उतारे धरे अरि कै।
चंदन चित्रनि लोपि सलोचन लोक बिलोकनि सों लरि कै।
अंग सुभाइ सुबास प्रकासित लोपिहौ 'केसव' क्यों करि कै।।४७।।

अथ मोट्टाइत हाव लक्षण–(दोहा)

हेला लीला करि जहाँ प्रकटत सात्विक भाव।
बुधिबल रोकत सोभियै सो मोट्टाइत हाव।।४८।।

श्रीराधिकाजू को मोट्टाइत हाव, यथा–(सवैया)

खेलत हे हरि बागे बने जहाँ बैठी पिया रति तें अति लोनी।
'केसव' कैसहुँ पीठि में डीठि परी कुच कुंकुम की रुचि रोनी।
मात-समीप दुराई भलें तिनि सातुक भावनि की गति होनी।
धूरि कपूर की पूरि बिलोचन सूँधि सरोरुह ओढ़ि उढ़ोनी।।४९।।

श्रीकृष्णजू को मोट्टाइत हाव, यथा–(सवैया)

भोजन कै वृषभानु सभा महँ बैठे हे नंद सदा सुखकारी।
गोप घने, बलबीर बिराजत, खात बनाइ बिरी गिरिधारी।

---

[४६] सिंगार०--हैं ए–शृंगार नहीं ये--शृंगार (नवल०); नहीं ये--नहीं सुगंध (बाल०)।
[४७] रची—बनी (बाल०)।

राधिका झाँकी झरोखनि झाँप सी लागि गिरे मुरझाइ बिहारी।
सोर भयो सकुचे समुझें हरवाइ कह्यो हरि लागी सुपारी ॥५०॥

अथ कुट्टमित हाव-लक्षण—(दोहा)

केलि-कलह में सोभियै केलि कपट पट रूप।
उपजत है तहँ कुट्टमित हाव कहत कबि भूप ॥५१॥

श्रीराधिकाजू को कुट्टमित हाव, यथा—(सवैया)

पहिलें हठि रूठि चली उठि पीठि दै मैं चितई सखि तैंन लखी री।
पुनि धाइ धरें हरिजू की भुजानि तें छूटिबे कों बहु भाँति झखी री।
गहि कै कुच पीड़न दन्त नखच्छत बैरिनि की मरजाद नखी री।
पुनि ताही को पान खवावति है उलटी कछू प्रीति की रीति सखी री ॥५२॥

श्रीकृष्णजू को कुट्टमित हाव, यथा—(सवैया)

देखतहीं जिहिं मौन गही अरु मौन तजें कटु बोल उचारे।
सौंह कियें हूँ न सौंहों कियों मनुहारि कियें हूँ न सूधें निहारे।
हा हा कै हारि रहे मनमोहन पाइ परें जिनि लातन मारे।
मंडत हैं मुहँ ताही को अंक लै हैं कछू प्रेम के पाठ निन्यारे ॥५३॥

अथ बोधक हाव-लक्षण—(दोहा)

गूढ़ भाव को बोध जहँ 'केसव' औरहि होइ।
तासों बोधक हाव सब, कहत सयाने लोइ ॥५४॥

श्रीराधिकाजू को बोधक हाव, यथा— (सवैया)

बैठी हुती बृषभान-कुमारि सखीनि की मंडली मंडि प्रबीनी।
लै कुँभिलानो सो कंज परी इक पाइनि आई गुवारि नवीनी।
चंदन सों छिरक्यों वह वाकहँ पान दए करुना-रस-मीनी।
चंदन चित्र कपोलनि लोपि कै अंजन आँजि बिदा करि दीनी ॥५५॥

श्रीकृष्ण को बोधक हाव, यथा—(सवैया)

सखि गोकुल गोप-सभा महँ गोबिंद बैठे हुते दुति कों धरि कै।
जनु 'केसव' पूरनचंद लसै चित चारु चकोरनि को हरि कै।
तिनकों उलटो करि आनि दियो किहुँ नीरज नीर नएँ भरि कै।
कहि काहे तें नेंक निहारि मनोहर फेरि दयो कलिका करि कै ॥५६॥

---

[५०] झाँप-झाँकि (रस०) राधिका०—राधिका झाँकि झरोखन ह्वै कवि केशव रीझि गिरे सुविहारी (नवल०)।

[५६] गोकुल-मोहन (बाल०, रस०, बाल० खं०, नवल०)। चारु—चोर (नवल०)।

(दोहा)

राधा राधारमन के कहे यथामति हाव।
ढिठई 'केसवराइ' की छमियो कबि कविराव ॥५७॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारश्रीइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
राधिकाकृष्णहावभाववर्णनं नाम षष्ठः प्रभावः ॥४॥

७

अथ अष्ट नायिका-वर्णन–(दोहा)

ये सब जितनी नायिका, बरनी मति-अनुसार।
'केसवदास' बखानियै ते सब आठ प्रकार ॥१॥
स्वाधिनपतिका, उत्कहीं, बासकसज्जा नाम।
अभिसंधिता बखानियै और खंडिता बाम ॥२॥
'केसव' प्रोषितप्रेयसी लब्धाबिप्र सु आनि।
अष्ट नाइका ये सकल अभिसारिका सुजानि ॥३॥

अथ स्वाधीनपतिका-लक्षण–(दोहा)

'केसव' जाके गुन-बँध्यो सदा रहै पति संग।
स्वाधिनपतिका तासु कों, बरनत प्रेम-प्रसंग ॥४॥

प्रच्छन्न स्वाधीनपतिका, यथा–(सवैया)

'केसव' जीवन जो ब्रज को पुनि जीवहु तें अति बापहि भावै।
जापर देव-अदेव-कुमारिनि वारस माइन बार लगावै।
ता हरि पै तू गँवार की बेटी महावर पाइ भवाँइ दिवावै।
हौं तौ बची अब हाँसिनि हू, ऐसें और जौ देखै तौ ऊतरु आवै ॥५॥

प्रकाश स्वाधीनपतिका, यथा–(कबित्त)

चोली को सो पान तोहि करत सँवारिबोई,
मुकुर ज्यों तोहीं बीच मूरति समानी है।
तोहीं तियदेवता पै पायो पति 'केसोदास',
पतिनी बहुत पतिदेवता बखानी है।
तेरे मनोरथ भागीरथ-रथ पाछै पाछै,
डोलत गुपाल मेरो गंगा को सो पानी है।

---

[५] गँवार–अहीर (नवल०)।

ऐसी बात कौन जु न मानी सुनि मेरी रानी,
उनकें तौ तेरी बानी बेद की सी बानी है ।।६।।

अथ उत्का-लक्षण–(दोहा)

कौनहुँ हेत न आइयो, प्रीतम जाके धाम।
ताकों सोचति सोच हिय 'केसव' उत्का बाम ।।७।।

प्रच्छन्न उत्का, यथा–(कवित्त)

किधौं गृह काज कै न छूटत सखा-समाज,
किधौं कछू आज ब्रत-बासर बिभात तैं।
दीनो तैं न सोधु, किधौं काहू सों भयो बिरोधु,
उपज्यो प्रबोधु किधौं उर अवदात तैं।
सुख में न देहु किधौं मोही सों कपट-नेहु
किधौं देखि मेहु अति डरे अधिरात तैं।
किधौं मेरी प्रीति की प्रतीति लेत 'केसोदास'
अजहूँ न आए मन सु धौं कौन बात तैं ।।८।।

प्रकाश उत्का, यथा–(सवैया)

सुधि भूलि गई, भुलए किधौं काहू कि भूलेई डोलत बाट न पाई।
भीत भए किधौं 'केसव' काहू सों, भेंट भई कोऊ भामिनि भाई।
मग आवत हैं किधौं आइ गए, किधौं आवहिं गे सजनी सुखदाई।
अब आए न नंदकुमार बिचारि, सु कौन बिचार अबार लगाई ।।९।।

अथ बासकसज्जा-लक्षण–(दोहा)

बासकसज्जा होइ सो, कहि 'केसव' सबिलास।
चितवै रति गृह द्वार त्यौं पिय-आवनि को आस ।।१०।।

बासकसज्जा, यथा–(कबित्त)

चंदन बिटप बपु कोमल अमल दल,
ललित वलित लता लपटी लवंग की।
'केसोदास' तामें दुरी दीप की सिखा सी दौरि,
दुरवति नील बास दुति अंग अंग की।
पौन पानी पंछी पसु बस सद जित जित
होइ तित तित चौंकि चाहें चोप संग की।
नंदलाल-आगम बिलोकें कुंजजाल बाल,
लीनी गति तेहीं काल पंजर-पतंग की ।।११।।

---

[६] बीच–महँ (बाल०)। बेद–देव (बाल०)।

प्रकाश वासकसज्जा, यथा–(सवैया)

भाषति है सुख-बैन सखी सहुलास हियें अभिलाषनि जोहै।
कोमल हासनि नैन बिलासनि अंग-सुबासनि कै मन मोहै।
सूरतिवंति किधौं तुलसी तुलसी-बन में, रति-मूरति को है।
कुंज बिराजति गोपबधू कमला जनु कुंजकुटी महिं सोहैं ।।१२।।

अथ अभिसंधिता-लक्षण–(दोहा)

मान मनावत हूँ करै, मानद को अपमान।
दूनो दुख तिन बिनु लहै अभिसंधिता बखान ।।१३।।

प्रच्छन्न अभिसंधिता, यथा–(कबित्त)

बार बार बोले जब बोल्यो न बालिस तब,
बालक ज्यों बोलिबे कौं कत बिललातु है।
ज्यों ज्यों परे पाइनि त्यों पाहन तें पीन भयो,
होतु कहा अब कियें माखन सो गातु है।
'केसोदास' सब छाड़ि कियो हठ ही सों हेत,
बाहु छाड़ि जिय जिये बिनु कहा जातु है।
ऐसे प्यारे पीय ही सों मान्यो न मनायो तब,
ऐसी तोहिं बूझियै जु पाछें पछितातु है ।।१४।।

प्रकाश अभिसंधिता, यथा–(सवैया)

पाइ परें हूँ तें प्रीतम त्यौं कहि 'केसव' क्यों हूँ न मैं दृग दीनी।
तेरी सखी सिख सीखी न एक हूँ रोष ही की सिख सीखि जु लीनी।
चंदन चंद समीर सरोज जरै दुख देह भई सुख हीनी।
मैं उलटी जु करी बिधि मों कहँ न्यायनि हीं उलटी बिधि कीनी ।।१५।।

अथ खंडिता-लक्षण–(दोहा)

आवन कहि आवै नहीं आवै प्रीतम प्रात।
जाके घर सो खंडिता कहै जु बहु बिधि बात ।।१६।।

प्रच्छन्न खंडिता, यथा–(कबित्त)

आँखिनि जौ सूझत न काननि तौ सुनियत,
'केसोदास' जैसे तुम लोकनि में गाए हौ।
बंस की बिसारी सुधि काक ज्यों चुनत फिरौ,
जूठे सीठे सीथ सठ-ईठ ढीठ ठाए हौ।
दूरि दूरि करत हूँ दौरि दौरि गहौ पाइ,
जानौं न कुठौर ठौर जानि जिय पाए हौ।

काको घर घालिबे कौं बसे कहाँ घनस्याम,
घूघू ज्यों घुसन प्रात मेरे गृह आए हौ ॥१७॥

प्रकाश खंडिता यथा—(सवैया)

आजु कछू अँखियाँ हरि और सी मानों महावर माहँ रँगी हैं।
मोहन मोही सी लागति मोहिं इतें पर मोहन मोह लगी हैं।
मेरी सौं मोसहूँ मानहुँ बेगि हियें रस-रोष की रीति जगी हैं।
मेरे वियोग के तेज तचीं किधौं 'केसव' काहू के प्रेम पगी हैं ॥१८॥

अथ प्रोषितपतिका-लक्षण—(दोहा)

जाकों प्रीतम दै अवधि, गयो कौन हूँ काज।
ताकों प्रोषितप्रेयसी कहि बरनत कबिराज ॥१९॥

प्रच्छन्न प्रोषितपतिका, यथा—(सवैया)

'केसव' कैसेहूँ पूरबपुन्य मिल्यो मनभावतो भाग भरयो री।
जानै को माई कहा भयो क्योंहूँ जु औधि को आधिक द्योस टरयो री।
ताकहुँ तू न अजौं हँसि बोलै जऊ मेरो मोहन पाइ परयो री।
काठहू तें हठ तेरो कठोर इतें बिरहानल हू न जरयो री ॥२०॥

प्रकाश प्रोषितपतिका, यथा—(सवैया)

औधि दै आए उहाँ उनसों वह भाजन कै अबहीं हम ऐ हैं।
ताकहँ तौ अब लौं बहराइ कै राखी बरचाइ मरू करि मैं हैं।
बैठे कहा इनके ढिग 'केसव' जाहु नहीं कोउ जाइ जु कै हैं।
जानत हौ उनि आँखिनि तें अँसुवा उमगे बहुरयो पुनि रैहैं ॥ १॥

अथ विप्रलब्धा-लक्षण—(दोहा)

दूती सों संकेत कहि लैन पठाई आप।
लब्धाबिप्र सो जानियै अनआए संताप ॥२२॥

प्रच्छन्न विप्रलब्धा, यथा—(सवैया)

सूल से फूल सुबास कुबास सी भाकसी से भए भौन सभागे।
'केसव' बाग महावन सो जुर सी चढ़ी जोन्ह सबै अँग दागे।
नेह लग्यो उर नाहर सी निसि नाह घरीक कहूँ अनुरागे।
गारी से गीत बिरी बिष सी सिगरेई सिंगार अँगार से लागे ॥२३॥

प्रकाश विप्रलब्धा, यथा—(कबित्त)

देखत उदधिजात देखि देखि निज गात,
चंपक के पात कछू लिख्यो है बनाइ कै।
सकल सुगंध डारि फूल-माल तोरि डारि
[illegible]

लै लै दीह साँस तजि बिबिध बिलास हास,
'केसोदास' ह्वै उदास चली अकुलाइ कै।
सेइ कै संकेत सूनो कान्हजू सों बोलि ऊनो,
मोसों कर जोरि दूनो दूनो दुख पाइ कै ॥२४॥

अथ अभिसारिका-लक्षण–(दोहा)

हित तें कै मद-मदन तें पिय पै मिलै जु जाइ।
सो कहियै अभिसारिका बरनी त्रिबिध बनाइ ॥२५॥

अथ स्वकीया अभिसारिका-लक्षण–(दोहा)

अति सलज्ज पग मग धरै चलत बधुन के संग।
स्वकिया को अभिसार यह भूषन भूषित अंग ॥२६॥

परकीया अभिसारिका, यथा–(दोहा)

जनी सहेली सोभहीं बंधु बधू-सँग चार।
मग में देइ बराइ डग, लज्जा को अभिसार ॥२७॥

प्रच्छन्न प्रेमाभिसारिका, यथा–(कबित्त)

लीनो हम मोल अनबोलें आईं जान्यो मोह,
मोहि घनस्याम घनमाला बोलि लाई है।
देख्यो ह्वै है दुख जहाँ देह हू न देखो परै,
देखी कैसें बाट 'केसो' दामिनी दिखाई है।
ऊँचे नीचे बीच-कीच कंटकनि परे पग
साहस-गयंद-गति अति सुखदाई है।
भागी भयकारी निसि निपट अकेली तुम,
नाहीं प्राननाथ साथ प्रेमजू सहाई है ॥२८॥

प्रकाश प्रेमाभिसारिका, यथा–(कबित्त)

नैननि की अतुराई बैननि की चतुराई,
गात की गुराई न दुरति दुति चाल की।
आपने चरित्रनि के चित्रत बिचित्र चित्र,
चित्रनी ज्यों सोहै साथ पुत्रिका गुवाल की।
चंद्र के समान चारु चाय सों चढ़ाएँ फिरे,
करिकै तिहारे मृग-नैननि की पालकी।

[२६] पग०--डगमग भरी (बाल०)। संख्या २६-२७ 'रस०' में नहीं हैं।
[२८] परे-पीड़े (नवल०)। [२६] साथ-संग (रस०)।

कीजे पय-पान अरु खैये पान प्रानप्यारे
आई है जू आई अलबेली ग्वालि कालि की ॥२९॥

प्रच्छन्न गर्वाभिसारिका, यथा—(सवैया)

लाड़िली लीली कलोरी लुरी कहूँ लाल लुके कहूँ अंग लगाइ कै।
आजु तौ 'केसव' कैसेहुँ लेरुवै लागन देति न देखहु आइ कै।
बेगि चलौ उठि आई लिवावन दौरि अकेलियै हौं अकुलाइ कै।
भूलिहुँ गोकुल गाँउ में गोबिंद कीजै गरूर न गाइ चराइ कै ॥३०॥

प्रकाश गर्वाभिसारिका, यथा—(कवित्त)

चंदन चढ़ाइ चारु अंबर के उर हारु,
सुमन-सिंगार सोहै आनंद के कंद ज्यों।
वारौ कोरि रतिनाथ वीन में बजावै गाथ,
मृगज मराल साथ बानी जगबंद ज्यों।
चौंकि चौंकि चकई सी सौतिन की दूती चलीं
सौतें भईं दीनी अरबिंद-दुति मंद ज्यों।
तिमिर-वियोग भूले लोचन चकोर फूले
आई ब्रजचंद चलि चंदावलि चंद ज्यों ॥३१॥

प्रच्छन्न कामाभिसारिका, यथा—(कवित्त)

उरझत उरग चपत चरननि फन,
देखत बिबिध निसिचर दिसि चारि के।
गनति न लागत मुसल-धार सुनत न
झिल्लीगन-घोष निरघोष जलधारि के।
जानति न भूषन गिरत, पट फाटत न
कंटक अटकि उर उरज उजारि के।
प्रेतनि की पूछैं नारि कौन पै तैं सीख्यो यह
जोग कैसो सारु अभिसारु अभिसारिके ॥३२॥

प्रकाश कामाभिसारिका, यथा—(सवैया)

गोप बड़े बड़े बैठे अथाइन 'केसव' कोटि सभा अवगाहीं।
खेलत बालक-जाल गलीन में बाल बिलोकि बिलोकि बिकाहीं।
आवति जाति लुगाईं चहूँ दिसि घूँघट में पहिचानति छाहीं।
चंद सो आननु काढ़ि कहा चली सूझतु है कछु तोहिं की नाहीं ॥३३॥

[२९] चढ़ाएँ फिरै-चढ़ी फिरति (बाल०, नवल०)।
[३०] उठि-चलि (नवल०)। लिवावन-बुलावन (नवल०)।

(दोहा)

'केसवदास' सु तीन बिधि, बरनी स्वकिया नारि।
परकीया द्वै भाँति पुनि आठ आठ अनुहारि ॥३४॥
उत्तम मध्यम अधम अरु तीन तीन बिधि जान।
प्रकट तीन सै साठ तिय 'केसवदास' बखान ॥३५॥

अथ उत्तमा-लक्षण—(दोहा)

मान करै अपमान तें तजै मान तें मान।
पिय देखें सुख पावई ताहि उत्तमा जान ॥३६॥

उत्तमा, यथा—(सवैया)

होइ कहा अब के समुझे न तबै समुझे जब हे समुझाए।
एक ही बंक बिलोकनि माहँ अनेक अमोल बिबेक बिकाए।
जानिपनो न जनावहु जी जनमावधि लौं उहि जानि हौ पाए।
बात बनाइ बनाइ कहा कहौ लेहु मनाइ मनाइ ज्यों आए ॥३७॥

अथ मध्यमा-लक्षण—(दोहा)

मान करै लघु दोष तें छोड़ै बहुत प्रनाम।
'केसवदास' बखानियै ताहि मध्यमा बाम ॥३८॥

मध्यमा, यथा—(सवैया)

भूलेहूँ सूधें नहीं चितयो इहि कान्ह कियो लचि लालच केतौ।
हाहा कै हारि रहे मनमोहन पाइ परे त्यों परेई रहे तौ।
हौं तो यहै तब ही की बिचारति होतौ गुमान क्यों याहि धौं एतौ।
लाँबी लटैं अरु पातरी देह जु नैंक बड़ी बिधि आँखि न देतौ ॥३९॥

अथ अधमा-लक्षण—(दोहा)

रूठै बारहिं बार जो तूठै बेहीं काज।
ताही सों अधमा सबै कहि बरनत कबिराज ॥४०॥

अधमा, यथा—(सवैया)

काटौं कपट्ट जो कान्ह सों कीजै री बाँटौं वे बोल कुबोल कसाई।
फारौं सु घूँघट ओट अटै सोई दीठि फोरौ अध कों जु धसाई।
'केसव' ऐसी सखीन कों मारौं सिखै कै करैं हित की जु हँसाई।
बारहि बार को रूसबो बारौं बहाऊँ सु बुद्धि बियोग-बसाई ॥४१॥

---

[३८] मनमोहन-पुनि केसव (बाल०)।

(दोहा)

इहि बिधि नायक-नायिका बरनहुँ सहित बिवेक।
जाति काल बय भाव तें 'केसव' जानि अनेक ॥४२॥

अथ अगम्या नायिका--(दोहा)

तजि तरुनी संबंध की जानि मित्र द्विजराज।
राखि लेइ दुख भूख तें ताकी तिय तें भाज ॥४३॥
अधिक बरन अरु अंग घटि, अंत्यज जन को नारि।
तजि बिधवा अरु पूजिता रमियहु रसिक बिचारि ॥४४॥
यह संजोग सिंगार की 'केसव' बरनी रीति।
बिप्रलंभ सिंगार की रीति कहौं करि प्रीति ॥४५॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायामष्ट नायिकासंभोगश्रृंगार वर्णनं नाम सप्तमः प्रभावः ॥ ७ ॥

—-—

८

अथ विप्रलंभ श्रृंगार लक्षण—(दोहा)

बिछुरत प्रीतम प्रीतमा होत जु रस तिहिं ठौर।
बिप्रलंभ सिंगार कहि बरनत कबि-सिरमौर ॥१॥

अथ विप्रलंभ श्रृंगार-भेद-वर्णन—(दोहा)

बिप्रलंभ सिंगार को चारि प्रकार प्रकास।
प्रथम पूर्ब-अनुराग पुनि करुना, मान, प्रबास ॥२॥

अथ पूर्वानुराग लक्षण—(दोहा)

देखतहीं दुति दंपतिहिं उपजि परत अनुराग।
बिन देखें दुख देखियै सो पूरब-अनुराग ॥३॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न पूर्वानुराग, यथा—(कवित्त)

फूल न दिखाव सूल फूलत है हरि बिनु
दूरि करि माल बाल-ब्याल सी लगति है।
चँवर चलाव जिन, बीजन हलाव मति
'केसव' सुगंध बाय बायसी लगति है।

चंदन चढ़ाव जिन ताप सी चढ़ति तन,
कुंकम न लाव अंग आग सी लगति है।
बार बार बरजत बावरी है वारौं आनि
बीरा न खवाव बीर बिष सी लगति है ॥४॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश पूर्वानुराग, यथा–(सवैया)

'केसव' कैसहुँ ईठनि दीठि ह्वै दीठ परे रति-ईठ कन्हाई।
ता दिन तें मन मेरे कों आनि भई सु भई कहि क्यों हूँ न जाई।
होइगी हाँसी जौ आवै कहूँ कहि जानि हितू हित बूझन आई।
कैसें मिलौंरी मिले बिनु क्यों रहौं नैननि हृत हियें डर माई ॥५॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न पूर्वानुराग, यथा–(सवैया)

एक समै बृषभान-सुता सजनी-गन में जननी-संग बैसी।
जात उन्हैं चितयो जिहिं रीति सुप्रीति हियें कहि जाइ न तैसो।
ता दिन तें जग की जुबतीनि की लागत 'केसव' बात अनैसी।
चाहि फिरयो चित चक्र चहूँ न कहूँ दुति देखियै वा मुख कैसी ॥६॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश पूर्वानुराग, यथा–(सवैया)

भाँति भली बृषभान-लली जब तें अँखियाँ अँखियानि सो जोरी।
भौंह चढ़ाइ कछू डरपाइ बुलाइ लई हँसि कै बस भोरी।
'केसव' काहूँ त्यौं ता दिन तें रुचि कै न बिलोकति केतौ निहोरी।
लीलत है सबहीं के सिंगार अँगारनि ज्यों बिनु चंद चकोरी ॥७॥

अथ दश दशा-वर्णन–(दोहा)

अबिलोकनि आलाप तें मिलिवे कौं अकुलाहिं।
होत दसा दस बिनु मिलें 'केसव' क्यों कहि जाहिं ॥८॥

दश दशा नाम-कथन– (दोहा)

अभिलाष सु चिंता गुनकथन स्मृति उद्वेग प्रलापु।
उन्माद व्याधि जड़ता भएँ होतु मरन पुनि आपु ॥९॥

अथ अभिलाष-लक्षण–(दोहा)

नैन बैन मन मिलि रहें चाहै मिल्यो सरीर।
कहि केसव' अभिलाष यह बरनत हैं कबि धीर ॥१०॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न अभिलाष, यथा–(सवैया)

सुधि बुद्धि घटी दुति देह मिटी दिन हीं दिन चाहियै बाढ़ति सी।
कछु 'केसब' आपने पेट की पीर दुरावति है मुख काढ़ति सी।
बिसरयो सुख भूख सखो निसि नींद परी चित-चाहन आढ़ति सी।
गिरि गो कछु, गाँठि तें छूटि छबीलो सु काहे तें डोलति ढ़ढ़ति सी ॥११॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश अभिलाष, यथा–(सवैया)

जौ कहूँ देखें लगै दिख-साध दिखावत हीं दिन हीं दुख पैहौं।
या ही में 'केसव' देखियै वातन देखिहौं देखि सखी अधिकैहौं।
यों उनकी दुति देखिहौं देह ज्यों आपनो देह न देखन दैहौं।
देखिबे कौ बहरावति मोहिं सु हौंऽब कहा कछु देखि ही लैहौं ॥१२॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न अभिलाष, यथा–(सवैया)

पाइ परौं बलि जाऊँ मनोहर आपुन सी न करौ अब ताहू।
देखें अघात नहीं दिन के फिरि बारक धौं अनदेखें ही जाहू।
मोसों कही सु कही अब 'केसव' कैसहूँ कान्ह पत्याव न काहू।
डाढ़हुगे जु कहूँक इती रुचि तातो है नैंक सिराइ धौं खाहू ॥१३॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश अभिलाष, यथा–(सवैया)

है कोइ माई हितू इनको, यह जाइ कहै किहिं बाइ बहे हैं।
न्याय हीं केसव' गोकुल की कुलटा कुलनारिनि नाउ लहे हैं।
देखि री देखि लगाइ टकी इत सोनो सो घोलि कै चाहि रहे हैं।
को है री को जैसें जानत नाहिन काल्हि ही वाके सँदेस कहे हैं ॥१४॥

अथ चिंता-लक्षण–(दोहा)

कैसें कै मिलियै मिलें, हरि कैसें बस होइ।
यह चिंता चित चेत कै बरनत हैं सब कोइ ॥१५॥

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न चिंता, यथा–(दोहा)

आपुनहीं तन आपनो होत न देखें जाहि।
आपुनहीं तें आपनो क्यों मन करिहै ताहि ॥१६॥

श्रीराधिकाजू की प्रकाश चिंता, यथा–(कबित्त)

प्रेम भय भूप रूप सचिव सँकोच सोच,
बिरह-बिनोद पील पेलियत पचि कै।
तरल तुरंग अवलोकनि अनंत गति,
रथ मनोरथ रहैं प्यादे गुन गचि कै।
दुहुँ ओर परी जोर घोर घन 'केसोदास'
होइ जीति कौन की को हारै जिय लचि कै।
देखत तुम्हैं गुपाल तिहि काल उहि बाल,
उर सतरंज की सी बाजी राखो रचि कै ॥१७॥

---

[१२] कहूँ–कहो (बाल०); (रस०)। दुति-दुरि (बाल०; नवल०)।
[१४] चाहि–डाहि (बाल०)।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न चिंता, यथा–(कबित्त)

'केसोदास' सकल सुबास को निवास तन,
कहि कब भृकुटि-बिलास त्रास छोलिहै।
कैसो है सुदिन बड़भागी अनुरागी जिहिं,
मेरो दृग वाके संग लागि लागि डोलिहै।
ऐसी ह्वै है ईस पुनि आपने कटाछ मृग-
मद घनसार सम मेरे उर ओलिहै।
दीप के समीप पुनि दीपति बिलोकें वह,
चित्र की सी पूतरी सु क्यों हूँ हँसि बोलिहै ।।१८।।

श्रीकृष्णजू की प्रकाश चिंता, यथा–(सवैया)

राधिका की जननी कों जनी कोऊ क्यों हूँ स्वयंवर बात जनावै।
देवकुमार से गोपकुमारनि मान दै दै बृषभान बुलावै।
'केसव' कैसहु बाल भली वह माल सु मेरे हियें पहिरावै।
तोहि सखी समदै संग वाकें सु क्यों यह बात सबै बनि आवै ।।१९।।

अथ गुणकथन-लक्षण–(दोहा)

जहँ गुनगन गनि देह-दुति बरनत बचन बिसेखि।
ताकहँ जानहु गुन-कथन, मनमथ-मथन सु लेखि ।।२०।।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न गुणकथन, यथा–(कबित्त)

कीरति सहित नित 'केसव' कुंवर कान्ह,
केवल अकीरति नृपति सोम मानियै।
छुवत चंपक पात कुँभिलात जात तन,
अति हरषत गात हरिजू को जानियै।
कोमल सुबासजुत प्यारे के परम पानि,
कंटक-कलित नाल-नलिन बखानियै।
लोचन बिसाल चारु मदनगुपालजू के,
मदन-सरनि दरसन-रस हानियै ।।२१।।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश गुणकथन, यथा–(सवैया)

खंजन हैं मनरंजन 'केसव' रंजन नैन किधौं मति जी की।
मीठी सुधा कि सुधाधर की दुति दंतनि की किधौं दाड़िम ही की।
चंद भलो मुखचंद किधौं सखि सूरति काम कि कान्ह की नीकी।
कोमल पंकज कै पद-पंकज प्रानपियारे कि मूरति पी की ।।२२।।

---

[१८] दृग–बीर (बाल०); ग्रंग (नवल०)।
[१९] जनावै–चलावै (बाल०)।
[२०] सुबास–सुबाहु (बाल०)।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न गुणकथन, यथा—(सवैया)

जौ कहौं 'केसव' सोम सरोज सुधा सुर भृंगनि देह दहे हैं।
दाड़िम के फल श्रीफल बिद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं।
कोक कपोत करी अहि केहरि कोकिल कीर कुचील कहे हैं।
अंग अनूपम वा तिय के उनकी उपमा कहँ वेई रहे हैं ॥२३॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश गुणकथन, यथा—(सवैया)

लोचन बीच चुभी रुचि राधे की 'केसव' क्यों हूँ सु जाति न काढ़ी।
मानहुँ मेरें गही अनुरागनि कुंकम-पंक-अलंकृत गाढ़ी।
मेरियै लागि रही तनुता जनु यों दुति नील निचोल की बाढ़ी।
मेरे ही मानों हियें कहँ सूँघति यों अरबिंद दियें मुख ठाढ़ी ॥२४॥

अथ स्मृति-लक्षण—(दोहा)

और कछू न सुहाइ जहँ भूलि जाहिं सब काम।
मन मिलिबे की कामना ताही स्मृति है नाम ॥२५॥

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न स्मृति, यथा—(सवैया)

बोल्यो सुहाइ न खेल्यो हँस्यो अरु देख्यो सुहाइ न दुःख बढ़्यो सो।
नीकियौ बात सुनें समुझै न मनौं मन काहू के मोह मढ़्यो सो।
'केसव' ढूढ़ति यों उर में मतिमूढ़ भयो गुन गूढ़ पढ़्यो सो।
को करै साज बजावै को बीनहि वाको कछू चित चाक चढ़्यो सो ॥२६॥

श्रीराधिकाजू की प्रकाश स्मृति, यथा—(सवैया)

मेरे मिलाए हीं पै मिलिहौ मनमोहन सों मन मोहि न दीजै।
मौनहि मौन बनै न कछू अब क्यों मन मानद के रस भीजै।
ऐसे हीं 'केसव' कैसें जियै अहो पान न खाहु तौ पान्यौं न पीजै।
जानिहै कोऊ कहा करिहौ तब सोच न एतौ संकोच तौ कीजै ॥२७॥

श्रीकृष्णजू की प्रच्छन्न स्मृति, यथा—(सवैया)

घोरि घनो घनसार घस्यो घनस्याम सु चंदन छ्वै तन तूल्यो।
'केसव' कुंज को कूल चिनै प्रतिकूल भयो सुभ फूलनि फूल्यो।
भूले से डोलत बोलतहूँ उत जात कितै मन संभ्रम भूल्यो।
जानति हौं यह काहू के आजु मनोहर हार हिंडोरनि भूल्यो ॥२८॥

श्रीकृष्णजू की प्रकाश स्मृति, यथा—(सवैया)

बासन बास भए बिष 'केसव' डासन डासन की गति लीनैं।
चंदन चाँदनी त्यौं चित चाहै न चंद्रक चंद चिता-रस-भीनें।

[२४] अलंकृत-कलंकित (बाल०)।
[२७] सोच न एतौ-सोचु न तौ हौ (बाल०)।

पान न खात न पान करै कछु हास-बिलास बिदा करि दीनें।
ऐसी हैं गोकुल के कुल की जिहिं गोकुलनाथ के ये ढँग कीनें ॥२९॥

अथ उद्वेग-लक्षण–(दोहा)

दुखदायक ह्वै जात जहँ सुखदायक अनयास।
सो उद्वेग दसा दुसह जानहु 'केसवदास' ॥३०॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न उद्वेग, यथा–(दोहा)

चंदन हीं विष कंद है 'केसव' राहु इहीं गुन लीलि न लीनों।
कुंभज पावन जानि अपावन धोखें पियो पचि जानि न दीनों।
या सों सुधाधर सेष बिषाधर नाँउ धरयो बिधि दै बुधिहीनों।
सूर सों माई कहा कहियै जनि पापी लै आप बराबर कीनों ॥३१॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश उद्वेग, यथा–(सवैया)

'केसव' कालिह बिलोकि भजी वह, आजु बिलोकें बिना सु मरै जू।
बासर बीस बिसे बिष मींड़ियै राति जुन्हाई की जोति जरै जू।
पालिक तें भुव भूमि तें पालिक आलि करोरि कलालि करै जू।
भूषन देहु कछू ब्रजभूषन दूषन देह को हेरि हरै जू ॥३२॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न उद्वेग, यथा–(सवैया)

मेघनि ज्यों हँसि हंस न हेरत, हंसनि ज्यों घनरूप न पीवैं।
कंजनि ज्यों चित चंदन चाहत चंद ज्यों कंजनि क्यों हूँ न छीवैं।
ताल तें बागनि बाग तें तालनि ताल तमाल की जात न सीवैं।
कैसी हैं 'केसव' वे जुवतीं सुनि ऐसी दसा पिय की पल जीवैं ॥३३॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश उद्वेग, यथा–(सवैया)

सोचि सखी भरि लेति बिलोचन, काँपति देखति फूलें तमालहिं।
भूले से डोलत बोलत नाहिन, बाग गए किधौं तेरे ही तालहिं।
देख्यो जौ चाहति,देखि न आवति ? ऐसे में हौं न दिखैयै री लालहिं।
आजु कहा दिखसाध लगी जब देख्यो सुहाइ कछू न गुपालहिं ॥३४॥

अथ प्रलाप-लक्षण–(दोहा)

भँवत रहै मन भौंर ज्यों है तन मन परताप।
बचन कहै प्रिय पच्छ सों तासों कहत प्रलाप ॥३५॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न प्रलाप,यथा–(सवैया)

खेल न हाँसी न, खोरि अठाउ न, हेतु न बैर हियो कँपै रोसों।
लेनो न देनो, हलाव भलाव न, नातो न गोतो कहा कहौं तोसों।

---

[३१] जनि पापी लै यह पापु जु० (बाल०)।
[३२] कलालि-कलाप (नवल०)।

आनि दियो दुख में दुख 'केसव' कैसें हँसौं री कहा कहि कोसों।
नैंन भरिभरि ग्वालि कहै अरी देख्यो तैं कान्ह कहा कह्यो मोसों ॥३६॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश प्रलाप, यथा–(सवैया)

आलिनि मांझ मिली हुती खेलति, जाने को कान्ह धौं आए कहाँ तें।
ढीठहिं डीठ परयो न कछू सठ ढीठ गही हठि पीठि की घातें।
गई गड़ि लाजनि हीं हिय हौं तो उठी जरि 'केसव' काँपनी यातें।
इती रिस में न बची कबहूँ पै रही पचि हौं अँखियान के नातें ॥३७॥

श्रीकृष्ण को प्रच्छन्न प्रलाप, यथा–(सवैया)

नील निचोल दुराइ कपोल बिलोकति ही करि ओलिक तोही।
जानि परी हँसि बोलति भीतर भाजि गई अवलोकत मोही।
बूझिबे की जक लागी है कान्हहिं 'केसव' कै रुचि रूप लिलोही।
गोरस की सौं बबा की सौं तोहि कि बार लगी कहि मेरी सौं को ही ॥३८॥

श्रीकृष्ण को प्रकाश प्रलाप, यथा–(कबित्त)

मोहन मरीचिका सो हास, घनसार को सो
बास, मुख रूप की सी रेखा अवदात हैं।
'केसोदास' बेनी तो त्रिबेनी सी बनाइ गुही,
जामें मेरे मनोरथ मुनि से अन्हात हैं।
नेह उरझे से नैन देखिबे कौं बिरुझे से,
बिभुकी-सी भौंहैं उभके से उरजात हैं।
लोचन कमल चारु तिन पर पाइ देति,
तेरे घर आई आजु कहि कैसी बात हैं ॥३९॥

अथ उन्माद-लक्षण–(दोहा)

तरकि उठै पुनि उठि चलै चितै रहै मुँह देखि।
सो उन्माद जनावहीं रोवै हँसै बिसेखि ॥४०॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश उन्माद, यथा–(सवैया)

केसव चौंकति सी चितवै, छतिया धरकै, तरकै तकि छाँहीं।
बूझियै और कहै मुख और सु और की और भई पल माँहीं।

[३६] मलावन–मला उत (बाल०)। भरिभरि–भरे भरि (बाल०); नैननि नीर भरे (नवल०)।

[३७] ढीठ–दीठ (रस०)। गई गड़ि०–हौं गड़ि लाजनि ही जु गई पै (बाल०)। यातैं–पातैं (बाल०)।

[३८] निचोल–निचोर (रस०)।

[३९] लोचन कमल०–देवी सी बनाई कौन की है जाई यह तेरे घर आई आजु कह कैसी बातु है (रस०; नवल०)।

डीठि लगी, किधौं बाय लगी, मन भूलि परचो, कै करचो कछु काँहीं।
घूँघट की घट की पट की हरि आजु कछू सुधि राधिकै नाँहीं ॥४१॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न उन्माद, यथा–(ताटंक)

'केसव' सुधि बुधि हरित सु तुम बिनु बिथा अगाध राधिकहि बाढ़ी।
छूटी लट लटकति कटितट लौं चितवति नीठि नीठि करि ठाढ़ी।
तरकति तकि तोरति तिन तरफति अति अपार उपचारनि डाढ़ी।
सकसकाति लै सांस अचेत सु चेतहु प्रेम-प्रेत गहि गाढ़ी ॥४२॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न उन्माद, यथा–(सवैया)

गूढ़ अगूढ़ प्रकासत बातनि लोक अलोक की बात खरी सी।
रोवत हैं, कबहूँ हँसि गावत नाचत लाज की छाड़ि छरी सी।
काहू को सोच संकोच न 'केसव' देखत आवति देह मरी सी।
बाम कि बाय कि काम की बाय कि है हरि की मति काहू हरी सी ॥४३॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश उन्माद, यथा–(कबित्त)

सजल चकित चित चितवत चहूँ दिसि,
चाहि चाहि रहैं सुख, चपल चलत धाइ।
सोचत से मन, मन कंपत, तपत तन,
'केसोदास' रोवत हँसत उठैं गाइ गाइ।
चलहि दिखाऊँ तोहि देखतहीं भयो मोहिं,
भयो सु कहन आई तोसों अलि अकुलाइ।
जैसें कछु आँक-बाँक बकत हैं आजु हरि,
तैसें जिन नाउँ मुख काहू को निकसि जाइ ॥४४॥

अथ व्याधि-लक्षण–(दोहा)

अंग बरन बिबरन जहाँ, अति ऊँचे उस्वास।
नैन-नीर परिताप बहु, व्याधि सु 'केसोदास' ॥४५॥

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न व्याधि, यथा–(सवैया)

बेंनु तज्यो उनि बैन तें बोलौ न बोल बिलोकत बुद्धि भगी है।
वे न सुनें समुझें न तू बातहि प्रेत लग्यो किधौं प्रीति जगी है।
'केसव' वे तुहि तोहि रटैं रट तोहि इतै उनि हीं की लगी है।
वे भखैं पान न, पान्यौं न तू, सु तैं कान्ह ठगे कि तू कान्ह-ठगी है ॥४६॥

[४१] चौंकति–चौंकित (रस०)
[४२] हरित०–रहै तुम्हैं बिनु (सरदार)। तरकति०–तरकि तोरति तनु (नवल०)।
[४३] छाड़ि–छाँह (नवल०)। संख्या ४५ 'रस०' में नहीं है।
[४६] बेनु–बैन (नवल०, बाल०)। बोल–नैन (बाल०)।

श्रीकृष्णजू की प्रकाश व्याधि, यथा–(सवैया)

ह्वाँ उनिके तन ताप तें तापियै, ह्याँ इनके उपचार जुड़ैयैं।
ह्वाँ उनिके उड़ि जैयै उसासनि ह्याँ इनिके अँसुवानि अन्हैयैं।
'केसव' ये नंदलालन वै वृषभानलली पै निदान न पैयै।
एकहिं बेर दुहुँनि कहा भयो माई री तू चलि, देखन जैयै ॥४७॥

अथ जड़ता-लक्षण–(दोहा)

भूलि जाइ सुधि बुधि जहाँ, सुख दुख होइ समान।
तासों जड़ता कहत हैं 'केसोदास' सुजान ॥४८॥

श्रीराधिकाजू की प्रच्छन्न जड़ता, यथा–(सवैया)

खरे उपचार खरी सियरी सियरे तें खरोई खरो तन छीजै।
ऐसे में और करें तें कछू उपजै तो सकेलि कहा हम लीजै।
देखत हौ यह कामकली कुंभिलानियै जाति कहा अब कीजै।
कौन पै जाऊँ, कहा करौं 'केसव' कैसें जियै वह क्यों हम जीजै ॥४९॥

श्रीराधिकाजू की प्रकाश जड़ता, यथा–(सवैया)

अँखियानि मिली सखियानि मिली पतियां-बतियाँनि मिली तजि मौनैं।
ध्यान-बिधान मिलीं मनहीं मन ज्यों मिलै राँक मनौं मन सौनैं।
'केसव' कैसहुँ बेगि चलौ नतु ह्वैहै वहै हरि जो कछु हौनैं।
पूरन प्रेम-समाधि लगे मिलि जैहै तुम्हैं मिलिहौ तब कौनैं ॥५०॥

श्रीकृष्णजू की प्रच्छन्न जड़ता, यथा–(सवैया)

पल ही पल सीतल होत सरीर बिचारे सबै उपचार निदानैं।
जौ करियै तन खंडन मंडन चित्त कछू सुख दुःख न आनैं।
'केसव' कान्ह सुने समुझैं नहिं, बूझियै कौनहिं को पहिचानैं।
जोग लियो कै वियोग है काहू को लोग कहा इनि रोगनि जानैं ॥५१॥

श्रीकृष्णजू की प्रकाश जड़ता, यथा–(सवैया)

कान्ह कें आसन बासनहींन हुतासन मीत को प्रासन कीजै।
'केसव' इंद्रिय सोधि सबै मन साधि समाधिनि के रस भीजै।
जौ लौं भए हरि सिद्ध प्रसिद्ध न तौलौं बिलोकि अलोक न कीजै।
देवी ! करें तप तो लगि वे, बरदान न जौ जिय-दान तौ दीजै ॥५२॥

---

[४७] देखन जैयै–देखि डरैयै (रस०, नवल०)।
[४९] हौ–ही (बाल०, नवल०)। कामकली–कामलता (नवल०)।
[५०] राँक–एक (नवल०)। नतु–तन (रस०, नवल०, बाल०)।
[५१] पहिचानैं–यह माने (रस० बाल० नवल०)।

अथ मरण-लक्षण-(दोहा)

बनै न क्योंहूँ मिलन जहँ, छल बल 'केशोदास' ।
पूरन प्रेम-प्रताप तें मरन होत अनयास ॥५३॥
मरन सु 'केसवदास' पै बरन्यो जाइ न मित्र ।
अजर अमर जस कहि कहौं कैसें प्रेत-चरित्र ॥५४॥
रति उपजै रमनीनि कें, पहिलें 'केसवदास' ।
तिन की इंगित देखि सखि करत सु प्रेम-प्रकास ॥५५॥
अति आदर अति लोभ तें, अति संगति तें मित्त ।
साधुनि हूँ के होत हैं 'केसव' चंचल चित्त ॥५६॥
सुभग दसा दस मैं कहीं उपजै पूरन राग ।
जिहिं बिधि उपजै मान मन बरनौं सुनहु सुभाग ॥५७॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारश्रीइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
विप्रलंभशृंगारपूर्वानुरागवर्णनं नामाष्टमः प्रभावः ॥८॥

———

९

अथ मान-लक्षण–(दोहा)

पूरन-प्रेम-प्रताप तें, उपजि परतु अभिमान ।
ताकी छबि के छोभ तें, 'केसव' कहियत मान ॥१॥
प्रकटहि पिय प्रति मानिनी, गुरु लघु मध्यम मान ।
प्रकटहिं पीय प्रियानि प्रति, 'केसवदास' सुजान ॥२॥

अथ गुरुमान-लक्षण–(दोहा)

आन नारि के चिन्ह लखि, अरु सुनि श्रवननि नाउँ ।
उपजत है गुरुमान तहँ, 'केसवदास' सुभाउँ ॥३॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न गुरुमान चिह्नदर्शन तें, यथा–(सवैया)

आजु मिले बृषभानकुमारिहि नंदकुमार बियोग बितै कै ।
रूप की रासि रस्यो रस 'केसव' हास बिलासनि रोस रितै कै ।

[५६] संख्या ५६ के अनंतर 'रस०' में यह दोहा है—
आदरादि तें साघ हू ज्यों चंचल चित होत ।
त्यों पर सखि सँग दंपतिहिं चंचलता उद्दोत ॥
[३] अरु–कै (नवल०) ।

बागे के भीतर देखि हियें नख नैन नवाइ रही सु इतै कै।
फूलिहि में भ्रमि भूलि मनों सकुचे सरसीरुह चंद चितै कै ॥४॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश गुरुमान श्रवण तें, यथा–(सवैया)

बूझति ही वह गोपी गुपालहि आजु कछू हँसि कै गुनगाथहिं।
ऐसे में काहू को नाम सखी कहि कैसें धौं आइ गयो ब्रजनाथहिं।
खात खवावति ही जु बिरी सु रही मुख की मुख हाथ की हाथहिं।
आतुर ह्वै उनि आँखिन तें अँसुवा निकसे अखरानि के साथहिं ॥५॥

अथ नायक को गुरुमान-लक्षण–(दोहा)

लोक-लीक उल्लंघि कछु, प्रिया कहै जब बैन।
उपजि परत गुरुमान तहँ, प्रीतम क उर-ऐन ॥६॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न गुरुमान, यथा–(कबित्त)

ऐसी ऐसी रति राचे सौंहनि के साँचे स्याम,
देखो आनि बाँचि कैधौं कौन की ये चीठी है।
सुनहु सभाग पाई रावरीयै पाग माँहि,
कागर के रूप काहू आगि की अँगीठी है।
जनति हौं याहीं मग पायो है जनम जग,
औरहू अलोकन की बीथो तुम दीठी है।
काहे कौं कहावत कटुक कालकूट ऐसी,
कह्यो हरि हरें हँसि 'हमकौं तौ मीठी है' ॥७॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश गुरुमान, यथा–(कबित्त)

आपने सो आपनेही आगें कहियत किधौं,
खोरि के खजाने खोरि ही में खोलियत हैं।
डाठि हू तो रोकियत जो पै कहूँ जाइ 'केसो'
और कहा नैन लै छुरी सों छोलियत हैं।
वेई घनस्याम जिनि बिनु घनी घरनीनि,
घरिक में घने घनसार घोलियत हैं।
बोलति हौ कैसें ऐसें बोलौ जैसें बोलियत,
मोल हू लए सों ऐसे बोल बोलियत हैं ॥८॥

अथ लघुमान-लक्षण–(दोहा)

देखत काहू नारि त्यौं, देखै अपने नैन।
तहँ उपजत लघुमान, कै सुनें सखी के बैन ॥९॥

[५] कहि कैसें०–सुनि आय धौं कैसे कह्यो (बाल०)।
[६] औरहू–लोक में (बाल०)।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न लघुमान, यथा–(सवैया)

कान्ह तिहारी वा प्रानप्रिया कें अयान सयान सबै मन माहीं।
मान किधौं अपमान अबै यह मानस पै अनुमाने न जाहीं।
सुख दुख्ख न 'केसव' जानि परै समुझै रिस हास न हाँ अरु नाहीं।
अब यों खिन ही सियरी खिन ताती है ज्यों बदलै वदरानि की छाहीं ॥१०॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश लघुमान, यथा–(कबित्त)

झूठहूँ न रूठियै री ईठ सों इतै कहाऽब,
नेंक पीठ देत ईठ कौन के भए अली।
काल्हि के तौ नंदलाल मो सों घालि लालि करें,
काल्हि ही न आई ग्वारि जौ पै तू हुती भली।
आजु हीं जु बीच परी बीच पारिबे कौं माई,
आन रंग आन भाँति ज्यों कनेर की कली।
तेरे ही कहे की कोऊ साखि है जू बूझियै री,
देखियै जु आँखि ताकी साखि की कहा चली ॥११॥

अथ प्रिय को लघुमान-लक्षण–(दोहा)

प्रिय को कह्यो करै नहीं प्रिया कौनहूँ काज।
उपजत है लघुमान तहँ बरनत हैं कविराज ॥१२॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश लघुमान, यथा–(सवैया)

आगें कहा करिहौ अबहीं तें इतो दुख दीनो कह्यो बिनु कीनें।
'केसव' कौनहु लाज कि लाड़ तें भूलि गई तौ भए हित हीनें।
भेटे नहीं भरि अंक लला भरि जीभ न बोली जू बोल नवीनें।
देखे नहीं कबहूँ भरि आँखिनि आजुहिं कैसें चलै चित लीनें ॥१३॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश लघुमान, यथा–(सवैया)

बोलि ज्यों आए त्यों बोलत नाहिनै मोसों कहा कछु चूक तिहारी।
'केसव' कैसहूँ देख्यो सुने बिन जानै कहा कोऊ जी की बिहारी।
खीर सिराइ न जानत खाइ, नई यह भूख कों भाँति निहारी।
काँचि ही दाखहि चाहत चाख्यो सु अंत तऊ तुम कुंजबिहारी ॥१४॥

अथ मध्यम मान-लक्षण–(दोहा)

बात कहत पिय और सों देखै 'केसवदास'।
उपजत मध्यम मान तहँ मानिनि के सबिलास ॥१५॥

---

[११] भाँति–जिय (बाल०, नवल०)।
[१२] प्रिया०–प्रिय को नाहीं लाज (नवल०)।
[१५] सबिलास–अनयास (बाल०)।

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न मध्यम मान, यथा—(सवैया)

कहौ कान्ह कहाँ सिगरी निसि नासी सु तौ तुम हीं कहँ चाहतहीं।
तनु में तनु रेख लिखी किहि 'केसव' कंटक-कानन गाहतहीं।
कछू राति सी आँखि कहा भई ताती तिहारे बियोग के दाहतहीं।
हिय बंचक-रीति रची जब रंचक लाइ लई उर नाह तहीं ॥१६॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश मध्यम मान, यथा—(सवैया)

सखि ज्यों उनको तू बकावति मोहू को आई बकावन ह्वै गरई।
अब याही तें तोसहु बात कछू कहिबे कों हुती न कहो परई।
कहि 'केसव' आपनी जाँघ उघारि कै आप ही लाजनि को मरई।
इक तौ सब तें हरए हरि हैं अब होंहुँ कहा हरि तें हरई ॥१७॥

अथ प्रिय को मध्यम मान-लक्षण—(दोहा)

जहाँ न मानै मानिनी, हारै पिय जु मनाइ।
उपजत मध्यम मान तहँ, प्रीतम कें उर आइ ॥१८॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न मध्यम मान, यथा—(कवित्त)

बार बार बरजी मैं सारस सरस मुखी,
आरसी लै देखि मुख या रस में बोरिहै।
सोभा के निहोरें तें निहारति न नेंकहूँ तू,
हारी हैं निहोरि सब कहा काहू खोरि है।
सुख को निहोरचो जु न मान्यो सो भली करी तैं,
'केसोराइ' की सौं अब जौ तू मुहँ मोरिहै।
नाह के निहोरें किन मानति निहोरति हौं,
नेह के निहोरें फिर मोही जु निहोरिहै ॥१९॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश मध्यम मान, यथा—(सवैया)

मानहिं मान तें मानिनि 'केसव' मानस तें कछु मान टरैगो।
मान रहै सु जु माने नहीं परिमान नखें अभिमान भरैगो।
ह्वैहै सहेली समान तबै जब सौतिनि में अपमान करैगो।
आप मनावत मानहि री बहुरचौ जु मनावन तोहि परैगो ॥२०॥

[१६] नासी–नारी (नवल०)।
[१७] परई–घरई (नवल०)।
[१९] या रस–आरस (नवल० बाल०)। मानति निहोरति–मानहि निहोरति हौ (बाल०)।

(दोहा)

राधा राधा-रवन के बरने मान समान।
तिन को मान मनाइबो कहियत सुनौ सुजान ॥२१॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
विप्रलंभश्रृंगारमानवर्णनं नाम नवमः प्रभावः ॥९॥

१०

अथ मानमोचन-लक्षण–(दोहा)

मान तजहिं प्रीतम प्रिया, कहि 'केसव' करि प्रीति।
बरनि सुनाऊँ सुनहु सब, मैं जु सुनी षट रीति ॥१॥
साम दान भनि भेद पुनि, प्रनति उपेच्छा मानि।
पुनि प्रसंग-विध्वंस अरु, दंड होइ रस-हानि ॥२॥

अथ साम-लक्षण–(दोहा)

ज्यों क्योंहूँ मन मोहियै छूटि जाइ जहँ मान।
सोई साम उपाय कहि 'केसवदास' बखान ॥३॥

श्रीराधिकाजू को साम उपाय, यथा–(सवैया)

'केसवदास' सदा कियें आस रहै सुख की दुख ताहि न दीजै।
ताहू सों रोष न मानियै मानिनि भूलिहुँ आपनो मानि सु लीजै।
हौं तुमहीं तुम हौं सुनि सुंदरि मूरति द्वै जिय एकहीं जीजै।
मान है भेद को मूल महा अपनें सहु सो सपने हूँ न कीजै ॥४॥

श्रीकृष्णजू को साम उपाय, यथा–(सवैया)

कहि आवति है जौ कहावत हौ तुम नाहीं तौ ताकि सके हम सोंहीं।
तिहि पैंड़े कहा चलियै कबहूँ जिहिं काँटो लगै पग पीर दुकोंहीं।
प्रीति कुम्हेंड़े की जैहै जई सम, होति तुम्हैं अंगुरी पसरोंहीं।
कीजै कछू यह जानि कै 'केसव' हौं तुम हीं तुम तौ हरि हों हीं ॥५॥

---

[२] दान०–दान अरु (नवल०)।
[३] ज्यों–ज्यौं त्यौं करि (बाल०)। छूटि–भूलि (बाल०)।
[५] दुकोहीं–पिरोहीं (बाल०)। कीजै–को ह्वै (बाल०)।

अथ दान उपाय-लक्षण–(दोहा)

'केसव' कीनहुँ ब्याज मिस दै जु छुटावै मान।
बचन-रचन मोहै मनहिं तासों कहियै दान ॥६॥
जहाँ लोभ तँ दान लै छाँड़ै मानिनि मान।
बारबधू के लच्छनहिं पावै तथहि प्रमान ॥७॥

श्रीराधिकाजू को दान उपाय, यथा–(कबित्त)

कोमल अमल दल दीने हे कमल-भव,
अरुन अरुन प्रभु जू कौं सुखदाइयै।
'केसोदास' सोभाधर सधर सुधा के धर,
मधुर अधर उपमा तौ इनि पाइयै।
उरज मलय-सैल-सील सम सुनि देखि,
अलक बलित ब्याल आसा उर आइयै।
निपट निगंध यह हार बंधुजीव को सु,
चाहत सुगंध भयो नेंक ग्रीव नाइयै ॥८॥

अन्यच्च, यथा–(सवैया)

मत्तगयंदनि साथ सदा इनि थावर जंगम जंतु बिदार्‌यो।
ता दिन ते कहि 'केसव' बंधन बेधन कै बहुधा बिधि मार्‌यो।
सो अपराध सुधारन सोध यहै इनि साधन साधु बिचार्‌यो।
पावन-पुंज तिहारो हियो यह चाहत है अब हार बिहार्‌यो ॥९॥

श्रीकृष्णजू को दान उपाय, यथा–(कबित्त)

हँसति हँसति आई आनि इक गाथा गाई,
कहहु कन्हाई याको भाउ समझाइ कै।
पीबें क्यों अधर-मधु दंपति सु एकैं बार,
रदन करज थल दीजहि बताइ कै।
यह परिरंभन कहावै कौन 'केसोदास'
मेरी सौं जो मोसों तुम राखहु दुराइ कै।
राधिका की अधिकाई कहा कहौं लीनो आजु,
आपनो पियारो पीउ आपु ही मनाइ कै ॥१०॥

अथ भेद-लक्षण–(दोहा)

सुख दै कै सब सखिनि कहँ आपु लेइ अपनाइ।
तब सु छुड़ावै मान कौं, बरनौं भेद बनाइ ॥११॥

---

[६] मिस–कछु (बाल०, नवल०)। छुटावै–छुड़ावै (बाल० नवल०)।
[७] 'रस०' में नहीं है।
[८] सधर-सुधर (नवल०)। उर आइयै–उर धाइयै (बाल०)।
[११] छुड़ावै–छिड़ावै (रस०); मनावै (बाल०)। मान कौं–मानिनी (बाल०)।

श्रीराधिकाजू को भेद-उपाय, यथा–(सवैया)

'केसव' धाइ खबासिनि तोहि सखी सकुचैं सब आपन घातैं।
मोहिं तौ माई कहे हीं बनै अब बाँधि दई विधि तो कहँ तातैं।
नेंक हरें हरें बोलि बलाइ ल्यौं हौं डरपौं गड़ि जाहि न जातैं।
माखन सो मेरे मोहन को मन काठ सी तेरी कठेठी ये बातैं ॥१२॥

श्रीकृष्णजू को भेद उपाय, यथा–(सवैया)

काहू कह्यो 'हरि रूठि रहे' तब तें बहु बुद्धि बितर्क बढ़ावै।
सोधि सबै अपनो सो रही धन मीत रहे सु उपाय न पावै।
ह्वाँ वह रीति इहाँ यह 'केसव' ज्यों दुहुँ ओर जरे कों जरावै।
बूझति हौं पिय प्यारी तिहारी सु मान करैं कि मनावन आवै ॥१३॥

अथ प्रणति-लक्षण–(दोहा)

अति हित तें अति काम तें, अति अपराधहिं जानि।
पाइ परै प्रीतम प्रिया, ताकों प्रनति बखानि ॥१४॥

श्रीराधिकाजू की प्रेम तें प्रणति, यथा–(सवैया)

तैं चितयो जु न सूधे तऊ जऊ प्रेम करैं पिय पाउ गह्यो हो।
मोहिं बिलोकि बिलोकि अलीन अलीक अलोक-प्रबाह बह्यो हो।
बूझति हौं सखि सीस दियें तिनु और सबै हिय हेतु रह्यो हो।
कान्हहि आएँ मनावन तोसौं में मान किधौं अपमान कह्यो हो ॥१५॥

श्रीराधिकाजू की अति काम तें प्रणति, यथा–(सवैया)

बोलति नाहि बुलाएँ हुँ बोल कहा लगी मोहिं बकाए हीं मारन।
सो पर्यो पाइनि बूझि सखी सब देति हैं ज्यौ जुवती जिहि कारन।
हठ छाड़ि कै कंठ लगाइ उठाइ कहा लगी ऐंठि अकास निहारन।
कौनें भए नहि द्वै दिन ए दिन तू ही लगी कछु ऊलट पारन ॥१६॥

श्रीराधिकाजू की अति अपराध तें प्रणति, यथा–(सवैया)

'केसवदास' उदास भई दरसाइ दसा दुख-द्योस भर्यो री।
राति भए अधिरातक हू लौं बिनै बहु बंधुबधूनि कर्यो री।
धाइ रही समुझाइ कछू न सखीनि हूँ के सिखए तें सर्यो री।
काहे तें मान्यो न मानिनि तो लगि जौ लगि पाइ न पीउ पर्यो री ॥१७॥

---

[१३] जरावै–जुड़ावै (बाल०, नवल०)। बूझति–पूछति (रस०, बाल०)।
[१५] तऊ जऊ–जऊ तऊ (बाल०)। बूझति–पूछति (बाल०, रस०)।
[१६] बोलति नाहिन–बोलति आपु (बाल०, नवल०)। ऐंठि–बैठी (बाल०); भेदि (रस०)।

(दोहा)

पियहिं मनावै पाइ परि, प्रिया परम हित मानि ।
नापराध नहि काम तें बरनत हो रसहानि ॥१८॥

श्रीकृष्णजू की प्रणति अति हित तें, यथा–(सवैया)

नीरहिं तौ बिनु मीन सरै अरु मीन तौ नीरहिं के जिय जीजै ।
जा बिनु और सुहाइ न 'केसव' ताहि सुहाइ सु तौ सब कीजै ।
जा लगि मो पग लागत हे सु लगी पग अंक लगाइ न लीजै ।
हौं सिखऊँ अपनें सपनें हूँ तौ आवत लच्छि किवार न दीजै ॥१९॥

अथ उपेक्षा-लक्षण–(दोहा)

मान मुचावन बात तजि कहियै और प्रसंग ।
छुटि जात जहँ मान, सो कहत उपेच्छा अंग ॥२०॥

श्रीराधिकाजू की उपेक्षा, यथा–(कबित्त)

चपला न चमकति चमक हथ्यारनि की,
बोलत न मोर बंदी सयन-समाज के ।
जहाँ तहाँ गाजत न, बाजत दमामे दीह,
देत न दिखाई दिनमनि लीने लाज के ।
चलि चलि चंदमुखी साँवरे सखा पै बेगि,
सोषक जु 'केसोदास' अरि सुख-साज के ।
चढ़ि चढ़ि पवन तुरंगनि गगन घन,
चाहत फिरत चंद जोधा तमराज के ॥२१॥

श्रीकृष्णजू की उपेक्षा, यथा–(कबित्त)

'केसोदास' दिन राति केतकी की भावै भाँति,
जिय में बसति जाति, नैननि में नलिनी ।
माधवी को पीवे मधु सूझत न अंध कहूँ,
सेवती सेवन कही सेई गंधफलिनी ।
औरै हौं कहति बात कान्ह काहे को लजात,
ऐसे तौ खिस्याइ सो जु होइ मनमलिनी ।
देखौ नहीं प्रानपति निलज अली की गति,
मालती सों मिल्यो चाहै लियें साथ अलिनी ॥२२॥

अथ प्रसंग-विध्वंस-लक्षण–(दोहा)

उपजि परै भय चित्त भ्रम, छूटि जाइ जहँ मान ।
सो प्रसंग-विध्वंस कवि, 'केसवदास' बखान ॥२३॥

[२२] भावै-भारै (रस०) । [२३] छूटि-भलि (बाल०) । कवि-कहि (रस०) ।

श्रीराधिकाजू को प्रसंग-विध्वंस, यथा—(सवैया)

केकी न 'केसव' काम के किंकर बोलत डोलत देत दुहाई।
काम-निसा यह कामिनि कोऊ रिसाइगी तासहु ह्वैहै रिसाई।
गाजति नाहिन मेघघटा यह बाजति डौंड़ी सखी सुखदाई।
भोर भएँ फिरि कीबो अबोलौ सु बोलौ अबै बलि बोलि कन्हाई ॥२४॥

श्रीकृष्णजू को प्रसंग-विध्वंस, यथा—(कवित्त)

कोकनि की कारिका कहति काहू सारिका सों
दुरि दुरि हित चित चौगुनो चढ़ायो है।
सूकि रह्यो सकुचानि वापुरी सुकी तौ, कहि
काहू सों सकै न देह दुखनि डढ़ायो है।
उठि चलौ न्याउ कीजै अबकें मनाइ दीजै,
नीकें ही में 'केसोदास' कलह बढ़ायो है।
मानत न एते पर उलटी मनावै वह,
ऐसो ही सयान स्याम सुकहिं पढ़ायो है ॥२५॥

(दोहा)

देस काल बुधि बचन तें कल धुनि कोमल गान।
सोभा सुभ सौगंध तें, सुख ही छूटत मान ॥२६॥

यथा—(कवित्त)

घननि की घोर सुनि, मोरनि को सोर सुनि,
सुनि सुनि 'केसव' अलाप अलीजन को।
दामिनी दमक देखि देह की दिपति देखि,
देखि सुभ-सेज देखि सदन सु बन को।
कुंकम की बास घनसार की सुबास भयो,
फूलनि की बास, मन फूलि कै मिलन को।
हँसि हँसि बोले दोऊ, अनहीं मनाएँ मान
छूटि गयो एकै बार राधिकारमन को ॥२७॥

(दोहा)

इहि विधि मान छुड़ावहीं, आपुस में नर नारि।
पल पल प्रीति बढ़ावहीं, 'केसवदास' बिचारि ॥२८॥
प्रिया न प्रीतम सों करै, अति हठ 'केसवदास'।
बहुरचो हाथ न आवई, जो ह्वै जाइ उदास ॥२९॥

---

[२५] चढ़ायो–बढ़ायौ (रस०)। सूकि–सोचि (बाल०)। डढ़ायौ–बढ़ायौ (बाल०); उठायौ (नवल०)। नीकें ही–नेकही (बाल०, नवल०)।

बारहिं बार न कीजई, बारक कीजै मान।
कहि 'केसव' ज्यों आप में, सदा बढ़ै सनमान ॥३०॥
प्रीति बिना भय होय नहिं, भय बिनु होइ न प्रीति।
प्रीति रहे जहँ भय रहै, यहै मान की रीति ॥३१॥
गर्ब, व्यसन, धनत्याग तें, निष्ठुर बचन प्रबास।
लालच बिप्रियकरन तें, प्रिय तें होइ उदास ॥३२॥
मान बिबिध करने बिबुध, जहाँ बिबिध बुधिबास।
'केसव' करुना करि कछू कहियत बिरह-प्रबास ।३३॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतसिंहविरचितायां रसिकप्रियायां
विप्रलंभश्रृंगारमानमोचनं नाम दशमः प्रभावः ॥१०॥

---

(११)

अथ करुणा-विरह-लक्षण–(दोहा)

छूटि जात 'केसव' जहाँ सुख के सबै उपाय।
करुना रस उपजत तहाँ, आपुन तें अकुलाय ॥१॥
सुख में दुख क्यों बरनियै, यह बरनत व्यौहार।
तदपि प्रसंगहि पाय कछु, बरनत मति-अनुसार ॥२॥

अथ राधिकाजू को प्रच्छन्न करुणा-विरह, यथा–(सवैया)

मैं पठई मति लेन सखी सु रही मिलि कै मिलिबे कहँ आनै।
जाइ मिलें दिन ही दृग-दूत दयाल सो देह-दसा न बखानै।
प्रेरत पैज कियें तन प्राननि जोग के और प्रयोग निदानै।
लाज तें बोलत पाऊँ न 'केसव' ऐसें ही कोऊ कहा दुख जानै ॥३॥

श्रीराधिकाजू को प्रकाश करुणा-विरह, यथा–(कवित्त)

हरित हरित हार हेरत हियो हरत,
हारी हौं हरिननैनी हरि न कहूँ लहौं।

---

[३२] करन तें–करन तिय (बाल०, रस०)।
[३] निदानै–[illegible] (रस०) [illegible] (मनु०)।

बनमाली ब्रज पर बरषत बनमाली,
बनमाली दूरि दुख 'केसव' कैसें सहौं।
हृदय-कमल नैन देखि कै कमलनैन,
होहुगी कमलनैनि और हौं कहा कहौं।
आप घने घनस्याम घनहीं से होत घन,
सावन के द्यौस घनस्याम बिनु क्यों रहौं ॥४॥

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न करुणा विरह, यथा–(कबित्त)

जैसें मिल्यो प्रथम श्रवन-मग जाइ मन,
रवन भवन कीने अलिक अलक में।
मनु मिलें मिले नैन 'केसोदास' सबिलास,
छबि-आस भूलि रहे कपोल-फलक में।
नैन मिलें मिल्यो ज्ञान सकल सयान सजि,
तजि अभिमान भूल्यो तन की झलक में।
तैसें छल बल साधि राधिकै मिलन कहँ,
चाहत कियो पयान प्रानहूँ पलक में ॥५॥

श्रीकृष्णजू को प्रकाश विरह, यथा–(सवैया)

है तरुनाई तरंगिनि-पूर अपूरब पूरब राग रँगे पय।
'केसवदास' जिहाज मनोरथ संभ्रम बिभ्रम भूरि भरे भय।
तर्क-तरंग-तरंगित तुंग तिमिंगिल सूल बिसालनि के चय।
कान्ह कछू करुनामय हे सखि तैं ही किये करुना-बरुनालय ॥६॥

अथ प्रवास विरह-लक्षण–(दोहा)

'केसव' कौनहु काज तें पिय परदेसहिं जाइ।
तासों कहत प्रवास सब कबि कोबिद समुझाइ ॥७॥

श्रीराधिकाजू को प्रच्छन्न प्रवास विरह, यथा-(सवैया)

तू करिहै कब धौं कहि गौनहि नंदकुमार तौ गौन कियौई।
मोहि महा डरु तो उर को न रहैं लटि लै जिनि कोधौं लियौई।

[४] सावन–स्यामनि (बाल०, रस०)।
[५] जैसे-ऐसे (नवल०)।
[७] 'बाल०' में संख्या ७ के अनंतर यह छंद अधिक है—
जानै कहा मेरी दीरघ साँस लै नैन नवाइ दुकाइ वृथाहू।
माथो न दूखिहै सूधो निहारो पखारो नहीं मुखु जौ न अन्हाहू।
ऐसैं ही 'केसव' क्यों रहे प्रान सु आपनी पीर सुनावहु काहू।
कै हुती भोरी कि भोजनो छाड़्यो तो पान्यो न पीवो जौ पान न खाहू॥

ऐसी न बूझियै 'केसव' तोहि बिचारै जु बीच बिचार बियौई।
तेरे ही जीय जियै जिनको जिय रे जिय! ता बिनु तूऽब जियौई।।८।।

श्रीराधिकाजू को प्रकाश प्रवास बिरह-वर्णन, यथा–(कवित्त)

कौन कें न प्रीति, को न प्रीतमहिं बिछुरत,
या ही कें अनोखो पतिव्रत गाइयतु है।
'केसोदास' जतन कियें ही भलें आवै हाथ,
और कहा पच्छिनि के पाछें धाइयतु है।
उठि चलि जौ न मानै काहू की बलाइ जानै,
मानसै जु पहिचानै ताकें आइयतु है।
याकें तौ है आजु हीं मिलौं कि मरि जाऊँ ऐसें,
आगि लागें मेरी माई मेहु पाइयतु है।।९।।

श्रीराधिकाजू को विरह-भय-विभ्रम, यथा–(सवैया)

कोकिल केकी कुलाहल हूलि उठी उर में मति की गति लूली।
'केसव' सीत सुगंध समीर गयो उड़ि धीरज ज्यों तन तूली।
जै मुनि जै मुनि कै बची जोन्ह की जामिनी पै न अजौं सुधि भूली।
क्यों जियौ कैसी करौ बहुर्‌यौ बिसु सी बिसनी बिसवासिनि फूली।।१०।।

श्रीकृष्णजू को प्रच्छन्न प्रवास-विरह, यथा–(सवैया)

जिनि बोलि सुबोल अमोल सबै अँग केलि-कलोलनि मोल लिये।
जिनिको चित लालची लोचन रूप अनूप पियूष सु पाय जिये।
जिनिके पद 'केसव' पानि छियें सुख मानि सबै दुख दूरि किये।
तिनको सँग छूटत हीं फिटु रे फटि कोटिक टूक भयो न हिये।।११।।

श्रीकृष्णजू को विरह प्रकाश प्रवास, यथा–(सवैया)

'केसव' क्यों हूँ चले चलि कोरि सँदेस कहैं फिरि पैंड़क दू पर।
आगें धरैं अपनो सो कै साहस पाछें हीं पेलि परै पग भू पर।
होत जहीं तहीं ठाढ़े ठगे से 'चलौ' न कह्यो परै कान्ह हितू पर।
लोक की लाज फिर्‌यो न परै, पै मिलान करैं अधकोसक ऊपर।।१२।।

श्रीकृष्णजू को विरह-भय-विभ्रम, यथा–(सवैया)

प्रेत की नारि ज्यों तारे अनेक चढ़ाइ चलै चितवै चहुँघां तो
कोढ़िनि सी ककुरे कर-कंजनि 'केसव' सेत सबै तन तातो।

[८] कब–कहि (बाल०)।
[९] कियें ही–करें ही (नवल०)। मानसैं–मानुसै (बाल०)।
[११] छियें–छ्वै (बाल०)।

भेटत हीं बरहीं अबही तौ बरषाइ गई ही सुखै सुख सातो।
कैसी करौं कहि कैसें बचौं बहुरचौ निसि आई कियें मुँह रातो ॥१३॥

श्रीराधिकाजू की निद्रा, यथा–(सवैया)

आएँ तें आवैगी आँखिनि आगें ही डोलिहै मानहु मोल लई है।
सोवै न सोवन देइ न यों तब सोवन में उन साथ दई है।
मेरियै भूलि कहा कहौं 'केसव' सौत कहूँ तें सहेली भई है।
स्वारथ ही हितु है सबकै परदेस गएँ हरि नींदौ गई है ॥१४॥

श्रीकृष्णजू की निद्रा, यथा–(सवैया)

'केसव' कैसहुँ कोरि उपाइन आनि सु तौ उर लागति है।
चकचौंधत सो चितवै चित में चित सोवत हू महँ जागति है।
परदेस प्रिया पल मोहिं पत्याति न जानै को याकी कहा गति है।
तजि नैननि नींद नवोढ़ बधू लहुँ आधिक राति तें भागति है ॥१५॥

श्रीराधिकाजू की सखी की पत्री, यथा–(सवैया)

'केसव' कुँवरि ! बृषभान की कुँवरि आजु
देवता ज्यों बन उपवन बिहरति है।
कमला ज्यों थिर न रहति कहूँ एक छिन
कमलाग्रजा ज्यों कमलनि तें डरति है।
कली ज्यों न केतकी के फूल रुचैं, सीता जू ज्यों
निसिचर-मुख तिन देखें ही जरति है।
बदन उघारत ही मदन सुयोधन हीं
द्रौपदी ज्यौं नाम मुख तेरो ही करति है ॥१६॥

पुनर्यथा–(कबित्त)

भौंरिनी ज्यों भवत रहति बन-बीथिकानि,
हंसिनी ज्यों मृदुल मृनालिका बहति है।
पीउ पीउ रटति रहति चित चातकी ज्यों,
चंद चितै चकई ज्यों चुप ह्वै रहति है।

[१२] 'बाल०' में छंदसंख्या १२ के बाद यह दोहा अधिक है—
खान पान परिधानु पुनि जान जान दुति अंग।
सुभ संजोग बियोगु बिनु मानौ सुख तिअ भंग ॥
[१४] मेरियै–मेरि सौं (बाल०)।
[१६] आजु–बन (नवल०, बाल०) छिन–ठौर (नवल०)। डरति–दुरति (रस०)।
रुचैं–सूँघैं (नवल०)।

हरिनी ज्यों हेरति न केसरि के काननहि
केका सुनि व्याली ज्यों बिलान ही चहति है।
'केसव' कुँवर कान्ह विरह तिहारे ऐसी,
सूरति न राधिका की मूरति गहति है ॥१७॥

श्रीकृष्णजू की सखी की पत्री, यथा—(कवित्त)

दीरघ दरीनि बसैं 'केसोदास' केसरी ज्यों
केसरी को देखि बन करी ज्यों कपत हैं।
बासर की संपदा उलूक ज्यों न चितवत
चकवा ज्यों चंद चितै चौगुनो चपत हैं।
केका सुनि ब्याल ज्यों बिलात जात घनस्याम,
घननि की घोरनि जवासे ज्यों तपत हैं ॥१८॥
भौंर ज्यों भँवत बन जोगी ज्यों जगत रैनि
साकत ज्यों स्याम नाम तेरोई जपत हैं।

(दोहा)

'केसवदास' प्रबास को कह्यो जथामति साज।
राधा हरि बाधाहरन बरनौं सखी-समाज ॥१९॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां संभोगश्रृंगारप्रवासवर्णनं नामैकादशः प्रभावः ॥११॥

१२

अथ सखी-वर्णन—(दोहा)

धाइ, जनी, नाइन, नटी प्रगट परोसिनि नारि।
मालिनि बरइनि सिल्पिनी चुरिहेरनी सुनारि ॥१॥
रामजनी संन्यासिनी पटु पटुवा की बाल।
'केसव' नायक-नायिका सखी करहिं सब काल ॥२॥

धाइ को वचन राधिका सों, यथा—(सवैया)

मोहन-साथ कहा निसि द्यौस रहै सतरंजहि के मिस बैठी।
'केसव' क्योंहूँ सुनै महितारी तौ राखहि री ! घर ही महँ पैठी।

[१७] बहति—चहति (नवल०)।
[१८] साकत चातक (नवल०)।

हौं सिखऊँ सुखदैं सिख तोहि तैं भौंह चढ़ाइ कै डीठि अनेठी।
को न लड़ैती सरूप न काहि तुहीं कछू जाति अकासहिं ऐंठी ॥३॥

धाइ को वचन कृष्ण सों, यथा–(कवित्त)

थोरी सी सुदेस बैस दीरघ नयन केस,
गौरा जू सी गोरी भोरी भवजू की सारी सी।
साँचे की सी ढारी अति सूछम सुढार कटि,
'केसोदास' अंग अंग भाइ कै उतारी सी।
सौंधे कैसी सोंधी, देह सुधा सों सुधारी, पाइ
धारी देवलोक तें कि सिंधु तें उधारी सी।
आजु यासों हँसि खेलि बोलि चालि लेहु लाल
काल्हि ऐसी ग्वालि लाऊँ काम की कुमारी सी ॥४॥

जनी को वचन राधिका सों, यथा– (कवित्त)

सोभा को सदन बन मेरो घनस्याम नित,
नई नई रुचि तन हेरत हिराइयै।
'केसोदास' सकत सुबास को निवास करि
बिबिध बिलास हास त्रास बिसराइयै।
ऊख-रस केतक महूख-रस मीठो है
पियूष हू की पैली घां है जाको नियराइयै।
चोरीचोरी नैननि चुराएँ सुख कौन जौ लौं
पिय-मन माँहि मन मेलि न चराइयै ॥५॥

जनी को वचन श्रीकृष्ण सों, यथा– (कबित्त)

ऐसी बातैं ऐसें ही धौं कैसें कै कही परनि,
जाकी मति-गति लाज-पट सों लपेटी हैं।
मेरें ही न आवै, मेरी बीर एती बेर वे तौ
जानति हौं धाइ ही के साथ लोटि लेटी हैं।
ऐसी तौ हैं चेरिन की चेरी वाकी 'केसोदास'
जैसी तुम हा हा करि पाइ परि भेटी हैं।
जानति हौं नंदजू के ढोटा हौ जू, जानें बोल
उतहिं वेऊ तौ बृषभानजू की बेटी हैं ॥६॥

---

[३] सुखदै–सिखदै (नवल०, बाल०)। अनेठी–अमेठी (रस०)।
[४] सुढार–सुधारि (रस०, नबल०)। कटि–कढ़ी (नवल०)।
[६] पट–पाट (बाल०, रस०)। जानति हौं०–जात धाइ ही के घर साथ लौटि लेटी है (नवल०)। ढोटा–बेटा (बाल०)। बोल–जाहु (बाल०)।

नाइनि को वचन राधिका सों, यथा– (सवैया)

अब ही तौ गए उठि पौरहूँ लौं न पै बोलन जाहि री पींछहि लागें।
करिहौ तब कैसी पराए जु ढोटहि ह्वैहै कछू निसिद्यौस के जागें।
जौ न रह्यौ परै 'केसव' कैसहुँ देखतही सुख स्याम सभागें।
देती हौ जान क्यों राखत काहे न आरसीयै करि आंखिन आगें ॥७॥

नाइन को वचन कृष्ण सों, यथा– (सवैया)

बडी जिय लाज बड़ो उर आली बड़ी लहुरीयौ चलैं चित लीनें।
बड़ी बड़ो आँखि, बड़ी छबि सों चितवै बड़ि बेर बड़ो सुख दीनें।
बडे ही बिचार बड़ी रुचि 'केसव' क्यों हूँ मिलै तौ मिलै हमहीनें।
बड़ीनि हूँ सों तौ बड़े दुख बोलै, इतै बड़े मान बड़ो मन कीनें ॥८॥

नटी को वचन राधिका सों, यथा– (सवैया)

जौ हौं दिखावन तोहि गई री तैं मेरियै ग्रीवँ गही फिरि माई।
आजु कहा दिखसाध्र लगी है दिखाऊँगी जाइ तौ वेई कन्हाई।
देखे तें सीरी ह्वै जाति भटू अनदेखें जरै तु यहै अधिकाई।
राति की वे गति द्यौस की ए अब हौं तेरी बातनि बाजहि आई ॥९॥

नटी को वचन कृष्ण सों, यथा– (कबित्त)

जहीं जहीं दुरै तहीं जोन्ह ऐसी जगमगै
कैसें हूँ जु 'केसव' दुराऊँ लियें रंग की।
पवन के पंथ अलि, अलिनि के पीछैं आली,
अलिनो ज्यों लागी फिरैं जिन्हें साध संग की।
निपट अमिल वह तुम्हें मिलिबें की जक,
कैसें कै मिलाऊँ गति मोपै न बिहंग की।
इक तौ दुसह दुख देति हुती दुति दूजें,
बीस बिसे बिसु भई बास वाके अंग की ॥१०॥

परोसिन को वचन राधिका सों, यथा– (सवैया)

पाइ परें पलिका परस्यो सु लगी रति तोलन मेलि रती हो।
सौहैं कियें मुँह सौंहों कियो अब लौं तुम पै गति ऐसी न ती हो।

---

[७] उठि–पुनि (बाल०, नवल०)। सुख-मुख (बाल०)।
[८] तौ मिलै–जौ कहूं (बाल०); सु बड़ी (नवल०)।
[९] ए अब–वे गति (रस०); ए पुन (नवल०)। बातनि–बालनि (नवल०)। बाजहि–बाजिनि (नवल०)।
[१०] लिये–ल्याऊँ (नवल०)। बिसु भई बास–बिसु बास भई (बाल०, नवल०)।

'केसव' कैसहुँ देखन कौं तिन्हैं भोरहीं भोरी ह्वै आनि दती हो।
पान खवावत हीं तिन सों तुम राति कहा सतराति हती हो ॥११॥

परोसिन को वचन कृष्ण सों, यथा–(सवैया)

हाँसी में बातक वासों कही हँसि वे हूँ कही सु हितै करि लेख्यो।
आँखैं मिली न मिली सखियाँ पिलबोई सु 'केसव' क्यों अवरेख्यो।
चिचग्राइ मरै चुप साधे कि चातक स्वाति समें ही सवै सु बिसेख्यो।
आजु हीं क्यों वह आवै इहाँ जिनि अगि लगेंहूँ न आँगन देख्यो ॥१२॥

मालिन को वचन राधिका सों, यथा–(कवित्त)

दुरिहै क्यों भूषन बसन दुति जोबन की
देह ही की जोति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाह को सुबास लागें ह्वैहै कैसो 'केसव'
सुभाव ही की बास भौंर भीर फारे खाति है।
देखि तेरी सूरति की मूरति बिसूरति हौं
लालन को दृग देखिबे कों ललचाति है।
चलिहै क्यों चंदमुखी कुचनि के भार भएँ
कचनि के भार तौ लचकि लंक जाति है ॥१३॥

मालिन को वचन श्रीकृष्ण सों, यथा–(कवित्त)

घेरौ जिनि मोहि घर जान देहु घनस्याम,
घरिक में लागी उर देखिबी ज्यों दामिनी।
होइ कोऊ ऐसी वैसी आवै इत उत ह्वै कै
वह बृषभानजू की बेटी गजगामिनी।
आदित को आयो अंत, आवौ बलि बलि जाउँ
आवती हैं वेऊ बना आई बनि जामिनी।
काम के डरनि तुम कुंज गह्यो 'केसोदास'
भौंरन के भय उन मौन गह्यो भामिनी ॥१४॥

बरइनि को वचन राधिका सों, यथा–(कवित्त)

मैन ऐसो मन मृदु मृदुल मृनालिका के
सूत ऐसे सुर धुनि मनहि हरति हैं।
दार्‌यो कैसे बीज दाँत, पात से अरुन ओठ
'केसोदास' देखि दृग आनंद भरति हैं।

[१२] सवै-स्रवै (रस०)।
[१३] सुभाव-सुवास (नवल०)।
[१४] बनि जामिनी-ग्ररु जामिनी (नवल०)।

एरी मेरी तेरी मोहि भावति भलाई तातें
बूझति हौं तोहि और बूझत डरति हैं।
माखन सी जीभ, मुख कंज सो कोवँर कहु
काठ सी कठेठी बातैं कैसें निकरति हैं ॥१५॥

बरइनि को वचन कृष्ण सों, यथा—(कवित्त)

नैननि नवावौ नेक अति ही अनीति करें
जानत न तुम जैसे ब्रज जानियत हैं।
चंचल चरित्र चित चेटक चटकि लावौ
चेरे कै चितनि अभिसार सौंपियत हैं।
एकनि के पैठे उर उररि उरोजन में
उर डोलें 'केसोदास' कैसें वै जियत हैं।
ऐसी कहूँ होति है जो बालनि के चोरि चोरि
मन मनमथ ही के हाथ बेचियत हैं ॥१६॥

शिल्पिनी को वचन राधिका सों, यथा—(सवैया)

अबहीं पुनि बोलि री बोलि, लगी जक पौरिहूँलौं उठि जान न दीने।
मेरे ही जान भई उलटी तुमहीं बस 'केसव' वे कहँ कीने।
जौ तौ इतौ दुख पावति हौ तलफैं दृग मीन मनों जल झीने।
तौ कत छाड़ति हौ छिन एक रहौ किनि चित्र ज्यों हाथहिं लीने ॥१७॥

शिल्पिनी को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

खोट तुरी जिमि खूँट रहौ गहि ठौर कुठौरनि जानिहू जाहू।
लाज न आवति मारैं समाजन लागैं अलोक के ताजन ताहू।
कोरि बिचार बिचारहु 'केसव' देखहु बूझि हितू सब काहू।
नेह ही के फिरि लागिहौ संग न नैननि क संग ओर निबाहू ॥१८॥

चुरिहारिन को वचन राधिका सों, यथा—(कवित्त)

मन मन मिलें कहा मिलिहै मिले को सुख,
मिलिहू धौं देखहु बोलाइ काहू बाल सों।

---

[१५] ऐसो-कैसे (बाल०, रस०)। तातें-यातें (रस०)। कोवँर-कोमल (रस०)।
[१६] चेटक०-चेटकी चेटका जायो (नवल०)। चेरे कै-चोरिकै (नवल०)। उररि-उरझि (बाल०)। वे जियतु हैं-ति जियतु है (बाल०)। ही के-चाक (बाल०)।
[१७] उलटी तुमही बस-उलटी बस (नवल०)। वे कहँ कीने-हैं कहिबे कह कीने (नवल०)। पावति-देखति (रस०)। झीने-हीने (रस०, नवल०)।
[१८] खोट-खाट (बाल०)। लाज-लाल (नवल०)। समाजन-सभाजन (बाल०)।

भूलि परे भौंहनि ही बाँधिहौ कितेक दिन,
बाँधौ बलि जाउँ बनमाली बनमाल सों।
मुहुँ मोरें मारें न मरति रिस 'केसोदास'
मारहु धौं मेरे कहें कमल सनाल सों।
नैननि ही बिहँसि बिहँसि कौ लौं बोलिहौ जू,
कबहूँ तौ बोलियै बिहसि मुख लाल सों॥१९॥

चुरिहेरिन को वचन कृष्ण सों, यथा–(सवैया)

आपु न हूजै दुखी दुख जाके सु ताहि कहा कबहूँ दुख दीजै।
जा बिन और सुहाइ न 'केसव' ताहि सुहाइ सु तौ सब कीजै।
भाग बड़े जु रची तुम सों वह तौ बिझकाइ कहौ कह लीजै।
जौ रिस जाइ तौ जैयै मनावन, तातो है दूध सिराइ तौ पीजै॥२०॥

सुनारिन को वचन राधिका सों, यथा–(सवैया)

लोल अमोल कटाछ कलोल अलोलिक सों पट ओलि कै फेरे।
पानिप सों अति पैने रसाल बिसाल बने मनभावते मेरे।
'केसव' चीकने चौगुने चोखे चितै कै भए हरि न्यायनि चेरे।
सोच सकोचन श्रीरति-रोचन धीरज-मोचन लोचन तेरे॥२१॥

सुनारिन को वचन कृष्ण सों, यथा–(कबित्त)

हाँसी में हँसे तें हरि हरे कै भुकति मन-
हारि कै हँसति, हेरि हियें अनुरागी है।
प्रेम की पहेली गूढ़ जानत जनावतहीं
आजु अधरातक लौं मेरे संग जागी है।
अब लौं ज्यों धरो धीर तैसें दिन द्वैक और
धरौ, गिरिधर तुम तें को बड़भागी है।
भावती तिहारी वह कालिह ही तें 'केसोराइ'
काम की कथानि कछू कान देन लागी है॥२२॥

रामजनी को वचन राधिका सों, यथा–(कबित्त)

कोमल कमल वे तौ अमल ये तिक्ष चल,
मलिन नलिन नवनील के से पात हैं।
सूधे साधु सुद्ध वे तौ कुटिल प्रसिद्ध ये तौ
'केसव' परम चोर परम किरात हैं।

---

[१९] मन-नाम (नवल०)। केसोदास-प्यारे लाल (बाल०)।
[२०] बिझकाइ-बिरचाइ (बाल०, रस०)।
[२२] हँसे तें-झकें तें (रस०)। हरे कै-हरि कै (रस०, नवल०)। हारि कै-हरि कै (नवल०)।

पाइहैं पकरि तब पाइहै न कैसें हू तू
थोरो इठलाति ये तौ अति इठलात हैं।
बरजति क्यों न तो सों कब की कहति मेरे
मोहन के नैन तेरे नैन छ्वै छ्वै जात हैं ॥२३॥

रामजनी को वचन कृष्ण सों, यथा—(सवैया)

कौनहूँ तोष कहा भयो 'केसव' कामिनि कोटिक सों हित ठाँटें।
रंच न साध सधै सुख की बिनु राधिकै आधिक लोचन डाँटें।
क्यों खरी सीतल बास करै मुख जौ भखियै घनसार के साँटें।
लालच हाथ रहे, ब्रजनाथ पै प्यास बुझाइ न ओस के चाँटें ॥२४॥

संन्यासिनी को वचन राधिका सों, यथा—(कबित्त)

छूटै न छुटाएँ जब करिहौ धौं कैसी बात
'केसोदास' अनयास प्यास भूख भागिहै।
खेलु भूलि जाइगो, जुड़ाइगो न चित्तु चेति,
कछू ना सुहाइगो री रैनि दिन जागिहै।
ताते तें तपति दूनी सीरे तें सहसगुनी
उपजि परैगी उर ऐसी और आगि है।
एंड़ सो एंड़ाइ जिनि अंचलु उड़ात, ओली,
ओड़ति हौं, काहू की जु डीठि उड़ि लागिहै ॥२५॥

संन्यासिनी को वचन कृष्ण सों, यथा—(कबित्त)

सीतल हू हीतल तिहारें न बसति वह
तुम न तजत तिल ताको उर ताप-गेहु।
आपनो ज्यौ हीरा सो पराएँ हाथ ब्रजनाथ
दै कै तौ अकाथ हाथ मैन ऐसो मन लेहु।
एते पर 'केसोदास' तुम्हैं ना प्रवाह वाहि
वहै जक लागी, भागी भूख सुख भूल्यौ देहु।
माड़ो मुख, छाड़ै छिनु छल न छबीले लाल
ऐसी तौ गँवारिनि सों तुमहीं निबाहौ नेहु ॥२६॥

[२३] कमल-भ्रमल (बाल०, रस०, नवल०)। प्रसिद्ध-करम (बाल०, रस०, नवल०)। चोर परम-चोर मरम (बाल०, रस०)। तो सों- तू हौ (रस०)। मोहन के नैन-मोहन के मने (बाल०, रस०, नवल०)।

[२४] जौ भखियै-जोर भखी (बाल०, रस०)।

[२५] बात-तब (नवल०)। भागिहै-लागिहै (बाल०)। जुड़ाइगो न-जुड़ाइगो री (बाल०)।

[२६] हाथ-साथ (बाल०, रस०)। मैन ऐसो-माखन सो (बाल०)। माड़ो-मांजो (नवल०)।

पटइनि को वचन राधिका सों, यथा–(सवैया)

याही कों मेरी गुसाईंनि मैं मिलई पहिलें बतियाँ छलि छैलो।
बातैं मिलै अँखियाँ मिलई सखियानि के आँखिनि पारि कै ऐलो।
आँखि मिले मुहुँ लागि रहै मनु लेहु मिलैऽब गहैं हम गैलो।
मिलें मन माई कहा करिहौ मुँह ही के मिलें तौ कियो मन मैलो ।।२७।।

पुनः –(सवैया)

गेह की नेह की देह की दीवे की भूषन की जिन भूख भगाई।
मोहिं हँसी दुख दोऊ दई तिनहीं सो जनावति है चतुराई।
'केसवदास' बड़ाई दई तौ कहा भयो जाति-सुभाव न जाई।
सोने सिंगारहु सोंधे चढ़ावहु पीतर की पितराई न जाई ।।२८।।

पटइनि को वचन कृष्ण सों, यथा–(सवैया)

वा मृगनैनी ज्यों औरन हीं जु लगावत हौ मुहँ ऐसे न हूजै।
सोनेंई सीसु जु पीतर होइ तौ 'केसव' कैसहुँ हाथ न छूजै।
आप गिरा गुन जौ सिखवै तऊ काकन कोकिल ज्यों कल कूजै।
सुंदर स्याम बिराम करौ कछु आम की साध न आमिलो पूजै ।।२९।।

(दोहा)

बैन ऐन-सुख मैन करि कहे सखिनि के धर्म।
'केसव' कहौं कछूक अब, तिनके कोविद कर्म ।।३०।।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
सखीजनवर्णनं नाम द्वादशः प्रभावः ॥ १२ ॥

१३

अथ सखीजन-कर्म-वर्णन–(दोहा)

सिक्षा, बिनय मनाइबो, मिलिबो करि सिंगार।
झुकि अरु देई उराहनो यह तिनके ब्योहार ।।१।।

---

[२७] मुहुँ–मनु (रस०)। लागि रहै-सौं मिलिहैं (बाल०)।
[२८] भगाई-भराई (नवल०)। चढ़ावहु-बिनायन (बाल०)।
[३०] धर्म-नर्म (बाल०); कर्म (रस०)।

राधिका सों शिक्षा—(सवैया)

नाह लगें मुख सौति दहें दुख 'नाहिं' लगें दुख देह दहैगो।
'नाहीं' अबै सुख देति है 'केसव' नाह सदा सुख देत रहैगो।
'नाहीं' तें नाही री नाहीं भलाई भली सब नाह ही तें पै कहैगो।
नाह सों नेह निबाहि बलाइ ल्यौं 'नाहीं' सों नेह कहाँ निबहैगो।।२।।

कृष्ण की शिक्षा—(कवित्त)

कुंकम उबटि कुमकुमा के न्हवाइ जल
सोंधो सिर लाइ याहि लाए कहा रास मैं।
चंदन चढ़ाइ फूल-माल पहिराइ झूलि
बे ही काज आँजि माँजि कीनी है प्रकास मैं।
'केसव' कपूर पूरि काहे कौं खवावौ पान
जौ पै मन मगन है ऐसे ही बिलास मैं।
वाही न मनावौ हरि हाहा करि पाइ परि
सबही सुबास बसै जाके मुखबास मैं।।३।।

राधा की बिनय—(सवैया)

ऐसें ही क्यों चुप ह्वै रहिहौं सखि हौं सहिहौं सतराहट सौ लों।
क्यों सरिहै मिलिबे बिन तोहि तऊ मिलियै मिलियै दिन जौ लों।
'केसव' कोरि करौ उपचार मिले को कहा मिलिहै सुख तौ लों।
देखि धौं अंगनि आरसी लै मिलिहै पिय सों मनहीं मन कौ लों।।४।।

कृष्ण सों बिनय—(कवित्त)

कँज के से फूल नैन दारयौं से दसन ऐन
बिंब से अधर हास सुधा सो सुधारयो है।
बेंनी पिकबेंनी की त्रिबेंनी सी बनाइ गुही
बार के सेवार करिहाँ कों करि हारयो है।
कीने कुच अमल कलपतरु के से फल
'केसोदास' यातें बिधि मुगध बिचारयो है।
देखौ न गुपाल सखी मेरी को सरीर सब
सोने सों सँवारि सब सोंधे सों सँवारयो है।।५।।

---

[२] बलाइ ल्यौं—री बावरी (बाल०)।
[५] कंज-सुख (रस०)। बिंब-लाल (बाल०, रस०)। गुही-वीर (बाल०)। बार कै सेवार—धार से बारीक (बाल०); बारिक बारि सों (रस०)। सब सोंधे—मानो मैन (बाल०); मन मैन (रस०)। सँवारयो-सुधारयो (बाल०)।

राधा को मनाइबो—(सवैया)

'नाहीं' सिखावति नाहीं भली सखि पावक सों तिनको मुँह डाढ़ौ।
भौंहनि के भुलवौ भट्ट भावनि नैननि के मत सों हित बाढ़ौ।
कालि तें कालि कै होन दई हँसी, पाइँ परौं न परौ मुँहु काढ़ौ।
राजु करौ यह राजु सदा रहै 'केसव' चित्र ज्यों आगे ही ठाढ़ौ ॥६॥

पुनः—(सवैया)

रीझि रिझाइ झरोखनि झाँकि रही सुख देखि दिखाइ सुभाहीं।
बोलन आएँ अबोली भई अब 'केसव' ऐसी हमैं न सुहाहीं॥
मैं बहुतै बहराईं हैं तो सी री तू बहरावति मोहि बृथाहीं।
एहीं सयान सदा चलिहौ हरि सों हँसि 'हाँ' करै मोही सों नाहीं ॥७॥

कृष्ण को मनाइबो—(सवैया)

भूषन-भेद बनाइ कै 'केसव' फूल बनाइ बनाइ कै बागे।
भाग बढ़ाइ सुहाग बढ़ाइ कै राग बढ़ाइ हियें अनुरागे॥
पाइनि लागत, सोंधो चढ़ावत पान खवावतहीं निसि जागे।
कान्ह चलौ उठि बैठे कहा? मन मूसि परायोऽब रूसन लागे ॥८॥

राधा को मिलैबो—(सवैया)

दुर्लभ देवनि हूँ कों सु तौ हरि को मन हाँसिन ही हरि लीनो।
टारहु जैं हिय तें कबहूँ अब ज्यों गुरु को दियो मंत्र नबीनो।
लेति लियो तौ न देत दियो अब मानहु ता दिन दुख्ख नवीनो।
माँगन आवै तौ दीजै भट्ट अपनो मन, जौ वह जाइ न दीनो ॥९॥

पुनः यथा

आजु देवारि की राति जौ कीजै तौ आजु के द्योस लौं ह्वैहै सभागी।
बात सुनी जननी पै जबै तब ही मति मान की नींद तें जागी।
अंग सिंगारि निहारि निसा तिन चित्त बिहारनि सों अनुरागी।
दीप दै देवनि जाइ जुवा मिलि 'केसवराइ' सों खेलन लागी ॥१०॥

राधिका को मिलैबो—(कवित्त)

जौ हौं गनौं औगुननि तौ तू गनै गुन गन
जौ हौं गनौं गुन तौ तू औगुन के गन में।

[६] पावक—जावक (बाल०)। न परौ तनप्यौ (नवल०)। यह छंद रस० में नहीं है।
[८] चढ़ावत-लगावत (बाल०, नवल०)।
[९] मन—पुन (बाल०)। हरि-हठि (नवल०)। मानहु—मानिहौ (बाल०)। यह छंद रस० में नहीं है।
[१०] यह छंद रस० में नहीं है।

'केसोदास' ऐसें प्रीति छिपावति छलनि में
जैसें छनछबि छूटै छिपै जाइ घन में।
भारी है निठुर निसि भादों की भयावनी में
सु क्यों बसै घर जाको पीउ बसै बन में।
बैठे तें उठावै, उठि चले तें मचलि रहै,
सोई मेरी क्यों न कहै जोई तेरे मन में ॥११॥

कृष्ण को मिलैबो—(कवित्त)

सिखै हारी सखी डरपाइ हारी कादंबिनी
दामिनी दिखाइ हारी दिसि अधरात की।
झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्यो मार
हारी झकझोरत त्रिबिध गति बात की।
दई निरदई दई यादि काहे ऐसी मति
जारति जु रैन दिन दाह ऐसे गात की।
कैसें हूँ न मानै हौं मनाइ हारी 'केसोराइ'
बोलि हारी कोकिला बुलाइ हारी चातकी ॥१२॥

राधिका को शृंगार—(सवैया)

दीनो मैं पाइ झँवाइ महावर आँज्यों मैं आँजन आँखि सुहाई।
भूषन भूषित कीने मैं 'केसव' माल मनोहर मैं पहिराई।
दर्पन लै अब दीपति देखि सखी, सब अंग सिंगारि सिधाई।
बंक बिलोकनि अंक लै पान खवावै को कान्ह-कुमार की नाई ॥१३॥

कृष्ण को शृंगार—(सवैया)

पाग बनी अरु बागो बन्यो बटुवा पटुका कटि राजत नीको।
सोंधो बन्यो अति चारु, मनोहर हार बन्यो उर भावतो जी को।
बीरा बन्यो मुख खात मनोहर मोहिं सिंगार लग्यो सब फीको।
भाल भली विधि जौ लौं गुपाल कियो उहिं बाल बनाइ न टीको ॥१४॥

राधा को झुकिबो—(कवित्त)

फिरि फिरि फेरि फेरि फेर्यो मैं हरी को मन,
मन फेरें फिरी पुन भाग की भली घरी।
पल पल पाइनि परति हुती जिनकें सु
पर्यो पीय तेरें पाइ पी के पाइ हौं परी।

---

[११] श्रौगुन के गन-श्रगुनै गुनन (नवल०)। जैसें ०—जैसे छन छूटि छबि छूटि छपै छन में (बाल०)।

[१२] दिसि-निसि (रस०)। याहि-वाहि (बाल०, नवल०)। दिन-ऐन (बाल०, रस०, नवल०)।

[१३] मैं-हू (नवल०)। अब-कर (बाल०)।

[१४] कटि राजत—कहरा कटि (बाल०, रस०) घरी-घरी (नवल०)।

बड़िनि की बेटिनि की बड़ीयै बड़ाई मेटि,
'केसोदास' बड़िनि में जौं तू हौं बड़ी करी।
हौं तौ जानी मनाएँ तें मेरो गुन मानिहै मैं
ताहि क्यों मनाई तैं जु मो ही सों मनी धरी ॥१५॥

पुन: —(सवैया)

'केसवराइ' बुलावत हैं चित चारु बिलोचन नीचे करौ जू।
कालि करै बर एक बिसौ परौं बीस बिसे ब्रत तें न टरौ जू।
आगि लगै तेरे कालि के सीस, परौं पर जाइ बजागि परौ जू।
आजु मिलौ तौ मिलौ ब्रजराजहि नाहिं तौ नीके है राज करौ जू ॥१६॥

कृष्ण को झुकिबो—(सवैया)

तासों बसाइ कहा कहि 'केसव' कामलता तरु तेंदु रई।
विधि की लिपि लोपी न जाइ अमोलिक लै मनि सीस भुजंग दई।
अपनो मुख देखहु आरसी लै पुनि बात कहौ परमान लई।
बृषभान-सुता पर और सुहागिल बाउ कहाँ लगि जीभ गई ॥१७॥

राधिका सों उराहनो—(कवित्त)

'केसोदास' कौन बड़ी रूप कुनकानि पै
अनोखो एक तेरे हीं अनूप उर ओलियै।
आपनें सयान काहू मानसै न मानै तू
गुमान के बिमान बैठि ब्योम ब्योम डोलियै।
ऐंड़ सों ऐंड़ाइ अति अंचल उड़ाइ ऐसी
छाड़ि ऐंड़ बैंड़ चितवनि निरमोलियै।
दीनो मन हाथ जिनि हीरा सो हरषि कै ता
हरि सों हरिननैनी हरें हूँ तौ बोलियै ॥१८॥

कृष्ण को उराहनो—(कवित्त)

सौंहनि को सोच न सकोच काहू बीच को को
पोंछौ प्यारे पीक-लीक लोचन किनारे की।
माखन की चोरी की है थोरी थोरी मोहू सुधि
जानति बिसेष वहै जोरी है जु बारे की।

[१५] बड़िनि की०—बड़ी बड़ी बधुन की (बाल०, रस०)। जानी—जान्यो मन में तू (नवल०)। मनी धरी-भली करी (नवल०)।
[१६] नीचे करौ—चित चेतहु (बाल०)। करै वर—कलेवर (बाल०)। एक—बीस (नवल०)। है—ह्वै (नवल०)। यह छंद रस० में नहीं है।
[१७] लिपि—गति (नवल०)। बाउ—वारो (बाल०,नवल०)। कहाँ-जहाँ (नबल०)।
[१८] अनूप—अमल (बाल०, नवल०)। [illegible] (बाल०)।

मेरियै कुमति और कहा कहौं 'केसोदास'
लागति है लाल लाज इहाँ पाइँ धारे की।
एती है झुठाई, वह अबहीं रुठाई यह
छारहू तौ छूटी नाहिं पाइनि के पारे की ॥१९॥

राधावचन सखी सों अपरं च–(सवैया)

आँधी सी धाइ है दाई दवारि सी दासिनि के दुख देह दही है।
ताप के तूल तबोलिनि मालिनि-नाइनि नाह के नेह नही है।
तेरी सौं तेरी सौं मेरी सखो सुनि तेरी अकेली की आस रही है।
कान्ह मिलाउ कि मोहि न पाइहै आपने जी को मैं तोसों कही है ॥२०॥

(दोहा)

इहि विधि स्याम-सिंगार-रस बहु विधि बरनो लोइ।
चारि बरन चहुँ आश्रमनि कहत सुनत सुख होइ ॥२१॥
राधा राधा-रमन के करयो सिंगार सुबेष।
रस आदिक आगे कहौं और रसनि को भेष ॥२२॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां सखीजन-
कर्मवर्णनं नाम त्रयोदशः प्रभावः ॥१३॥

१४

अथ हास्यरस-लक्षण–(दोहा)

नयन बयन कछु करत जब मन को मोद उदोत।
चतुर चित्त पहिचानियै, तहाँ हास्य रस होत ॥१॥

हास के भेद–(दोहा)

मंदहास कलहास पुनि, कहि 'केसव' अतिहास।
कोविद कवि बरनत सबै अरु चौथो परिहास ॥२॥

मंदहास-लक्षण–(दोहा)

बिगसहिं नयन, कपोल कछु दसन, दसन के बास।
मंदहास तासों कहत कोबिद 'केसवदास' ॥३॥

---

[१९] बिसेष वहै–वहै किसोरी (बाल०)। रुठाई–रुढ़ाई (रस०)।
[२०] रस–सब (रस०)। लोइ–सोइ (रस०)।

बरनत बाढ़ै ग्रंथ बहु, कहे न 'केसवदास'।
औरौ रस यों जानियौ सबै प्रछन्न प्रकास ॥४॥

राधिका को मंद हास, यथा– (सवैया)

भेद की बात सुने तें कछू वह मासक तें मुसुक्यान लगी है।
बैठति है तिनमें हठि कै जिनकी तुमसों मति प्रेम पगी है।
जानति हौं नलराज दमैंती की दूतकथा रस-रंग रँगी है।
पूजैगी साध सबै सुख की बड़भाग कीं 'केसव' ज्योति जगी है ॥५॥

अपरं च– (सवैया)

जानै को पान खवावत क्यों हूँ गई गड़ि अंगुरी ओठ नवीने।
तैं चितयो तबहीं तिहि रीति री लाल के लोचन लीलि से लीने।
बात कही हरए हँसि 'केसव' मैं समुझी वे महारस भीने।
जानति हौं पिय के जिय के अभिलाष सबै परिपूरन कीने ॥६॥

श्रीकृष्ण को मंद हास, यथा– (कबित्त)

दसन-बसन माँझ दमकै दसन-दुति
बरषि मदन सर करत अचेत हौ।
झाईं झलकत लोल लोचन कपोलनि में
मोल लेत मन क्रम बचन समेत हौ।
भौंहैं कहें देत भाउ सुनौ मेरी भावती के
भावते छबीले लाल मौन कौन हेत हौ।
'केसव' प्रकास हास हँसि कहा लेहुगे जू
ऐसी ही हँसे तें तौ हिये को हरे लेत हौ ॥७॥

कल हास-लक्षण– (दोहा)

जहँ सुनियै कल ध्वनि कछू कोमल बिमल बिलास।
'केसव' तन मन मोहियै, बरनहु कबि कल हास ॥८॥

राधिका को कल हास, यथा– (सवैया)

काछें सितासित काछनी 'केसव' पातुर ज्यों पुतरीनि बिचारौ।
कोटि कटाच्छ नचै गति भेद नचावत नायकु नेह निनारौ।

---

[४] बहु–जिहि (रस०)।
[५] यह छंद रस० में नहीं है।
[६] रीति–भाँति (रस०, नवल०)। केसव–कै सुनि (रस०, नवल०)।
[७] दमकै–दरसै (बाल०, नवल०, रस०)। सर–दुति (रस०)। देत–भेद (बाल०)। सुनौ–कहौ (रस०, नवल०)। हँसे तें०–तौ हँसनि ही तें हियो हरि (रस०)।

बाजत है मृदुहासु मृदंग सु दीपति दीपनि को उजियारौ।
देखत हौ हरि देखि तुम्हैं यह होतु है आँखिन ही में अखारौ ॥६॥

अपरं च, यथा—(सवैया)

प्रेम घने रसबैन सने गति नैननि की सर-मैन भई ही।
बाल-बहिक्रम-दीपति देह त्रिबिक्रम की गति लीलि लई ही।
भौंहैं चढ़ाइ सखीनि दुराइ इतै मुसुकाइ उतै चितई ही।
'केसव' पाइहौ आजु भलें चित चोरि लै कालि गुवालि गई ही ॥१०॥

श्रीकृष्ण को कल हास, यथा—(सवैया)

आजु सखी हरि तोसों कछू बड़ी बार लौं बात कही रस भीनी।
मोलि गरैं पटुका पुनि 'केसव' हारि हियें मनुहारि सी कीनो।
मोहि अचंभो महा सु हहा कहि बाँह कहा बड़ी बार लौं लीनी।
तैं सिर हाथ दियो उनिकें उनि गाँठि कहा हँसि आँचरु दीनी ॥११॥

अतिहास-लक्षण—(दोहा)

जहाँ हँसहिं निरसंक ह्वै प्रकटहिं सुख मुख-बास।
आधे आधे बरन पद, उपजि परत अतिहास ॥१२॥

राधिका को अतिहास, यथा—(कवित्त)

तैसीयै जगत ज्योति सीस सीसफूलनि की,
चिलकत तरुनि तिलक तेरे भाल को।
तैसीयै दसन-दुति दमकति 'केसोदास'
तैसोई लसतु लाल लाल कंठमाल को।
तैसीयै चमक चारु चिबुक कपोलनि की
चमकत तैसो नकमोती चल चाल को।
हरैं हरैं हँसि नेक चतुर चपलनैनि
चित्त चकचौंधै मेरे मदन गुपाल को ॥१३॥

श्रीकृष्ण को अतिहास, यथा—(कवित्त)

गिरि गिरि उठि उठि रीझि रीझि लागैं कंठ
बीच बीच न्यारे होत छबि न्यारी न्यारी सों।

---

[६] निनारो—निन्यारो (रस०); निहारो (बाल०,नवल०)। ही में—बीच (नवल०)।
[१०] सर मैन—रस मैन (नवल०)। यह छंद रस० में नहीं है।
[११] बाँह—चाह (नवल०)। बड़ी—बहु (बाल०, नवल०)।
[१३ [चिलकत—झिलकत (बाल०, नवल०) । तरुनि—तिलनि (बाल०)। चमकत—झलकत (बाल०, रस०)।

आपुस में अकुलाइ आधे आधे आखरनि
आछी आछी बात कहैं आछी एक यारी सों।
सुनत सुहाइ सब समुझि परै न कछू
'केसोदास' की सौं दुरि देखे मैं दुस्यारी सों।
तरनि-तनूजा-तीर तरवर-तर ठाढ़े
तारी दै दै हँसत कुँवर कान्ह प्यारी सों ॥१४॥

अथ परिहास-लक्षण–(दोहा)

जहँ परिजन सब हँसि उठैं तजि दंपति की कानि।
'केसव' कौनहु बुद्धिबल सो परिहास बखानि ॥१५॥

राधा को परिहास, यथा–(सवैया)

आई है एक महाबन तें तिय गावति मानो गिरा पगु धारी।
सुंदरता जनु काम की कामिनि, बोलि कह्यो बृषभानु-दुलारी।
गोपिकै ल्याइ गुपालहि वै अकुलाइ मिली उठि आदर भारी।
'केसव' भेटत ही भरि अंक हँसों सब कीक दै गोपकुमारी ॥१६॥

श्रीकृष्ण को परिहास, यथा–(सवैया)

सखि बात सुनौ इक मोहन की निकसी मटुकी सिर री हलकै।
पुनि बाँधि लई सुनिये नतनारु कहूँ कहूँ बुंद करी छलकै।
निकसीं उहि गैल हुते जहँ मोहन लीनी उतारि जबै चल कै।
पतुकी धरी स्याम खिसाइ रहे उत ग्वारि हँसी मुख आँचल कै ॥१७॥

अथ करुण रस-लक्षण–(दोहा)

प्रिय के बिप्रिय करन तें आनि करुन रस होत।
ऐसो बरन बखानियें जैसो तरुन कपोत ॥१८॥

---

[१४] कछू–अब (बाल०, रस०)।
[१६] मानो–गीत (बाल०)। उठि–करि (रस०)। आदर-सदर (नवल०)।
कीक–कूक (रस०)। कीक दै–की कहै (बाल०)।
[१७] सखि–जुवती सुनि औगुन मोहन के (रस०)। री हल कै–रीतियै लै (रस०)। सुनिए–सु नए (रस०)। नतनारु-नतनासु (रस०)। पतुकी–पितुखी (रस०)। यह छंद बाल० में नहीं है। यह दोहा रस० में अधिक है—
कह्यो हास रस बरनि यों अरु रस सुगम कबित्त।
करुनादिक सिंगारमय बरने समझहु चित्त ॥

राधिकाजू को करुण रस, यथा–(कवित्त)

तेज सूर से अपार, चंद्रमा से सुकुमार,
संभु से उदार उर उर धरियतु है।
इंद्रजू से प्रभु पूरे, रामजू से रन सूरे
कामजू से रूप रूरे हिय हरियतु है।
सागर से धीर गनपति से चतुर अति
ऐसे अबिबेक कैसे दिन भरियतु है।
नंद मति मंद महा यसुदा से कहौं कहा,
ऐसे पूत पाइ पसुपाल करियतु है ॥१९॥

श्रीकृष्ण को करुण रस, यथा–(कवित्त)

चंपे की सी कली भली 'केसव' सुबास भरी,
रूप की सी मंजरी मधुप मन भाइयै।
बेद की सी बानी अति बानी तें सयानी देव
राइ की सी रानी जानी जग सुखदाइयै।
काम की कला सी, चपला सी, काम अबला सी
कमला सी देह धरें पूरे पुन्य पाइयै।

कौनें कीनी निपट कुचालि जाति ग्वारि ऐसी
राधिका कुँवरि पर गोरस बिचाइयै ॥२०॥

अथ रौद्र रस-लक्षण–(दोहा)

होहि रौद्र रस क्रोधमय बिग्रह उग्र सरीर।
अरुन बरन बरनत सबै कहि 'केसव' मति धीर ॥२१॥

राधिकाजू को रौद्र रस, यथा–(कवित्त)

केहरो कपोत करि केर मृग मीन फनि
सुक पिक कंज खंजरीट बन लीनो है।
मृदुल मृनाल बिंब चंपक मराल बेलि
कुंकुम दाड़िम कहँ दूनो दुख दीनो है।

---

[१९] उदार उर–उदार अति (नवल०)। अति-चर (बाल०)। यह छंद रस० में नहीं है।

[२०] भली–अली (नवल०)। भरी–भली (नवल०)। वेद की–देव की (रस०)। कुचालि–कुजाति (बाल०, नवल०)। पर--पहँ (रस०)।

[२१] केहरी कपोत करि केर–केहरी कुवास करि केरि (बाल०); केहरी की हरी कटि करी (नवल०); केहरी कपोत ककुरी कोक (रस०)।

जारत कनक तन तनक तनक ससि,
बढ़त घटत बंधुजीव गंधहीनो है।
'केसोदास' दास भए कोबिद कुँवर कान्ह
राधिका कुँवरि कोप कौन पर कीनो है॥२२॥

श्रीकृष्ण को रौद्र रस, यथा–(कवित्त)

मींडि मारयो कलह वियोग मारयो बोरि कै
मरोरि मारयो अभिमान भारयो भय भान्यो है।
सबको सुहाग अनुराग लूटि लीनो दीनो
राधिका कुँवरि कहँ सब सुख सान्यो है।
कपट कपटि डारयौ निपट कै औरनि सों
मेटो पहिचानि मन में हूँ पहिचान्यो है।
जीत्यो रति रन मथ्यो मनमथ हू को मन
'केसोदास' कौन कहुँ रोष उर आन्यो है॥२३॥

अथ वीर रस-लक्षण–(दोहा)

होहि बीर उत्साहमय गौर बरन दुति अंग।
अति उदार गंभीर कहि 'केसव' पाइ प्रसंग॥२४॥

राधिकाजू को वीर रस, यथा–(कवित्त)

गति गजराज साजि देह की दिपति बाजि,
हाव रथ भाव पत्तिराजि चली चाल सों।
'केसोदास' मंदहास असि कुच भट भिरे
भेंट भए प्रतिभट भाले नखजाल सों।
लाज साजि कुलकानि-सोच पोच भय भानि,
भौंहैं धनु तानि बान लोचन बिसाल सों।
प्रेम को कवच कसि साहस सहायक लै
जीत्यो रति-रन आजु मदन गुपाल सों॥२५॥

श्रीकृष्ण को वीर रस, यथा–(कवित्त)

अघ ज्यों उदारिहौ कि बक ज्यों बिदारिहौ कि
केस गहि 'केसोदास' केसी ज्यों पछारिहौ।
हरिहौ कि प्राननाथ पूतना के प्राननि ज्यों
बन तें कि बनमाली कालो ज्यों निकारिहौ।

---

[२३] कहँ–कर (रस०)।
[२५] हाव रथ–हास रथ (रस०)। चाल–बाल (बाल०)। जाल–जान (बाल०)। कसि–साजि (बाल०)। रति–राग (बाल०)। जीत्यो–जीति (बाल०, नवल०)।

हरिहौ बिमद घनबाहन ज्यों घनस्याम
काहू सों न हारे हरि याही सों क्यों हारिहौ।
वे ही काम काम बर ब्रज की कुमारिकानि
मारतु है नंद के कुमार कब मारिहौ ॥२६॥

अथ भयानक रस-लक्षण–(दोहा)

होइ भयानक रस सदा 'केसव' स्याम सरीर।
जाको देखत सुनतहीं, उपजि परति भय-भीर ॥२७॥

राधिकाजू को भयानक रस, यथा–(सवैया)

भुवमंडल मंडित कै घनघोर उठे दिविमंडल मंडि गटी।
घहराति घटा घन बात के संघट घोष घटै न घटी हूँ घटी।
दस हूँ दिसि 'केसव' दामिनि देखि लगी प्रिय कामिनि-कंठ-तटी।
जनु पंथहि पाइ पुरंदर के बन पावक की लपटैं झपटी ॥२८॥

श्रीकृष्ण को भयानक रस, यथा–(कबित्त)

रोष में रस के बोल विष तें सरस होत
जानै सो प्रबल पित्त दाखें जिन चाखी हैं।
'केसोदास' दुख दीबे लायक भयेऽब तुम
आज लगि जाकी जी में आँखैं अभिलाषी हैं।
सूधे ह्वै सुधारिबे कौं आए सिखवन मोंहि
सूधे हूँ में सूधी बातैं मो सों उन भाखी हैं।
ऐसे में हौं कैसें जाउँ दुरि हूँ धौं देखौ जाइ
काम की कमान सी चढ़ाइ भौंह राखी हैं ॥२९॥

अथ बीभत्स रस-लक्षण–(दोहा)

निंदा भय बीभत्स रस, नील बरन बपु तास।
'केसव' देखत सुनत ही तन मन होइ उदास ॥३०॥

राधिकाजू को बीभत्स रस, यथा–(कबित्त)

माता ही को मास तोहि लागतु है मीठो मुख
पियत पिता को लोहू नेक ना घिनाति है।
भैयनि के कंठनि को काटत न कसकति
तेरो हियो कैसो है जु कहति सिहाति है।

---

[२६] केस गहि–कंस ज्यौं कि (बाल०, रस०)। करिहौ–हरिहौ (रस०)।
[२८] गटी–घटी (नवल०)। घन–घट (बाल०, रस०)। पंथहिं–पारथ (नवल०)।

जब जब होत भेंट तब तब मेरी भटू
ऐसी सौंहें दिन उठि खाति न अघाति है।
प्रेतिनी पिसाचिनी निसाचरी की जाई है तू
'केसोदास' की सौं कहि तेरी कौन जाति है ॥३१॥

श्रीकृष्ण को वीभत्स रस, यथा–(कवित्त)

टूटे ठाट घुन घुने धूम धूरि सों जु सने
झींगुर छगोड़ी साँप बीछिन की घात जू।
कंटक-कलित त्रिन-बलित बिगंध जल
तिनके तलप-तल ताकों ललचात जू।
कुलटा कुचील गात अंध तम अधरात
कहि न सकत बात अति अकुलात जू।
छेंड़ी में घुसौ कि घर ईंधन के घनस्याम
पर-घरनीनि पहँ जात न घिनात जू ॥३२॥

अथ अद्भुत रस-लक्षण–(दोहा)

होइ अचंभो देखि सुनि सो अद्भुत रस जानि।
'केसोदास' बिलास-निधि, पीत बरन बपु भानि ॥३३॥

राधिकाजू को अद्भुत रस, यथा–(कबित्त)

'केसोदास' बाल बैस दीपति तरुनि तेरी
बानी लघु बरनत बुधि परमान की।
कोमल अमल उर उरज कठोर जाति
अबला पै बलबीर-बंधान-बिधान की।
चंचल चितौनि चित्त अचल सुभाव साधु
सकल असाधु भाव काम की कथान की।
बेचति फिरति दधि, लेत तिन्हैं मोल लेत
अदभुत रसभरी बेटी बृषभान की ॥३४॥

अन्यच्च, यथा–(कबित्त)

ब्रज की कुमारिका वे लीनें सुक-सारिका
पढ़ावैं कोक कारिकानि 'केसव' सबै निबाहि।
गोरी गोरी भोरी भोरी थोरी थोरी बैस फिरैं
देवता-सी दौरी दौरी आई चोराचोरी चाहि।

---

[३२] नेक--क्योंहू (रस०)। घिनाति--अघाति (रस०; नवल०)।
[३२] घुने--घने (रस०, नवल०)। धूरि सौं जु--धूम सनि (रस०); धूरि सैनि (बाल०)। अधरात--अधिराति (रस०)।
[३४] बरनत--बरनन (बाल०, रस०)।

बिन गुन तेरी आनि भृकुटी कमान तानि
कुटिल-कटाछ-बान यहै अचरज आहि।
एते मान ढीठ ईठ तेरो को अदीठ मन
पीठ दै दै मारती पै चूकती न कोऊ ताहि ॥३५॥

श्रीकृष्ण को अद्भुत रस, यथा—(कबित्त)

माखन के चोर मधु-चोर दधि-दूध-चोर
देखै नाहिं देखत ही चित चोरि लेत हैं।
पुरुष पुरान अरु पूरन पुरान इन्हैं
पुरुष पुरान सु कहत किंहि हेत हैं।
'केसोदास' देखि देखि सुरनि की सुंदरी वे
करति बिचार सब सुमति-समेत हैं।
देखि गति गोपिका की भूलि जात निज गति
अगतिन कैसें धौं परम गति देत हैं ॥३६॥

अथ सम रस-लक्षण—(दोहा)

सब तें होय उदास मन, बसै एक हीं ठौर।
ताही सों समरस कहत 'केसव' कबि-सिरमौर ॥३७॥

राधिकाजू को सम रस, यथा—(सवैया)

देखैं नहीं अरबिंदनि त्यौं चित चंद की आनंद-कंद निकाई।
कामिनि काम-कथा करै कान न ताकै त्रिधाम की सुंदरताई।
देखि गई जब तें तुमकों तब तें कछु वाहि न देख्यो सुहाई।
छाड़ैगी देह जु देखें बिना अहो देहु न कान्ह कहूँ ह्वै दिखाई ॥३८॥

---

[३५] कुटिल--नयन (बाल०)। मान--पर (रस०)।
[३६] चोरि लेत—हरि लेत (रस०, नवल०)। पुरुष--पूरन (बाल०, रस०)। पूरन--पुरुष (बाल०, रस०)। सब—सच (बाल०)। सुमति--सुरनि (रस०)। अगतिन--अगतनि (रस०)।

नवल० में नीचे के सवैये की टीका इसलिए नहीं की गई है कि 'या कवित्त बहुत प्राचीन पुस्तकन में नाहीं मिलत'—

बन मोहिं मिले हूते केसवराइ कहा बरनों गुन गूढ़ उधारे।
जसुदा पै गई तब रोहनी पै चुटि आहि गुहावत जाइ निहारे।
घर जाउँ तु सोवत हैं फिर जाउँ तौ नंद पै खात बरा दधिवारे।
सपनो यह सत्त किधौं सजनी हरि बाहिर होत बड़े घरबारे ॥३७॥

[३८] देह--प्रान (बाल०)।

श्रीकृष्ण को समरस, यथा–(सवैया)

खारिक खात न दारयौंइ दाख न माखन हूं सहूँ मेटी इठाई।
'केसव' ऊख महूखहु दूखत आई हौं तो पह छाड़ि जिठाई।
तो रदनच्छद को रस रंचक चाखि गए करि केहूँ ढिठाई।
ता दिन तें उनि राखी उठाय समेत-सुधा बसुधा की मिठाई ॥३९॥

अपरं च–(कवित्त)

दनुज मनुज जीव जल थल जननि को
परयोई रहत जहाँ काल सो समरु है।
अजर अनंत अज अमरौ मरत परि,
'केसव' निकसि जानै सोई तौ अमरु है।
बाजत स्रवन सुनि समुझि सबद करि,
बेदनि को बाद नाहिं सिव को डमरु है।
भागहु रे भागौ भैया भागनि ज्यों भाग्यो परै
भव के भवन माँझ भय को भमरु है॥४०॥

(दोहा)

इहिं बिधि बरन्यो बरन बहु, नवरस रसिक बिचारि।
बाँधौं बृत्ति कबित्त की कहि 'केसव' बिधि चारि ॥४१॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
नवरसवर्णनं नाम चतुर्दशः प्रभावः ॥१४॥

१५

अथ वृत्ति-वर्णन–(दोहा)

प्रथम कैसिकी भारती आरभटी भनि भाँति।
कहि 'केसव' सुभ सात्त्वती चतुर चतुर बिधि जाति ॥१॥

अथ कैशिकी-लक्षण–(दोहा)

कहियै 'केसवदास' जहँ करुन हास सिंगार।
सरल बरन सुभ भाव जहँ सो कैसिकी विचार ॥२॥

[३९] महूखहु–पियूखहि (रस०); मयूखहि (बाल०, नवल०)।
[४०] जल०–जलज थलजनि (रस०)।

यथा–(कवित्त)

मिलिबे कौं एक मिली मिली फिरें दूतिकानि
मिलि मन ही मन बिलास बिलसति हैं।
बोलिबे कौं एक बाल बोल सुनिबे कौं एक
बोलि बोलि तीरथनि ब्रतनि बर्सति हैं।
देखिबे कौं फिरे एक देवता सी दौरि दौरि,
देवता मनाइ दिन दान मनर्सति हैं।
कीजै कहा करम कौं इहिं रूप मेरी माई
ये तौ मेरे कान्हजू के नामहिं हँसति हैं॥३॥

अथ भारती लक्षण–(दोहा)

बरनिय जामें बीररस रसमय अदभुत हास।
कहि 'केसव' सुभ अर्थ जहँ सौ भारती प्रकास॥४॥

यथा–(कबित्त)

काननि कनक-पत्र चक्र चमकत चारु,
धुजा झुलमुली झलकति अति सुखदाइ।
'केसव' छबीलो छत्र सोसफूल सारथी सो,
केसरि की आड़ि अधिरथिक रची बनाई।
नीकोई नकीब सम नीको नकमोती नाक
एक ही बिलोकनि गोपाल तौ गए बिकाइ।
लोचन बिसाल भाल जरित जराऊ टीको
मानों चढ़्यो मीनन के रथ मनमथ राइ॥५॥

अथ आरभटी-लक्षण–(दोहा)

'केसव' जामें रौद्ररस, भय बीभत्सहि जान।
आरभटी आरंभ यह, पद पद जमक बखान॥६॥

यथा–(सवैया)

घेरि घने घन घोरत सज्जल उज्जल कज्जल की रुचि राँचैं।
फूले फिरें इभ से नभ पाइक सावन की पहलो तिथि पाँचैं।

---

[३] मिलि०–मिलि मिलि मही बिलास (रस०)। मनसति–मै नसति (बाल०,नवल०)।
[५] अविरथिक–अधिराधिका (नवल०, रस०)। नीकोई नकीब सम०–नीकें हीं नकीब सम नीको मोती नीकी नाक (रस०); नीके ही मैं नीकी नाक नीको मोती उरजात (बाल०)। टीको–लाल (रस०, नवल०)। चढ़्यो–बेगै (बाल०)।

चौहूँ कुघा तड़िता तड़पै डरपै बनिता कहि 'केसव' साँचैं।
जानि मनो ब्रजराज बिना ब्रज ऊपर काल-कुटुंबिनि नाँचैं ।।७।।

अथ सात्वती-लक्षण–(दोहा)

अदभुत बीर सिंगार रस समरस बरनि समान।
सुनतहिं समुझत भाव जिहिं सो सात्वकी सुजान ।।८।।

यथा–(कवित्त)

'केसोदास' लाख लाख भाँतिनि के अभिलाष
बारि दै री बावरी न बारि हियो होरी सी।
राधा हरि केरी प्रीति सबतें अधिक जानि
रति रतिनाथ हू में देखौं रति थोरी सी।
तिन महिं भेद न भवानि हू पै पार्‌यो जाइ
भानत में भारती की भारती है भोरी सी।
एकै गति एकै मति एकै प्रान एकै मन
देखिबे कौं देह द्वै हैं नैननि की जोरी सी ।।९।।

(दोहा)

इहिं बिधि केसवदास कबि, नवरस बरनि कबित्त।
पाँच भाँति अनरस सुनौ, ताहि न दीजै चित्त ।।१०।।

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
चतुर्विधकवित्ववृत्तिवर्णनं नाम पंचदशः प्रभावः ।।१५।।

१६

अथ अनरस-वर्णन–(दोहा)

प्रत्यनीक नीरस बिरस 'केसव' दुःसंधान।
पात्रादुष्ट कबित्त बहु, करहिं न सुकबि बखान ।।१।।

---

[७] कुंघा-कुदाँ (बाल०, रस०)।
[८] बीर सिंगार-रुद्र रु बीर (बाल०, रस०)।
[९] देखौं-जानौ (बाल०)। महिं-हू में (रस०)। भानत-भारत (रस०)।

अथ प्रत्यनीक-लक्षण–(दोहा)

जहँ सिंगार बीभत्स भय, बीरहि बरनै कोइ।
रौद्र सु करुना मिलत ही प्रत्यनीक रस होइ ॥२॥

उदाहरण–(सवैया)

हँसि बोलत ही सु हँसै सब 'केसव' लाज भगावत लोक भगै।
कछु बात चलावत घैरु चलै मन आनतहीं मनमत्थ जगै।
सखि तू जु कही सु हुती मन मेरेहु जानि यहै न हियो उमगै।
हरि त्यौं टुक दीठि पसारत ही अँगुरीन पसारन लोग लगै ॥३॥

अथ नीरस-लक्षण–(दोहा)

जहाँ दंपती मुँह मिलै सदा रहै यह रीति।
कपट करै लपटाय तन नीरस रस की प्रीति ॥४॥

उदाहरण–(सवैया)

गाहत सिंधु सयाननि के जिनकी मति की अति देह दहेली।
मोहि हँसी दुख दोऊ दई तिनहूँ सो जनावति प्रेम-पहेली।
आजु लौं कानन हूँ न सुनी सु तो देखि चली हम सौति-सहेली।
जानी है जानी मिली मुँह ही हिय नाहियै भावति गर्ब गहेली ॥५॥

अथ विरस-लक्षण–(दोहा)

जहीं सोक महिं भोग को बरनतु है कबि कोइ।
'केसवदास' हुलास सों, तहीं बिरस रसु होइ ॥६॥

उदाहरण–(कबित्त)

'केसोदास' न्हान दान खान पान भूल्यो ध्यान
गयो ज्ञान भयो प्रान पीठि की सी पीठि है।
छाँडहु रसिक लाल यह जक वह बाल
देखत ही सब सुख तुमहीं उबीठिहै।
ऐसी सों बसीठी, सीठी चीठी अति दीठी सुनै
मीठी मीठी बातनि, जु नीके हू में नीठि है।
ईठनि सों टूटी ईठी ताके सोक की अँगीठी
उठी जाके उर में सु कैसे हँसि डीठिहै ॥७॥

अथ दुःसाधन-लक्षण–(दोहा)

एक होइ अनुकूल जहँ, दूजो है प्रतिकूल।
'केसव' दुःसाधन रस, सोभित तहाँ समूल ॥८॥

[५] के जिन–काज (बाल०)। मति–रति (बाल०)।

उदाहरण–(सवैया)

'दै दधि' 'दीनो उधार हो केसव !' 'दान कहा जब मोल लै खैहैं'।
'दीने बिना तौ गई जु गई !' 'न गई न गई घर ही फिरि जैहैं'।
'गो हितु बैर कियो' 'कब हो हितु बैरु किये बरु नीकी ह्वै रैहैं'!
'बैरु कै गोरस बेचहुगी' 'अहो बेच्यो न बेच्यो तौ ढारि न दैहैं' ॥९॥

अथ पात्रादुष्ट रस-लक्षण–(दोहा)

जैसो जहाँ न बूझियै, तैसी करियै पुष्ट।
बिनु बिचार जो बरनियै, सो रस पात्रादुष्ट ॥१०॥

उदाहरण–(कबित्त)

कपट कृपानी मानी प्रेम-रस लपटानी
प्राननि को गंगाजू के पानी सम जानियै।
स्वारथ-निधानी परमारथ की राजधानी
काम की कहानीं 'केसोदास' जग मानियै।
सुबरन अरुझानी, सुधा सों सुधारि आनी
सकल-सयान-सानी ज्ञानी सुखदानियै।
गौरा औ गिरा लजानी मोहे मुनि मूढ़ प्रानी
ऐसी बानी मेरी रानी विषु कै बखानियै। ११॥

(दोहा)

'केसव' करुना हास्य कहुँ अरु बीभत्स सिंगार।
बरनत बीर भयानकहि संतत बैर बिचार ॥१२॥
भय उपजै बीभत्स तें अरु सिंगार तें हासु।
'केसव' अदभुत बीर तें, करुना कोप प्रकासु ॥१३॥
इहि बिधि 'केसवदास' रस, अनरस कहे विचारि।
बरनत भूल परी जहाँ कबिकुल लेहु सुधारि ॥१४॥
जैसे रसिकप्रिया बिना देखिय दिन दिन दीन।
त्यों ही भाषा-कबि सबै, रसिकप्रिया बिन हीन ॥१५॥
बाढ़ै रति मति अति परे जाने सब रस-रीति।
स्वारथ परमारथ लहे, रसिकप्रिया की प्रीति ॥१६॥

इति श्रीमन्महाराजकुमारइंद्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां
रस-अनरसवर्णनं नाम षोडशः प्रभावः ॥१६॥

---

[१०] पात्रादुष्ट–पातरदुष्ट (नवल०)।
[११] मानी–जानी (बाल०)। विषु कै–मुख तैं (बाल०)।

कविप्रिया

१

(दोहा)

गजमुख सनमुख होत ही बिघन ब्रिमुख ह्वै जात।
ज्यों पग परत पयाग-मग पाप-पहार बिलात ॥१॥
बानीजू के बरन जुग सुबरनकन-परिमान।
सुकबि सुमुख कुरुखेत परि होत सुमेर समान ॥२॥

(दंडक)

सत्व सत्व गुन को कि सत्य ही की सत्या सुभ,
सिद्धि की प्रसिद्धि की सुबुद्धि-बृद्धि मानियै।
ज्ञान ही की गरिमा कि महिमा बिबेक की कि
दरसन ही को दरसन उर आनियै।
पुन्य को प्रकास बेद विद्या को बिलास किधौं,
जस को निवास 'केसोदास' जग जानियै।
मदन-कदन-सुत-बदन-रदन किधौं
बिघन-बिनासन की बिधि पहिचानियै ॥३॥

(दोहा)

प्रगट पंचमी को भयो कबिप्रिया-अवतार।
सोरह सै अट्ठावना फागुन सुदि बुधवार ॥४॥
नृपकुल बरनौं प्रथम ही अरु कबि 'केसव'-बंस।
प्रगट करी जिन कबिप्रिया कबिता के अवतंस ॥५॥

अथ नृपवंश-वर्णन—(दोहा)

ब्रह्मादिक की बिनय तें हरन सकल भुवभार।
सूरज-बंस करचो प्रगट रामचन्द्र अवतार ॥६॥
तिनकें कुल कलिकालरिपु कहि 'केसव' रनधीर।
गहरवार इहि ख्याति जुत प्रगट भयो नृप बीर ॥७॥
करन नृपति तिनकें भए धरनी-धर्म-प्रकास।
जीति सबै जगती करचो बारानसी निवास ॥८॥

---

[३] सत्या–सत्ता (सरदार०, हरि०)।
[५] यह छंद सरदार० में नहीं है।
[७] इहि–विख्यात जग (सरदार०, हरि०)।
[८] करचो–कियौ (याज्ञिक०, याज्ञिक प्र०)।

प्रगट करन तीरथ भयो जग में जिनके नाम।
तिनकें अर्जुनपाल नृप भए महोनी ग्राम ॥९॥
गढ़कुँडार तिनकें भए राजा साहन पाल।
सहजइंद्र तिनकें भए, कहि 'केसव' रिपुकाल ॥१०॥
राजा नौनगद्यौ भए तिनकें पूरनसाज।
नौनगद्यौ के सुत भए, पृथु ज्यों पृथिवीराज ॥११॥
रामसिंघ राजा भए तिनकें सूर समान।
राजचंद्र तिनकें भए राजा चंद्र प्रमान ॥१२॥
राजा मेदिनिमल भए, तिनकें 'केसवदास'।
अरि-मद-मर्दन मेदिनी कीनो धर्म-प्रकास ॥१३॥
राजा अर्जुनद्यौ भए तिनकें अर्जुन रूप।
श्रीनारायन को सखा कहै सकल भुवभूप ॥१४॥
महादान षोड़स दए जीती जग-दिसि चारि।
चारौं बेद अठारहौ सुने पुरान बिचारि ॥१५॥
रिपुखंडन तिनकें भए राजा श्रीमलखान।
जुद्ध जुरे न मुरघो कहूँ जानत सकल जहान ॥१६॥
नृप प्रतापरुद्र सु भए तिनकें जनु रनरुद्र।
दयादान को कल्पतरु गुननिधि सीलसमुद्र ॥१७॥
नगर ओरछो जिन रच्यो, जग में जागति कृत्ति।
कृस्नदत्त मिश्रहिं दई जिन पुरान की बृत्ति ॥१८॥
भरथखंड मंडन भए तिनकें भारतिचंद।
देस रसातल जात जिहि फेरघो ज्यों हरिचंद ॥१९॥
सेरसाह असलेम कें उर साली समसेर।
एक चतुर्भुज ही नयो ताको सिर तिहि बेर ॥२०॥
उपजि न पायो पुत्र तिहि गयो सु प्रभु सुरलोक।
सोदर मधुकर साहि तब भूप भए भुवलोक ॥२१॥
जिनकें राज रसा बसै 'केसव' कुसल किसान।
सिंधु दिसा नहिं बार ही पार बजाय निशान ॥२२॥

[९] जिनके–जाको (याज्ञिक अ०)।
[१०] सहजइंद्र–सहजकरन (याज्ञिक अ०)।
[११] नौनगद्यौ–नौनिकदे (सरदार०, हरि०, लाला०)। पृथु–पृथ्वी (बाल०)।
[१२] प्रमान–बखान (याज्ञिक अ०)। [१३] मद-मर्दन–मर्दन करि (बाल०); मर्दन तिन (याज्ञिक०)।
[१४] तिनकैं–राजा (याज्ञिक०)। भुव-भव (बाल०)।
[१९] मंडन–भूषन (बाल०)। जिहिं–जिन (बाल०, लाला०)।
[२०] ताको–जाको (याज्ञिक०)। तिहि–इहि (याज्ञिक०)।
[२१] तिहि–नहि (बाल०)।

तिन पर चढ़ि आए जु रिपु 'केसव' गए ते हारि।
जिन पर चढ़ि आपुन गए आए तिन्हैं सँघारि ॥२३॥
सवरसाहि अकबर अवनि जीति लई दिसि चारि।
मधुकरसाह नरेश गढ़ तिनके लीन्हे मारि ॥२४॥
खान गनै सुलतान कौ राजा रावत बादि।
हारयो मधुकरसाहि सों आपुन साहि मुरादि ॥२५॥
साध्यो स्वारथ साथ ही परमारथ सों नेह।
गयो सु प्रभु बैकुंठ-मग ब्रह्मरंध्र तजि देह ॥२६॥
तिनकें दूलहराम सुत लहुरे होरिलराउ।
रिपुखंडन कुलमंडनौ पूरन पुहुमि प्रभाउ ॥२७॥
रनरूरो रनसिंघ पुनि, रतनसेन सुनि ईस।
बांध्यो आपु जलालदीं बानो जाके सीस ॥२८॥
इंद्रजीत रनजीत अरु सत्रुजीत बलबीर।
बिरसिंघ देव प्रसिद्ध पुनि, हरसिंघ द्यौ रनधीर ॥२९॥
मधुकरसाह नरेस के इतने भए कुमार।
रामसाह राजा भए, तिनकें बुद्धि अपार ॥३०॥
घर बाहिर जहँहीं तहीं, 'केसव' देस बिदेस।
सब कोऊ यहई कहै, जीत्यो राम नरेश ॥३१॥
रामसाह सों सूरता, धर्म न पूजै आन।
जाहि सराहत सर्बदा, अकबर सो सुल्तान ॥३२॥
कर जोरें ठाढ़े जहाँ, आठौ दिसि के ईस।
ताहि तहाँ बैठक दई, अकबर से अवनीस ॥३३॥
जाके दरसन कों गए, उघरे देव किंवार।
उपजी दीपति देह कीं, 'केसव' एकहि बार ॥३४॥

---

[२३] रिपु–अरि (बाल०)। जिन पर चढ़ि–चढ़ि जापर (बाल०)। सँघारि–सँहारि (लाला०, हरि०, सरदार०)।
[२४] सबर–सबल (लाला०, हरि०, सरदार०)। जीति–जीतो जग दिसि चारि (बाल०)।
[२८] रनसिंघ–दलसिंह(लाला०, सरदार०); रनसिंधु (हरि०)। सुनि–सुत (लाला० सरदार०)।
[२९] देव प्रसिद्ध–द्यौ सिंघ(याज्ञिक अ०)। द्यौ–भो (लाला०, हरि०, सरदार०)।
[३०] अपार–उदार (लाला०, हरि०, सरदार०)।
[३४] देह–दीप (याज्ञिक अ०, लाला०, हरि०, सरदार०)। केसव–देखत (लाला, याज्ञिक, हरि०)।

ता राजा को राज अब, राजत जगती माहँ।
राजा राना राउ सब, सोंवत जाको छाहँ ॥३५॥
तिनकें सुत ग्यारह भए, जेठे साह सँग्राम।
दच्छिन दच्छिनराज सों जिन जीत्यो संग्राम ॥३६॥
भरथखंडभूषन भए, तिनकें भारथिसाहि।
भरथ भगीरथ पारथहि उनमानत सब ताहि ॥३७॥
सुत सोदर नृप राम के जदपि बहुत परिवार।
तदपि सबै इँद्रजीत-सिर राज लाज को भार ॥३८॥
कल्पबृच्छ सो दानि दिन सागर सो गंभीर।
'केसव' सूरो सूर सो अर्जुन सो रनधीर ॥३९॥
ताहि कछोवा कमल सो गढ़ दीनो नृप राम।
बिधि ज्यों राजत बैठि तहँ 'केसव' बाम अबाम ॥४०॥
करयो अखारो राज कै सासन सब संगीत।
ताको देखत इंद्र ज्यों इंद्रजीत रनजीत ॥४१॥
बालबहिक्रम बाल सब, रूप सील गुन वृद्ध।
जदपि भरयो अवरोध षट पातुर परम प्रसिद्ध ॥४२॥
रायप्रबीन प्रबीन अति, नवरँगराय सुबेस।
अति बिचित्रनयना निपुन, लोचन ललित सुदेस ॥४३॥
सोहति सागर राग की, तानतरंग तरंग।
रंगराय रँगबलित गति रँगमूरति अँग अंग ॥४४॥
तंत्री तुंबुरु सारिका सुद्ध सुरन सों लीन।
देवसभा सी सोभिजै रायप्रबीन प्रबीन ॥४५॥
सत्या रायप्रबीन जुत, सुरत 'रु सुरतरु गेह।
इंद्रजीत तासों बँधे, 'केसवदास' हि देह ॥४६॥
नरी किंनरी आसुरी, सुरी रहति सिर नाइ।
नवरस नवधा भगति स्यों जोजति नवरँगराइ ॥४७॥

---

[३८] लाज–काज (लाला०)।
[४०] बिधि ज्यों–ता महि (बाल०)। केसव–भूपति (बाल०)।
[४२] बहिक्रम–बयक्रम (सरदार०, हरि०, दीन०)।
[४४] तानतरंग–तानै तान (याज्ञिक अ०,); नागर तान (याज्ञिक०)। रँगबलित–करचलित (बाल०)।
[४५] सोभिजै–देखिये (याज्ञिक अ०,हरि०,सरदार०, दीन०,); सोहिये (याज्ञिक०)।
[४६] हि-देह–सनेह (याज्ञिक० अ०, सरदार०)।
[४७] जोजति–राजति (हरि०, दीन०); जोजित (सरदार०)।

हाव भाव संभावना, दोला सम सुखदाय।
पियमन देति झुलाय गति, नव नव नवरँगराय।।४८।।

भैरौ-जुत गौरी-सँजुत, सुरतरंगिनी लेखि।
चंद्रकला सी सोभियै, नयनबिचित्रा देखि।।४९।।

नयन बयन रतिसयन सम, नयनबिचित्रा नाम।
जयनसील पति मयन मन, सदा करति बिस्राम।।५०।।

नागरि सागर राग की, सागर तानतरंग।
पति पूरन ससि दरस दिन, बाढ़त तान तरंग।।५१।।

तानैं तानतरंग की, तनु तनु बेधति प्रान।
कला कुसुमसर-सरनि की अति अयान तनत्रान।।५२।।

रंगराय कर अंगुली सकल गुननि की मूरि।
लागत मूढ़ मृदंग मुख, सब्द रहत भरपूरि।।५३।।

रंगराय कर, मुरजमुख, रँगमूरति पद चारु।
मनो पढ़्यो है साथ ही, सब संगीत बिचारु।।५४।।

अंग जिते संगीत के गावत गुनी अनंत।
रँगमूरति अँग अंग प्रति, राजत मूरतिवंत।।५५।।

नाचति गावति पढ़ति सब, सबै बजावति बीन।
तिनमें करति कबित्त इक, रायप्रबीन प्रबीन।।५६।।

रायप्रबीन प्रबीन सों, परबीनन मन सुख्ख।
अपरबीन 'केसव' कहा, पर-बीननि मन दुख्ख।।५७।।

रतनाकर लालित सदा, परमानंदहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि रायप्रबीन।।५८।।

रायप्रबीन कि सारदा, सुचि रुचि रंजित अंग।
बीना-पुस्तक-धारिनी, राजहंस-सुत संग।।५९।।

वृषभवाहिनी अंग उर, बासुकि लसत प्रबीन।
सिव-सँग सोहै सर्वदा, सिवा कि रायप्रबीन।।६०।।

---

[४८] नवनव—नवरंग (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[४९] संजुत—सहित (बाल०); गौरीसयुत (सरदार०)।
[५०] सम—रति (बाल०)।
[५१] सागर तान०—सोहत तान० (दीन०)।
[५२] तनु तनु—तनु मनु (बाल०)। अयान—आघात (बाल०)।
[५३] मूढ़—मूक (दीन०)। मुख—सुख (दीन०)।
[५४] पढ़्यो है—सीख्यो (याज्ञिक अ०)।

सविता जू कबिता दई, ताकहँ परम प्रकास।
ताके काज कविप्रिया, किन्हीं केसवदास ॥६१॥

इति श्रीमत्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां राजवंश-
वर्णनं नाम प्रथमः प्रभावः ॥१॥

—— —

२

अथ कविवंश-वर्णन—(दोहा)

ब्रह्माजू के बिनय तें प्रगट भए सनकादि।
उपजे तिनके चित्त तें सकल सनावढ़ आदि ॥१॥
परसुराम भृगुनंद तब तिनके पायँ पखारि।
दए बहत्तर ग्राम तिन उत्तम बिप्र बिचारि ॥२॥
जगपावन बैकुंठपति रामचंद्र इहि नाम।
मथुरा-मंडल में दए तिन्हैं सात सै ग्राम ॥३॥
सोमबंस जदुकुलकलस त्रिभुवनपाल नरेस।
फेरि दए कलिकाल पुर तेई तिनहि सुदेस ॥४॥
कुंभवार उद्देसकुल प्रगटे तिनकें बंस।
तिनकें देवानंद सुत उपजे कुल-अवतंस ॥५॥
तिनकें सुत जयदेव जग थापे पृथवीराज।
तिनकें दिनकर सुकुलसुत प्रगटे पंडितराज ॥६॥
दिल्लीपति अल्लावदीं कीनी कृपा अपार।
तीरथ गया समेत जिन अकर करे बहु बार ॥७॥
गया गजाधर सुत भए तिनकें आनंदकंद।
जयानंद तिनकें भए बिद्याजुत जगबंद ॥८॥

---

[६१] ताकहँ—ताको (बाल०)।
[१] बिनय—चिह्न (हरि०, सरदार०, दीन०)। सकल०—सब सनौढ़िया (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[३] इहि—जिहि (याज्ञिक०)।
[७] बहु बार—कै बार (सरदार०)।
[८] गया—गयो (बाल०) गजाधर—गदाधर (हरि०, सरदार०, दीन०)।

भए त्रिबिक्रम मिश्र तब तिनकें पंडितराय।
गोपाचलगढ़ दुर्गपति तिनके पूजे पाय ॥९॥
भाव सर्म तिनकें भए तिनकें बुद्धि अपार।
भए सुरोत्तम मिश्र तब षट-दरसन-अवतार ॥१०॥
मानसिंघ सों रोष करि जिन जीती दिसि चारि।
ग्राम बीस तिनकौं दए राना पायँ पखारि ॥११॥
तिनकें पुत्र प्रसिद्ध जग कीने हरि हरिनाथ।
तोंवरपति तजि और सों भूलि न ओड़्यो हाथ ॥१२॥
पुत्र भए हरिनाथ कें कृस्नदत्त सुभ वेष।
सभा साहि संग्राम की जीते गढ़ा असेष ॥१३॥
तिनकौं बृत्ति पुरान की दीनी राजा रुद्र।
तिनके कासीनाथ सुत सोभे बुद्धिसमुद्र ॥१४॥
जिनको मधुकरसाह नृप बहुत करयो सनमान।
तिनकें सुत बलभद्र सुभ प्रगटे बुद्धिनिधान ॥१५॥
बालक तें मधुसाहि नृप जिनपै सुन्यो पुरान।
तिनकें सोदर द्वय भए 'केसवदास' कल्यान ॥१६॥
भाषा बोलि न जानई जिनके कुल को दास।
भाषा-कबि भो मंदमति तिहि कुल 'केसवदास' ॥१७॥
इंद्रजीत तासों कह्यो माँगन माँझ प्रयाग।
माँग्यो सब दिन एकरस कीजै कृपा सभाग ॥१८॥
यों ही कह्यो जु बीरबर माँगि जु मन में होइ।
माँग्यो तब दरबार में मोहि न रोकै कोइ ॥१९॥
गुरु करि मान्यो इंद्रजित तन मन कृपा बिचारि।
ग्राम दए इकबीस तब ताके पायँ पखारि ॥२०॥

[९] तिनके–जिनके (बाल०)।
[१०] तिनके–जिनके (दीन०); जिनमें (याज्ञिक०)। सुरोत्तम–सिरोमनि (याज्ञिक ग्र०, हरि०, सरदार०, दीन०)।
[११] बीस–बीस (बाल०)।
[१२] ओड़्यो–वोरयो (बाल०)।
[१५] बलभद्र सुभ–पूरन सुमति (याज्ञिक०); बलिभद्र बुध (याज्ञिक० ग्र०)।
[१६] बालक तें–बालहि तें (हरि०, दीन०)। सुन्यो–सुनै (हरि०, दीन०)।
[१८] तासों–जासौं (बाल०)। माँझ-मध्य (याज्ञिक० हरि०, सरदार०, दीन०); मद्धि (याज्ञिक ग्र०)। कीजै०–कृपा करौ बड़भाग (बाल०)।
[१९] जु–सु (बाल०)

इंद्रजीत के हेत तब राजा राम सुजान।
मान्यो मंत्री मित्र कै 'केसवदास' प्रमान ॥२१॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां कविवंश-
वर्णनं नाम द्वितीयः प्रभावः ॥२॥

३

(दोहा)

समझैं बाला बालकनि बरनन पंथ अगाध।
कबिप्रिया 'केसव' करी, छमिजौ बुध अपराध ॥१॥
अलंकार कवितानि को सुनि सुनि बिबिध बिचार।
कबिप्रिया 'केसव' करी कबिता को सिंगार ॥२॥
सगुन पदारथ अर्थजुत, सुबरनमय सुभ साज।
कंठमाल ज्यों कबिप्रिया, कंठ करहु कबिराज ॥३॥
राजत रंच न दोषजुत कबिता बनिता मित्र।
बुंदक हाला होत ज्यों गंगाघट अपवित्र ॥४॥
बिप्र न नेगी कीजियै मूढ़ न कीजै मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइयै दूषनसहित कबित्त ॥५॥

अथ सदोष कबित्त–(दोहा)

अंध बधिर अरु पंगु तजि नग्न मृतक मतिसुद्ध।
अंध बिरोधी पंथ को, बधिर ति सबदबिरुद्ध ॥६॥
छंदबिरोधी पंगु गनि, नग्न जु भूषनहीन।
मृतक कहावै अर्थ बिनु, 'केसव' सुनहु प्रबीन ॥७॥

---

[२०] इकबीस–इकईस (बाल०), इकतीस (याज्ञिक०)।
[२१] तब–फुनि (याज्ञिक०); पुनि (हरि०, दीन०)।
[१] छमिजौ०–छमियो कबि (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन); छमियो सब (याज्ञिक०)।
[२] कबितानि–करतानि (बाल०)।
[३] इसके बाद हरि० और दीन० में यह दोहा अधिक है—
चरन धरत चिंता करत, नींद न भावत सोर।
सुबरन कौं सोधत फिरत, कबि व्यभिचारी चोर॥
[४] होत–परत (हरि०, दीन०)।
[५] कीजियै–कीजई (बाल०)। [७] कहावै–कहावत (बाल०)।

अथ पंथविरोधी अंध-वर्णन—(सवैया)

कोमल कंज से फूलि रहे कुच देखतहीं पति चंद बिमोहै।
बानर से चल चारु बिलोचन कोए रचे रुचि रोचन को है।
माखन सो मधुरो अधरामृत 'केसव' को उपमा कह टोहै।
ठाढ़ी यों कामिनि दामिनि सी मृगभामिनि सी गजगामिनि सोहै ।।८।।

अथ शब्दविरोधी-छंदविरोधी बधिर-पंगु-वर्णन—(सवैया)

सिद्ध सिरोमनि संकर सृष्टि सँघारत साधु समूह भरी है।
सुंदर मूरति आतमभूत की जारि घरीक में छार करी है।
सुभ्र बिरूप त्रिलोचन सों मति 'केसवदास' की ध्यान अरी है।
वंदत देव अदेव सबै मुनि गोत्रसुता अरधंग धरी है ।।९।।

(दोहा)

तौलत तुल्य रहै न ज्यों कनक तुलित तिल आधु।
त्यौं ही छंदोभंग कों सहि न सकत स्रुति साधु ।।१०।।

अथ अलंकारहीन नग्न-वर्णन—(सवैया)

धीरज मोचन लोचन लोल बिलोकि कै लोक की लीकति छूटी।
फूटि गए स्रुति ज्ञान के 'केसव' आँखि अनेक बिबेक की फूटी।
छोड़ि दई सरता सब काम मनोरथ के रथ की गति खूटी।
त्यों न करै करतारउ बारक ज्यों चितयो इहिं बारबधूटी ।।११।।

अथ रसहीन नग्न-वर्णन—(सवैया)

तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौंगी।
पान खवाय सुधाधर पान कै पायँ गहे तैसें हौं न गहौंगी।
'केसव' चूक सबै सहिहौं मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी।
कै फिर चूमन दै मुख मोहिं कि आपनि धाइ सों जाइ कहौंगी ।।१२।।

अथ अर्थहीन मृतक-वर्णन—(सवैया)

कील कमाल कलाल करालनि साल बिसालनि चाल चली है।
हाल बिहालनि ताल तमाल प्रबाल कबाल कलाल लली है।

---

[८] ठाढ़ी यों–ठाढ़ी है (बाल०)।
[९] सुंदर–उत्तम (बाल०)। गोत्र–गोत (बाल०)।
[१०] तुलित–तुला (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)।
सहि–सुनि (हरि० दीन०)।
[११] फूटि–मूलि (बाल०)। छोड़ि दई–दूरि करी (बाल०)।
[१२] सबै सहिहौं–सहीं बहुतैं (बाल०); सही सबही (याज्ञिक ग्र०)।

लोल बिलोल कलोल अलोल कबोल कमोल कलोल कली है।
बोलन बाल कपोलनि टोलनि गोलकि गोल निगोल गली है॥१३॥

अथ दूषण-वर्णन—(दोहा)

अगन न कीजै हीनरस, अरु 'केसव' जतिभंग।
ब्यर्थ अपारथ हीनक्रम, कबिकुल तजहु प्रसंग॥१४॥
वर्नप्रयोग न कर्नकटु सुनहु सकल कबिराज।
सबै अर्थ पुनरुक्ति के छाड़हु सिगरे साज॥१५॥
देसबिरोध न बरनियै, कालबिरोध निहारि।
लोक न्याय आगमन के, तजो बिरोध बिचारि॥१६॥

अथ गणागण-वर्णन—(दोहा)

'केसव' गन सुभ सर्वदा, अगन असुभ उर आनि।
चारि चारि बिधि चारु मति, गन अरु अगन बखानि॥१७॥
मगन नगन भनि भगन अरु यगन सदा सुभ जानि।
जगन रगन अरु सगन पुनि तगनहि असुभ बखानि॥१८॥
मगन त्रिगुरुजुत त्रिलघुमय 'केसव' नगन प्रमान।
भगन आदिगुरु आदिलघु यगनहि भनत सुजान॥१९॥
जगन मध्यगुरु जानियै, रगन मध्यलघु होइ।
सगन अंतगुरु, अंतलघु तगन कहै सब कोइ॥२०॥
आठौ गन की देवता, अरु गुन-दोष-विचार।
छंदोग्रंथनि में कह्यो, तिनको बहु बिस्तार॥२१॥

अथ गणागणदेवता-वर्णन—(दोहा)

मही देवता मगन की, नाग नगन को देखि।
जल जिय जानहु यगन को, चंद भगन को लेखि॥२२॥
सूरज जानहु जगन को, रगन सिखीमय मानु।
काल समुझियै सगन को, तगन अकास बखानु॥२३॥

अथ गणागणजाति-वर्णन—(दोहा)

मगन नगन को मित्र गन, भगन यगन भनि दास।
उदासीन ज त जानियै, र स रिपु 'केसवदास'॥२४॥

---

[१५] सबै—जिते (बाल०)।
[१९] भनत—बखान (याज्ञिक०, याज्ञिक भ्र०, हरि०, सरदार०, दीन०)।
[२१] यह दोहा बाल० में नहीं है।
[२३] काल—वायु (हरि०, दीन०)।

अथ गणागण-फलाफल--(छप्पै)

भूमि भूरि सुख देइ, नीर नित आनँदकारी।
आगि अंग दिन दहै, सूर सुख सोखै भारी।
'केसव' अफल अकास, काल किल देस उदासै।
मंगल चंद अनेक, नाग बहु बुद्धि प्रकासै।
इहि बिधि कबित्त सब जानियै, करता अरु जाकौं करै।
तजि कै प्रबंध अरु देव, गन सदा सुभासुभ फल करै ॥२५॥

अथ द्विगण-विचार--(दोहा)

जौ कहुँ आदि कबित्त की, अगन होइ बड़भाग।
तातें द्विगुन-बिचार चित्त कीनो बासुकि नाग ॥२६॥

(कबित्त)

मित्र तें जु होइ मित्र बाढ़ै बहु बुद्धि रिद्धि,
मित्र तें जु दास त्रास जुद्ध तें न जानियै।
मित्र तें उदास गन होत गोत दोष उदौ,
मित्र तें जु सत्र होइ मित्रबंधु हानियै।
दास तें जु मित्रगन काजसिद्धि 'केसोदास',
दास तें जु दास सब जीव बस मानियै।
दास तें उदास होत धननास आसपास,
दास तें जु सत्रु मित्र दास सो बखानियै ॥२७॥

जानियै उदास तें जु मित्रगन तुच्छ फल,
प्रगट उदास तें जु दास प्रभुताइयै।
होइ जौ उदास तें उदास तौ न फलाफल,
जौ उदास ही तें सत्रु तौ न सुखु पाइयै।
सत्रु तें जु मित्रगन ताहि तौ अफल गन,
सत्रु तें जु दास आसु बनिता नसाइयै।
सत्रु तें उदास कुलनास होत 'केसोदास',
सत्रु तें जु सत्रु नास नायक को गाइयै ॥२८॥

अथ गणागण को उदाहरण--(दोहा)

राधा राधारमन कें, मन पठयो है साथ।
उद्धव तुम ह्यां कौन सों, कही जोगी की गाथ ॥२९॥

---

[२५] काल--वायु (हरि०, दीन०)। जाकौं--जा हित (दीन०)। देव--दोष (दीन०)।

[२७] बुद्धि रिद्धि--रिद्धि सिद्धि (दीन०)। दोष उदौ--दुःख देत (दीन०)। बस मानियै--सनमानियै (बाल०)। दास सो--सत्रु सो (दीन०)।

कहौ कहाँ तुम पाहुने, प्राननाथ के मित्त।
फिरि पीछे पछिताहुगे, ऊधो समुझौ चित्त ॥३०॥
दोहा दुहूँ उदाहरन, आठौ आठ्यौ पाइ।
'केसव' गन अरु अगन के, समुझौ बुद्धि सुभाइ ॥३१॥

अथ गुरुलघु-भेद-वर्णन–(दोहा)

संजोगी की आदि जुतबिंदु जु दीरघ होइ।
सोई गुरु, लघु और सब कहत सयाने लोइ ॥३२॥
दीरघ हूँ लघु करि पढ़ै, सुख ही मुख जिहि ठौर।
सोई लघु करि लेखिये, कहत रसिक-सिरमौर ॥३३॥

(सवैया)

पहिलैं सुख दै सब ही को सखी उत ही हठि कै जु हरी मति मीठी।
दूजे लै जीवनमूरि अक्रूर गयो अँग अंग लगाइ अँगीठी।
अब धौं किहि कारन 'केसव' ये उठि धाए हैं ऊधव झूठी बसीठी।
माथुर लोगनि के सँग की वह बैठक तोहि अजौं न उबीठी ॥३४॥

(दोहा)

सँजोगी की आदि को कबहुँक बरन बिचारु।
'केसवदास' प्रकास-बस, लघु करि ताहि निहारु ॥३५॥
अमल जुन्हाई चंदमुखि ठाढ़ी भई अन्हाइ।
सौतिन के मुख-कमल ज्यों देखि गए कुम्हिलाइ ॥३६॥

अथ हीनरस-वर्णन–(दोहा)

बरनत 'केसवदास' रस, जहाँ बिरस ह्वै जाइ।
ता कबित्त सों हीनरस, कहत सकल कबिराइ ॥३७॥

(सवैया)

दै दधि, दीनो उधार हो 'केसव', दान कहा अरु मोल लै खैहैं।
दीने बिना तौ गईं जु गईं, हौं गईं न गईं घर ही फिर जैहैं।

[३१] बुद्धि सुभाइ–सब कबिराइ (बाल०)।
[३३] कहत०–केसव कबि (याज्ञिक०, सरदार०, दीन०)।
[३४] हठि कै–हितु कै (याज्ञिक०,याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०)। दूजै लै-दूसरो (बाल०)। अक्रूर–लै कूर (बाल०)।
[३५] कबहुँक–गुरुबरन बिषै ही जान। और रीति गणना बिषै (याज्ञिक०)। कुबरन-कुबस्तु (बाल०)। निहारु–बखान (याज्ञिक०),
[३६] कुम्हिलाइ–मुरझाइ (याज्ञिक अ०, दीन०)।
[३७] बरनत–उपजत (बाल०)।

गो हितु बैरु कियो, कब हो हित बैरु कियें बरु नीके ह्वै रैहैं।
बैरु कै गोरस बेंचहुगी, अहो बेच्यो न बेच्यो तौ ढारि न देहैं ॥३८॥

अथ यतिभंग-वर्णन–(दोहा)

और चरन के बरन जहँ, और चरन सों लीन।
सो यतिभंग कबित्त कहि 'केसव' कहत प्रबीन ॥३९॥
हरि हरि 'केसव' मदन मोहन घनस्याम सुजान।
यों ब्रजबासी द्वारिकानाथ रटत दिन मान ॥४०॥

अथ विरोध-वर्णन–(दोहा)

एक कबित्त प्रबंध में, अर्थबिरोध जु होइ।
पूरब पर अनमिल सदा, व्यर्थ कहैं सब कोइ ॥४१॥

(मरहठा)

सब सत्रु सँघारहु जी जिनि मारहु सजि जोधा उमराउ।
बहु बसुमति लोजै, मोमत कीजै, दीजै आपन दाउ।
कोउ न रिपु तेरो सब जग हेरो तुम कहियत अतिसाधु।
कछु देहु मँगावहु भूख भगावहु हौं पुनि धनी अगाधु ॥४२॥

अथ अपार्थ-लक्षण–(दोहा)

अर्थ न जाको समुझियै, ताहि अपारथ जानि।
मतवारे उनमत्त ज्यों सिसु के बचन बखानि ॥४३॥
पिये लेत नरसिंधु को हो अति सज्वर देह।
ऐरावत हरि भाउतो, देखौ गरजत मेह ॥४४॥

अथ क्रमहीन-लक्षण–(दोहा)

क्रम ही गुननि बखानि कै गुनी गनै क्रमहीन।
सो कहिजै क्रमहीन कवि, 'केसवदास' प्रबीन ॥४५॥

(तोटक)

जग की रचना कहि कौन करी।
किहि पारन कौं जिय पैज धरी।
अति कोपि कै कौन सँघार करै।
हरि जू हर जू बिधि बुद्धि ररै ॥४६॥

---

[४१] कहैं०–कहावै सोइ (याज्ञिक०)। कहैं सयाने लोइ (बाल०)।
[४२] जिनि मारहु–जीवन मारहु (हरि०, दीन०)। दीजै–लीजै (सरदार०, दीन०)।
पुनि–तुम (दीन०)। धनी–धर्म (सरदार०)।
[४५] कवि–जग (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)।
[४६] पारन कौं–राखन की (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार० दीन०)।

अथ कर्णकटु-लक्षण–(दोहा)

कहत न नाको लागई, सो कहिजै कटुकनु ।
'केसवदास' कबित्त में, भूलि न ताको बनु ॥४७॥
बारनु बन्यो बनाउ तन, सुबरन बली बिसालु ।
चढ़िजै राज मँगाइ कै, मानो राजत कालु ॥४८॥

अथ पुनरुक्त-लक्षण–(दोहा)

एक बार कहिजो कछू, बहुरि जु कहिजतु सोइ ।
अर्थं होइ कै सब्द पुनि, सुनि पुनरुक्त सु होइ ॥४९॥

(सोरठा)

मघवा घन आरूढ़, इंद्र आजु अति सोभिजै ।
ब्रज पर कोप्यो मूढ़, मेघ दसौ दिसि देखियै ॥५०॥

(दोहा)

दोष नहीं पुनरुक्ति को, एक कहैं कबिराज ।
छाँडि अर्थ पुनरुक्ति को, सब्द कहौ इहि साज ॥५१॥
लोचन पैने सरनि तें, है कछु तो कहँ सुद्धि ।
तन बेध्यो, मनु बेधियो, बेधी मन की बुद्धि ॥५२॥

अथ देशविरोध-वर्णन–(दोहा)

मलयानिल मन हरत हठि, सुखद नर्मदाकूल ।
सुबन सघन घनसारमय, तरवर तरल सफूल ॥५३॥
मरुत देस मोहन महा, देखहु सकल सभाग ।
अमल कमल-कुल-कलित जहँ, पूरन सलिल तड़ाग ॥५४॥

अथ कालविरोध–वर्णन–(दोहा)

प्रफुलित नव नीरज रजनि, बासर कुमुद बिसाल ।
कोकिल सरद, मयूर मधु, बरषा मुदित मराल ॥५५॥

अथ निगमविरोध-वर्णन–(दोहा)

स्थाई बीर सिंगार के, करुना घृना प्रमान ।
तारा अरु मंदोदरी, कहत सतीनि समान ॥५६॥

---

[५२] सुद्धि–लाज (बाल०) । बुद्धि–काज (बाल०) ।
[५४] मरुत देस–मरू सुदेस (हरि०, सरदार०, दीन०) ।
[५५] बिसाल–बिलास (बाल०) ।

अथ न्याय-आगम-विरोध-वर्णन—(दोहा)

पूजिय तीन्यौं बरन जहँ करि बिप्रनि सों भेद।
पुनि लीबो उपबीत हम, सुनि लीजै सब बेदु ॥५७॥
इहि बिधि औरहु जानिजहु, कबिकुल सकल बिरोध।
'केसव' जे हे कछुक ह्यां, मूढ़नि के अबिरोध ॥५८॥
'केसव' नीरस बिरस अरु, दुस्संधान बिधानु।
पात्र जु दुष्टादिकन को, रसिकप्रिया तें जानु ॥५९॥

इति श्रीमत्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
कवित्तदूषणवर्णनं नाम तृतीयः प्रभावः ॥३॥

४

अथ कविभेद-वर्णन—(दोहा)

'केसव' तीनिहु लोक में, त्रिबिध कबिनि के तात।
मति पुनि तीनि प्रकार की बरनत मति-अवदात ॥१॥
उत्तम मध्यम अधम कबि, उत्तम हरि-रस-लीन।
मध्यम मानत मानसनि, दोषनि अधम प्रबीन ॥२॥

(सवैया)

हैं अति उत्तम ते पुरुषारथ जे परमारथ के पथ सोहैं।
'केसवदास' अनुत्तम ते नर संतत स्वारथ-संजुत जो हैं।
स्वारथ हू परमारथ भोगनि मध्यम लोगनि के मन मोहैं।
भारथ पारथमीत कह्यो परमारथ-स्वारथ-हीन ते को हैं ॥३॥

अथ कविरीति-वर्णन—(दोहा)

साँची बात न बरनहीं, झूठी बरनन बानि।
एकनि बरनत नियम करि, कबि-मत बिबिध बखानि ॥४॥

---

[५७] जहँ-जग (दीन०); वर (सरदार०)। सुनि—पढ़ि (वही)।
[५८] जे हे०—कहे कछूक अब (हरि०, दीन०)। अविरोध—अनुरोध (हरि०)।
[५९] दुष्टादिकन—दुष्टाकबिनि (बाल०)।
[१] तात—राय (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। मति—अवदात—सब सुखदाय (वही)।
[२] मानसनि—मानुषनि (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[४] बिबिध—त्रिबिध (हरि०, सरदार०, दीन०)।

अथ सत्य बात को वर्णन-(दोहा)

'केसवदास' प्रकास सब चंदन के फल फूल।
कृस्न पक्ष की जोन्ह ज्यों, सुक्ल पक्ष तम तूव ॥५॥

अथ मिथ्या बात को वर्णन-(दोहा)

जहँ जहँ बरनत सिंधु कों, तहँ तहँ रतननि लेखि।
सूछम सरवर हू कहत 'केसव' हंस बिसेषि ॥६॥
लेन कहैं भरि मूठि तम, सूजिनि सियनि बनाइ।
अंजलि भरि पीवन कहैं चंद्र-चंद्रिका पाइ ॥७॥
सब के कहत उदाहरन बाढ़ै ग्रंथ अपार।
कहूँ कहूँ ताते कह्यो, कबिकुल चतुर विचार ॥८॥

अथ तम को उदाहरण-(कवित्त)

कंटक न अटकतु फाटै न चरन चँपि,
बात तें न जात उड़ि आँगु न उघारियै।
नेक ही न भीजत मुसलधार बरसत,
कीच न रुचत रंच चित्त में बिचारियै।
'केसोदास' सावकास परम प्रकास सों,
उसारियै पसारियै न पिय पै बिसारियै।
चलियै जू ओढ़ि पट तम ही को गाढ़ो तम,
पातरो पिछौरा सेत पाट को उतारियै ॥९॥

अथ चंद्रिका को उदाहरण-(कवित्त)

भूषन सकल घनसार ही के घनस्याम,
कुसुम-कलित केस रही छबि छाई सी।

---

[५] सब-बहु (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[६] कों-सब (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। कहत-कहँ (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)
[७] सूज़िनि०-सुजनी सियत (याज्ञिक०)।
[८] सब के-केसव (बाल०)। चतुर-लेहु (याज्ञिक०)।
[९] अटकत-अटकै न (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। आँगु-अंग (हरि०, सरदार०, दीन०)। रुचत-रचत (याज्ञिक०, हरि०, सरदार० दीन०)। प्रकास सो-प्रकासन (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। गाढ़ो तम-गाढ़ो तन (याज्ञिक० हरि०, सरदार०, दीन०)।

मोतिनि की सरि सिर कंठ कंठमाल हार,
और रूप जोति जात हेरत हिराई सी।
चंदन चढ़ाइ चारु सुंदर सरीर सब,
राखी सुभ्र सोभा सुनि बसन बसाई सी।
सारदा सी देखियत देखौ जाइ 'केसोराइ,'
ठाढ़ी वह कुँवरि जुन्हाई में अन्हाई सी ॥१०॥

अथ कविनियम-वर्णन-(दोहा)

बरनत चंदन मलय ही, हिमगिरि ही भुजपात ।
बरनत देवनि चरन तें, सिर तें मानुष-गात ॥११॥
अति लज्जाजुत कुलबधू गनिका गनि निर्लज्ज ।
कुलटनि सों कोबिद कहत, अंग सलज्ज अलज्ज ॥१२॥
बरनत नारिनि नरनि तें, लाज चौगुनी चित्त ।
भूख द्विगुन साहस छगुन, काम अठगुनै मित्त ॥१३॥
कोकिल को कल बोलिबो, बरनत हैं मधुमास ।
बरषा ही हरषित कहैं, केकी 'केसवदास' ॥१४॥
दनुजन सों दितिसुतन सों, असुरै कहत बखानि ।
ईस-सीस ससि बृद्ध की, बरनत बालक-बानि ॥१५॥
सहज सिंगारत सुंदरी, जदपि सिंगार अपार ।
तदपि बखानत सकल कवि, सोरहई सिंगार ॥१६॥

(कवित्त)

प्रथम सकल सुचि, मज्जन, अमल बास,
जावक, सुदेस केसपास को सुधारिबो ।
अंगराग, भूषन बिबिध, मुखबास राग,
कज्जल-कलित लोल लोचन निहारिबो ।
बोलनि हँसनि मृदु चातुरी चलनि चारु,
पल पल प्रति पतिब्रत प्रतिपारिबो ।
'केसोदास' सबिलास करहु कुँवरि राधे,
यहि विधि सोरहू सिंगारनि सिगारिबो ॥१७॥

[१०] और-वाकी (दीन०)। सुनि-सब (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)।
[१४] बोलिबो-कुजिबो (याज्ञिक०)। कहैं-सही (बाल०)।
[१५] बृद्ध-वृद्धि (हरि०, दीन०)।
[१७] मृदु-चित्त (याज्ञिक०, हरि०, हीन०)। प्रति पतिब्रत–पतिब्रत प्रीति (सरदार०)।

(दोहा)

कुलटा को पति प्रेमबस बारबधुनि कें जानु।
जाहि दई पितु मातु सो कुलजा को पति मानु ॥१८॥
महापुरुष को प्रगट ही, बरनत बृषभ समान।
दीप, थंभ, गिरि, गज, कलस, सागर, सिंघ प्रमान ॥१९॥

(कवित्त)

गुनमनि बैरागर, धीरज को सागर,
उजागर धवल धरि धर्मधुर धाए जू।
खलतरु तोरिबे कौं राजै गजराज सम,
अरि गजराजनि कौं सिंह सम गाए जू।
बामनि कौं बामदेउ, कामिनि कौं बामदेउ,
रन-जयथंभु रामदेउ मन भाए जू।
कासीस-कुल-कलस, जंबूदीप-दीप 'केसो-
दास' को कलपतरु इंद्रजीत आए जू ॥२०॥

(दोहा)

बृषभ कंध सुर मेघ-सम भुज धुज अहि परिमान।
उर सम सिला कपाट अँग, और त्रियानि समान ॥२१॥

(कवित्त)

मेघ ज्यों गँभीर बानी सुनत सखा सिखीनि,
सुख अरि उर के जगसे ज्यों जरत हैं।
जाके भुजदंड भुवलोक में अभय धुज,
देखि देखि दुज्जन भुजंग ज्यों डरत हैं।
तोरिबै कौं गढ़तरु होत हैं सिला सुरूप,
राखिये कौं द्वारनि किंवार ज्यों अरत हैं।
भूतल कौं इंद्र इंद्रजीत राजै जुग जुग
'केसोदास' जाकें राज राज सो करत हैं ॥२२॥

इति श्रीमत्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां कविव्यवस्था वर्णनं नाम चतुर्थः प्रभावः ॥४॥

---

[१८] बारबधुनि कें—बारबधूधन (सरदार०)। जानु-दान (हरि०)।
यह दोहा याज्ञिक और दीन० में नहीं है।
[१९] प्रमान—सुजान (बाल०) सिंघ—सील (याज्ञिक०)।
[२१] समान—प्रमान (बाल०)।

५

अथ कविता-अलंकार-वर्णन-(दोहा)

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुबृत्त।
भूषन बिनु न बिराजहीं, कविता बनिता मित्त ॥१॥
कबिनि कहे कबितानि के, अलंकार द्वै रूप।
एक कहैं साधारनै, एक बिसिष्ठ सरूप ॥२॥

अथ सामान्यालंकार-(दोहा)

सामान्यालंकार को चारि प्रकार प्रकास।
बर्न बर्न्य भू-राज-श्री, भूषन 'केसवदास' ॥३॥
स्वेत पीत कारे अरुन धूमर नीले बर्न।

अथ वर्णालंकार-(दोहा)

स्वेत पीत कारे अरुन, धूमर नीले बर्न।
मिश्रित 'केसवदास' कहि, सात भाँति सुभकर्न ॥४॥

अथ श्वेतवर्णन-(दोहा)

कीरति, हरिहय, सरद घन, जोन्ह, जरा, मंदार।
हरि, हर, हरगिरि, सूर, ससि, सुधा, सौध, घनसार ॥५॥
बल, बक, हीरा, केवरो, कौड़ी, करका, कास।
कुंद, काँचरी, कमल, हिम सिकता, भस्म, कपास ॥६॥
खाँड, हाड़, निर्झर, चँवर, चंदन, हंस, मुरार।
छत्र, सत्यजुग, दूध, दधि, संख, सिव, उडुमार ॥७॥
सेष, सुकृति, सुचि, सत्वगुन, संतनि के मन, हास।
सीपि, चून, भोड़र, फटिक, खटिका, फेन, प्रकास ॥८॥
सुक्र, सुदर्सन, सुरसरित, वारन बाजि समेत।
नारद, पारद, अमल जल सारदादि सब सेत ॥९॥

(कबित्त)

कीने छत्र छितिपति, 'केसोदास' गनपति,
दसन, बसन बसुमति कर्‌यो चारु है।
बिधि कियो आसन सरासन असमसर,
आसन कौं कीनो पाकसासन तुषारु है।

---

[१] सरस–बरन (बाल०)।
[७] दधि–बुधु (बाल०)

हरि करी सेज हरिप्रिया कर्‌यो नाकमोती,
हर कर्‌यो तिलक हरा हूँ कर्‌यो हारु है।
राजा दसरथसुत सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरो सुजसु सब जग को सिंगारु है ॥१०॥
देहदुति हलधर कीने निसिकर कर,
जगकर बानी वर, बिमल बिचारु है।
मुनिगन मन मानि, दुजनि जनेऊ जानि,
संख संखपानि-पानि सुखद अपारु है।
'केसोदास' सबिलास बिलसै बिलासिनीन,
सुख मुख मृदु हास, उदय उदारु है।
राजा दसरथसुत सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरो सुजसु सब जग को सिंगारु है ॥११॥
नारायन कीनी मनि उर अवदात गुनि,
कमला की बीना भनि सोभा सुभ सारु है।
'केसव' सुरभि केस, सारदा सुदेस बेस,
नारद को उपदेस, बिमल बिचारु है।
सौनक ऋषी बिसेषि सीरष सिखानि लेखि,
गंगा की तरंग देखि, बिमल बिहारु है।
राजा दसरथसुत सुनौ राजा रामचंद्र,
रावरो सुजसु सब जग को सिंगारु है ॥१२॥

(सवैया)

बिलोकि सिरोरुह सेत समेत, तनूरुह 'केसव' यों गुन गायो।
उठे किधौं आयु की औधि के अंकुर, सूल की सुख्ख समूल नसायो।
लिख्यो किधौं रूपे के पानी पराजय रूप को भूप कुरूप लिखायो।
जरा सरपंजर जीउ जर्‌यो कि जरा जर-कंबर सो पहिरायो ॥१३॥
अभिराम सचिक्कन स्याम सुगंध के धामहु तें जे सुभाइक के।
प्रतिकूल भए दृगसूल सबै किधौं साल सिंगार के घाइक के।
निज दूत अभूत जरा के किधौं अबिताली जरा जन जाइक के।
सित केस हियें इहि बेस लसे जनु साइक अंतक नाइक के ॥१४॥

---

[११] सबिलास–सो बिलसि (दीन०)। राजा रामचन्द्र–राजिवनयन राम (बाल०)।
[१२] बीना–बाणी (दीन०)। बिमल बिचारु–बिसद बिचारु (दीन०)। सिखानि-सिखीनि (बाल०)। बिमल बिहारु-बिसद बिहारु (बाल०)।
[१३] केसव–कोबिद (बाल०)। लिखायो--मजायो (याज्ञिक०)। रूपे–रूप (हरि, दीन०) जरा जरकंबर--जुरा जरकंबर (दीन०)।
[१४] अविताली–अफताली (हरि०, दीन०)। जाइक–लाइक (वही)।

लसैं सित लोम सरीर सबै कि जरा जस रूपे के पानी लिखायो।
सुरूप के देस उदास की कीलनि कीलित कै कि कुरूप नसायो।
जरैं किधौं 'केसव' व्याधिन की किधौं औधि के अंकुर अंत न पायो।
जरा सरपंजर जीव जर्‌यो कि जरा जरकंबर सो पहिरायो ॥१५॥

अथ पीत-वर्णन–(दोहा)

हरिबाहन, बिधि, हरजटा, हरी, हरद, हरतालु।
चंपक, दीपक, बीररसु, सुरगुरु, मधु, सुरपालु ॥१६॥
सुरगिरि, भू, गोरोचना, गंधक, गोधनमूत।
चक्रवाक, मनसिल, सदा द्वापर, बानरिपूत ॥१७॥
कमलकोस, केसवबसन, केसर, कनक सभाग।
सारोमुख, चपलादि सब, पीतरि पीत पराग ॥१८॥

(सवैया)

मंगल ही जु करी रजनी विधि, याही तें मंगली नाउ धर्‌यो है।
दूसरें दामिनि देह सँवारि, उड़ाइ दई घनु जाइ बर्‌यो है।
रोचन कों रचि केतकि चंपक फूलनि में अँगवास भर्‌यो है।
गौरि-करि गुराई की मैल मिलै हाटक कै करहाट कर्‌यो है ॥१९॥

अथ कृष्ण-वर्णन–(दोहा)

बिंध्य बृक्ष, आकास, असि, अर्जुन, खंजन, साँप।
नीलकंठ को कंठु, सनि, व्यास, बिसासी, पाप ॥२०॥
राकस, अगरु, लँगूरमुखु राहु, छाँह, मद, रोर।
रामचंद्र, घन, द्रौपदी, सिंधु, असुर, तम, चोर ॥२१॥
जामू, जमुना जानियै, तिल, खल, मनसिज, चीर।
भील, करी, बन, नरक, मसि, मृगमद, कज्जलनीर ॥२२॥
मधुप, निसा, सिंगाररस, काली, कृत्या, कोल।
अपजसु रीछ, कलंक, कलि, लोचन-तारे लोल ॥२३॥

---

[१५] रूपे–रूप (बाल०)। कीरति (अन्यत्र)।
कहीं कहीं यह छंद और है—
चंद्रमनि चंद्रचूड़ चारुता बिचारि चित्त चामर चाँदनी चंद्र वारि वारि डार्‌यो है।
'केसव' कुमुद कुंद कंबुकंठ कंठरव कामिनी कटाक्ष कमनीयता पसार्‌यो है।
पारद नारद मुनि सारद सरदघन घन घनसार जीति मलै मन मार्‌यो है।
ऐसो जस उज्जल जगत इंद्रजीतजू को बिसद प्रभाव बर जासों हंस हार्‌यो है।
[१८] दि सब–दिवस (हरि०, दीन०)।
[१९] दूसरें–दीपति (दीन०)। मैल मिलै करि–मैलहि लै करि (दीन०)। कै–लै (बाल०); तें (दीन०)।

मारग अगिनि, किसान नर, लोभ, छोभ, दुख, मोह।
बिरह, जसोदा, गोपिका, कोकिल, महिषी लोह ॥२४॥
कांच, कीच, कच, काम, मल केकी, काक, कुरूप।
कलह, क्षुद्र, छल आदि दै कारे कृस्न सरूप ॥२५॥

(कवित्त)

बैरिनि कें बहु भाँति देखतहीं लागि जाति,
कालिमा कमलमुख सब जग जानी है।
जतन अनेक करि जदपि जनम भरि,
धोवत हू छूटति न 'केसव' बखानी है।
निज दल जागे जोति, परदल दूनी होति,
अचला चलति यह अकह कहानी है।
पूरन प्रताप-दीप-अंजन की राजि राजै,
राजति श्रीरामचंद्र-पानि न कृपानी है ॥२६॥

अथ श्वेत-कृष्ण-मिश्रित-वर्णन–(कवित्त)

हंसनि के अवतंस रचे रंच कीच करि,
सुधा सों सुधारे मठ कांच के कलस सों।
गंगाजू के अंग-संग जमुना-तरंग बल-
देव को बदन रस्यो बारुनी के रस सों।
'केसव' कपाली-कंठ-कूल कालकूट जैसें,
अमल कमल अलि सोहै ससि सस सों।
राजा रामचंद्रजू के त्रास बस भारे भूप,
भूमि छाड़ें भागे फिरें ऐसे अपजस सों ॥२७॥

अथ आरक्त-वर्णन–(दोहा)

इंद्रगोप, खद्योत, कुज, केसरि, कुसुम बिसेषि।
'केसव' गजमुख, बिंबरबि, ताँबो, तक्षक लेखि ॥२८॥
रसना, अधर, द्रिगंत, पल, कुक्कुटसिखा समान।
मानिक सारससीस सुक, बानर-बदन प्रमान ॥२९॥

[२६] राजि राजै–राजै रज (याज्ञिक०); राजै रेख (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[२७] रस्यो–रच्यो (सरदार०, दीन०)।
[२८] केसव–मदिरा (हरि०, सरदार०, दीन०)। बिंब–बिंबि (याज्ञिक०); बिंदु (बाल०); बाल० (दीन०)

कोंकिल, चास, चकोर, पिक, पारावत नख नै ।
चिंचु चरन कलहंस के, पकी कँदूरी ऐन ॥३०॥
जपाकुसुम, दाड़िमकुसुम, किंसुक, कंज, असोक ।
पावक, पल्लव, बीटिका, रंग रुचिर सब लोक ॥३१॥
रातो चंदन, रुद्ररस, क्षत्रिय-धर्म मँजीठ ।
अरुन महावर, रुधिर, नख, गेरू, संध्या, ईठ ॥३२॥

(सवैया)

फूले पलास बिलासथली वहि 'केसवदास' हुलास न थोरे ।
सेष असेष मुखानल की जनु, ज्वाल बिसाल चली दिवि वोरे ।
किंसुकश्री सुकतुंडनि की रुचि राचै रसातल में चित चोरे ।
चिंचुनि चापि चहूँ दिसि डोलत चारु चकोर अँगारनि भोरे ॥३३॥

अथ धूम्र-वर्णन—(दोहा)

काककंठ, खर, मूषिका, ग्राह, गोध, भनि भूरि ।
करभ, कपोतनि आदि दै धूम, धूमिली धूरि ॥३४॥
राघव की चतुरंग चमू बहु धूरि उठी जल हू थल छाई ।
मानौ प्रताप-हुतासन-धूम सु 'केसवदास' अकास न माई ।
मेटि कै पंच प्रभूति किधौं विधि रेनुमई नव रीति चलाई ।
दुक्ख-निवेदन कौं भव-भार को भूमि मनौ सुरलोक सिधाई ॥३५॥

अथ नील-वर्णन—(दोहा)

दूध, बंस, कुवलय, नलिन, अनिल, ब्योम तृन बाल ।
मरकत मनि, हय सूर के, नीलबर्न सैवाल ॥३६॥

(सवैया)

कंठ दुकूल सु ओर दुहूँ दिसि यों उरमै बल कें बलदाई ।
'केसव' सूरज-अंसुनि मंडि मनौ जमुना जलधार धसाई ।
संकरसैल-सिलातलमध्य किधौं सुक की अवली फिरि आई ।
नारद-बुद्धिबिसारद-हींय किधौं तुलसीदल-माल सुहाई ॥३७॥

---

[३०] चास—चाख (दीन०); चारु (अन्यत्र)। कँदूरी—कुंदुरू (दीन०); किंदुरी (अन्यत्र)।
[३३] कहि—वहु (याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०)। वोरे—खोरे (बाल०)।
[३४] भूरि—धूरि (बाल०)। ग्राह—गृहगोधा (याज्ञिक०, हरि०, दीन०)। धूमिली-धूमरी (वही)।
[३५] बहु—बस (याज्ञिक अ०, सरदार०, हरि०); चपि (दीन०)।
[३७] दिसि—उर (याज्ञिक अ०, हरि०, दीन०)।

अथ श्वेत-कृष्ण-मिश्रित-वर्णन–(दोहा)

सिंघ कृस्न हरि सब्द गनि, चंद बिस्नु बिधु देखु।
अभ्रक धातु अकास पुनि कृस्न स्याम सिति लेखु ॥३८॥
घन कपूर घन मेघ अरु, नागराज गज सेषु।
पयोरासि कहु सिंधु सों, अरु छिति छीरहि लेखु ॥३९॥
राहु सिव सिवीजु भनि, हरि बलभद्र अनंतु।
अर्जुन कहिजौ सेत सों, अरु पारथ बलवंतु ॥४०॥
हरिगज सुरगज समुझियै, हरिगज हरिगज जानि।
कोकिल सों कलकंठ कहि, अरु कलहंस बखानि ॥४१॥
कृस्ननदीबर सब्द सों, गंगा सिंधु बखानि।
नीरद निकसे दाँत सों, अरु जु नीर को दानि ॥४२॥

अथ श्वेत-पीत-वर्णन–(दोहा)

सिव बिरंचि सों संभु भनि, रजत रजत अरु हेमु।
स्वर्न सरभ सों कहत हैं, अष्टापद करि नेम ॥४३॥
सोम स्वर्न कहि चंद, कलधौत रजत अरु हेमु।
तारकूट रूपो रुचिर, पीतरि कहि करि प्रेमु ॥४४॥

अथ श्वेत-आरक्त-वर्णन–(दोहा)

स्वेत वस्तु सुचि, अग्नि सुचि, सूर सोम हरि होइ।
पुष्कर तीरथ सों कहै, पंकज सों सब लोइ ॥४५॥
हंस हंस रवि बरनियै, अर्क फटिक रवि मानु।
अब्ज संख सरसिज दुऔ, कमल कमल जल जानु ॥४६॥

इति श्रीमत्‌बिविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
सामान्यालंकारवर्णने श्वेतादिवर्णवर्णनं
नाम पंचमः प्रभावः ॥५॥

---

[३८] कृस्न–पाख (दीन०)।
[४०] कहिजौ–कहिये (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) सेत-चेत (बाल०)।
[४१] हरिगज०–हरि हरिगज गज (याज्ञिक०, याज्ञिक प्र०, हरि०, सरदार०); फिर हरिगज गज (दीन०)।
[४४] स्वर्न–स्वर्ण (बाल०)। कहि–प्रह (दीन०)।

६

अथ वर्ण्यालंकार—(दोहा)

संपूरन, आवर्त, कहि कुटिल, त्रिकोन सुबृत्त।
तीक्षन, गुरु, कोमल, कठिन, निस्चल, चंचल चित्त ॥१॥
सुखद, दुखद, अरु मंदगति, सीतल, तप्त, सुरूप।
क्रूरस्वर, सुस्वर मधुर, अबल, बलिष्ठ अनूप ॥२॥
सत्य, झूठ, मंडल बरनि, अगति, सदागति, दानि।
अष्टाबिंस बिधि मैं कहे, बर्न्य अनेक बखानि ॥३॥

अथ संपूर्ण-वर्णन—(दोहा)

इतने संपूरन सदा बरने 'केसवदास'।
अंबुज, आनन, आरसी, संतत प्रेम प्रकास ॥४॥

(कबित्त)

हरि-कर-मंडन, सकल-दुख-खंडन,
मुकुर महिमंडल के कहत अखंडमति।
परम सुबास पुनि पीयुष-निवास, परि
पूरन प्रकास 'केसोदास' भू-आकास-गति।
बदन मदन कैसो श्रीजू के सदन जाहि,
सोदर सुभोदर दिनेसजू के मित्र अति।
सीताजू के मुख सुख सुखमा कीं उपमा कौं,
कोमल न कमल, न अमल रयनिपति ॥५॥

अथ आवर्त-वर्णन—(दोहा)

ये आवर्त बखानिजै, 'केसवदास' सुजान।
चकरी, चक्र, अलात अरु आतपत्र, खरसान ॥६॥

(कबित्त)

दुहूँ रुख मुख मानौ पलट न जानी जात,
देखि कै अलातजात जोति होति मंद लाजि।
'केसोदास' कुसल कुलाल-चक्र चक्रमन,
चातुरी चितै कै चारु आतुरी चलत भाजि।
चंदजू के चौहूँ कोद बेष परिबेष कैसो,
देखत ही रहियै न कहियै बचनु साजि।
धाप छांडि आपनिधि जानि दिसि दिसि रघु-
नाथजू के छत्र तर भ्रमत भ्रमीनि बाजि ॥७॥

[५] गति--रति (वाल०)। जाहि-जेहि (हरि०, दीन०)। मुख सुख सुखमा कीं-मुख सुखमा...कौं सखि (सरदार०; हरि०, दीन०)।

अथ कुटिल-वर्णन--(दोहा)

अलक, अलिक, भ्रू, कुंचिका, किंसुक, सुकमुख लेखि।
अहि, कटाक्ष, धनु, बीजुरी, कंकनभग्न बिसेखि॥८॥
बालचंद्रिका, बालससि, हरि नख, सूकरदंत।
कुद्दालादिक बरनियै कपटी कुटिल अनंत॥९॥

(सवैया)

भोर जगी बृषभानुसुता अलसी बिलसी निसि कुंजबिहारी।
'केसव' पोंछति अंचल-छोरनि पीक सु लीक गई मिटि कारी।
बंक लगे कुच बीच नखच्छत देखि भई दृग दूनी लजारी।
मानौ बियोग-बराह हन्यो जुग सैल की संधिनि इंगबै डारी॥१०॥

अथ त्रिकोण-वर्णन--(दोहा)

सकट, सिंघारो, बज्र, हल, हर के नैन निहारि।
'केसवदास' त्रिकोन महि, पावककुंड बिचारि॥११॥

(कवित्त)

लोचन त्रिलोचन को 'केसव' बिलोकि विधि,
पावक के कुंड सी त्रिकोन कीन्हीं धरनी।
सोधी है सुधारि पृथु परम पुनीत नृप,
करि करि पूरन दसहुँ दिस करनी।
ज्वालु सो जगतु जगु सुभग सुमेरु तामें,
जाकी जोति होति लोक लोक मन हरनी।
थिर चर जीव हव्य होमिजत जुग जुग,
होता होत काल न जुगति जात बरनी॥१२॥

अथ सुवृत्त-वर्णन--(दोहा)

बृत्त बेल मनि गुच्छ अरु, ककुद, साधु के अंग।
कुंभिकंभ, कुच, अंड मनि, कंदुक, कलस सुरंग॥१३॥

(कबित्त)

परम प्रवीन अति कोमल कृपालु तेरे,
उर तें उदित नित चित हितकारी है।
'केसोराइ' की सौं अति सुंदर उदार सुभ,
सलज सुसील बिधि सूरति सुधारी है।
काहू सौं न जानें हँसि बोलि न बिलोकि जानें,
कंचुकी सहित साधु सूधी बैसवारी है।
ऐसे हौं कुचनि सकुचति न सकति बूझि,
हरि-हिय-हरनि प्रकृति कौनै पारी है॥१४॥

[१०] छोरनि--झोरनि (याज्ञिक०, याज्ञिक०, ब्र०, हरि०, सरदार०, दीन०)।

अथ तीक्ष्ण-गुरु-वर्णन—(दोहा)

नख, कटाक्ष, सर, दुर्वचन, सेलादिक खर जानि।
कच, नितंब, गुन, लाज, मति, रति, अति गुरु करि मानि ॥१५॥

(कवित्त)

सैंहथी हथ्यार अैन अन्यारे, अनेक काम-
सर हू तें खरे खल-बचन बिसेषि
चोट न बचति ओट कीने हूँ कपाट कोट,
भौन भौंहरे हू भारे भय अवरेखिये।
'केसोदास' मंत्र, गद, जंत्रऊ न प्रतिपक्ष,
रक्षै लक्ष लक्ष बज्र रक्षक न लेखिये।
भेदियत मर्म, बर्म ऊपर कसेई रहैं,
पीर घनी घाइलनि घाइ पै न देखिये ॥१६॥

(सवैया)

पहिले तजि आरस आरसी देखि घरीक घसे घनसारहि लै।
पुनि पौंछि गुलाब तिलौंछि फुलेल अँगौछे में आछे अँगौछनि कै।
कहि 'केसव' मेद जुबादि सों माँजि इते पर आंजे मैं आँजन दै।
बहुरयौ दुरि देखौं तौ देखि सखी मरे लाज तौ लोचन लागिय है ॥१७॥

अथ कोमल-वर्णन—(दोहा)

पल्लव, कुसुम, दयालुमन, माखन, मृदुल मुरारि।
पाट, पामरी, जीभ, पद, प्रेम, सुपुन्य बिचारि ॥१८॥

(कवित्त)

मैन ऐसो मन मृदु, मृदुल मृनालिका के
सूत कैसे सुर धुनि मननि हरति है।
दारयो कैसे बीज दंत, पात से अरुन ओंठ,
'केसोदास' देखि द्दग आनँद भरति है।
एरी मेरी तेरी मोहिं भावति भलाई तातें,
बूझति हौं तोहि और बूझति डरति है।
माखन सी जीभ, मुख कंज सो कोंवरो, कहि,
काठ सी कठेठी बात कैसें निकरति है ॥१९॥

---

[१६] अैन—हू ते अति (दीन०)। अन्यारे अनेक—अनियारे (दीन०)। भेदियत—भेदत हैं (दीन०)।

[१७] 'कहि' बाल० और याज्ञिक प्र० में नहीं है। देखि सखी मेरे—देखौं कहा सखि (दीन०, हरि०, सरदार०)।

[१८] मृदुल—मैन (दीन०)।

[१९] कैसे—ऐसी (दीन०)। मेरी—बीर (दीन०)। कहि—तासौं (दीन०)।

अथ कठोर-वर्णन—(दोहा)

कुच कठोर भुजमूल मनि बरनि बज्र कहि मित्त।
धातु, हाड़, हीरा, हिये बिरही-जन के चित्त॥२०॥
सूरनि के तन, सूम-मन, काठ, कमठ की पीठि।
'केसव' सूखो चर्म अरु, हठ, सठ, दुर्जन-डीठि॥२१॥

(कवित्त)

'केसोदास' दीरघ उसासनि को सदागति,
आयु को अकास है, प्रकास पाप भोगी को।
देह जात जात रूप हाड़नि को रूपो रूप,
रूप को रूपक बिधु बासर-संयोगी को।
बुद्धिनि की बीजुरी है, नैननि को धाराधर,
छाती को घरचार, घन घाइनि प्रयोगी को।
उदर को बाड़वा अगिनि-गेह मानत हौं,
जानत हौं हीरा होरा काहू पुत्रसोगी को॥२२॥

अथ निश्चल-वर्णन—(दोहा)

सती, समर-भट, संत-मन, धर्म-अधर्म-निमित्त।
जहाँ जहाँ ये बरनियै, 'केसव' निस्चल चित्त॥२३॥

(सवैया)

काय मनो बच काम न लोभ न मोह न मोहैं महाभय-जेता।
'केसव' बाल, बहिक्रम, बृद्ध, बिपत्तिनि हूँ अति धीरज-चेता।
हैं कलि में करुनाबरुनालय कौन गनै कृत द्वापर त्रेता।
एई हैं सूरज-मंडल भेदत सूर सती अरु ऊरधरेता॥२४॥

अथ चंचल-वर्णन—(दोहा)

तरल तुरंग कुरंग-गन, बानर, चलदल-पान।
लोभिन के मन, स्यारजन, बालक, काल-बिधान॥२५॥
कुलटा, कुटिल कटाक्ष, मन, सपनो, जोबन, मीन।
खंजन, अलि, गजश्रवन, श्री, दामिनि, पवन प्रबीन॥२६॥

---

[२२] रूपो—पूरो (दीन०)। धन—तन (हरि०, सरदार०, दीन०)। हीरा—हियो (वही)।
[२४] मोह न मोहैं—छोभ न मोहैं (दीन०)।
[२५] गन—घन (हरि०, दीन०)।

(कबित्त)

भौर ज्यों भँवत लोल ललना लतानि प्रति,
खंजन से थल, मीन मानौ जहाँ जल है।
सपनेऊ होत, कहूँ आपनो न अपनाए,
भूलिये न बैन ऐन आक को सो फल है।
गहिये धौं कौन गुन, देखत ही रहिये री,
कहिये कछू न, रूप मोह को महल है।
चपला सी चमकनि सोहै चारु चहूँ दिसि,
कान्ह को सनेह चलदल को सो दल है ॥२७॥

अथ सुखद-वर्णन--(दोहा)

पंडित पुत्र, पतिब्रता, बिद्या, बपु नारोग।
सुख ही फल अभिलाष के, संपति, मित्रसँजोग ॥२८॥
दान, मान, धनजोग, जय, राग, बाग, गृह, रूप।
मुक्ति, सौम, सर्बज्ञता, ये सुखदानि अनूप ॥२९॥

(मालती छंद)

पंडित पूत सपूत सुधी पतिनी पतिप्रेम-परायन भारी।
जानै सबै गुन, मानै सबै जन, दानबिधान दया उर धारी।
'केसव' रोगनि ही सों वियोग, संजोग सु भोगनि सों सुखकारी।
साँच कहैं जग माहिं लहै जस, मुक्ति यहै चहूँ वेद बिचारी ॥३०॥

अथ दुखद-वर्णन--(दोहा)

पाप, पराजय, भूठ, हठ, सठता, मूरख मित्र।
बाँभन नेगी, रूप बिन, असहनसील चरित्र ॥३१॥
आधि ब्याधि, अपमान, रिन, परघर भोजन बास।
कन्या संतति, बृद्धता, बरषाकाल प्रबास ॥३२॥
कुजन कुस्वामी, कुगति हय, कुपुरनिवास, कुनारि।
परबस, दारिद आदि दै, अरि दुखदानि बिचारि ॥३३॥

(कबित्त)

बाहन कुचालि, चोर चाकर, चपल चित्त,
मित्त मतिहीन, सूम स्वामी उर आनियै।

---

[२७] सपनेऊ--सपनेऊ अपने न होत कहूँ आपन ए (याज्ञिक अ०); सपनो सो होत, कहूँ आपनो न अपनाये (दीन०)।
[२८] सुख ही--सुखदा (दीन०)।
[२९] जय--जप (सरदार०, दीन०)।

परघर भोजन निवास, बास कुपुरनि,
'केसोदास' बरषा प्रबास दुख-दानियै।
पापिन को अंगसंग, अंगना अनंगबस,
अपजसजुत सुत, चित हित-हानियै।
मूढ़ता बुढ़ाई व्याधि दारिद झुठाई आधि,
यहई नरक नरलोकनि बखानिये।

अथ मंदगति-वर्णन–(दोहा)

कुलतिय हास बिलास, बुध काम क्रोध मद मानि।
सनि, गुरु, सारस, हंस, गज, तियगति मंद बखानि ॥३५॥

(कबित्त)

कोमल बिमल मन, बिमला सी सखी साथ,
कमला ज्यों लीन्हें हाथ कमल सनाल के।
नूपुर की धुनि सुनि, भोरें कलहंसनि के,
चौंकि चौंकि परैं चारु चेटुवा मराल के।
कचनि कें भार, कुच-भारनि, सकुच-भार,
लचकि लचकि जात कटितट बाल के।
हरें हरें बोलति बिलोकति हँसति हरें,
हरें हरें चलति हरति मन लाल के ॥३६॥

अथ शीतल-वर्णन–(दोहा)

मलयज, दाख, कलिंद, सुख, ओरो, मिश्री, मीत।
प्रियसंगम-घनसार, ससि, जल, जलरुह, हिम सीत ॥३७॥

(कबित्त)

सीतल समीर टारि, चंद्रचंद्रिका निवारि,
'केसोदास' ऐसे ही तौ हरषु हिरातु है।
फूलनि फैलाइ डारि, झारि डारि घनसार,
चंदन कों टारि चित्त चौगुनो पिरातु है।
नीरहीन मीन मुरझाइ जीवै नीर ही पै,
छीर के छिरीकें कहा धीरज धिरातु है।
पाई है तैं पीर किधौं यों हीं उपचार करै,
आग को तौं दाध्यो अंग आगि ही सिरातु है ॥३८॥

अथ तप्त-वर्णन–(दोहा)

रिपु प्रताप दुर्बचन तप, तप्त बिरह संताप।
सूरज आगि बजागि दुख, त्रिस्ना पाप बिलाप ॥३९॥

(कबित्त)

'केसोदास' नींद, भूख, प्यास, उपहास-त्रास,
दुख को निवास बिष मुख हीं गह्यो परै।
बाइ को बहन, दिन दाव को दहन, बड़ी
बाड़वा-अनल-जाल-ज्वाल में रह्यो परै।
जीरन जनम जात जोर जुर घोर, परि-
पूरन प्रगट परिताप क्यों कह्यो परै।
सहिहौं तपन-ताप, पर को प्रताप, रघु-
बीर को बिरह बीर मोपै न सह्यो परै ॥४०॥

अथ सुरूप-वर्णन–(दोहा)

नल, नलकूबर, सुरभिषज, हरिसुत, मदन निहारि।
दमयंती सीतादि त्रिय सुंदर रूप बिचारि ॥४१॥

(कबित्त)

को है दमयंती इंदुमती रति राति दिन,
होंहि न छबीली छनछबि जौ सिंगारियै।
'केसव' लजात जलजात, जातबेद ओप,
जातरूप बापुरो बिरूप सो निहारियै।
मदन निरूप निरूपम तौ निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनुरूपकै बिचारियै।
सीताजी के रूप पर देवता कुरूप को हैं.
रूप ही के रूपक तौ वारि वारि डारियै ॥४२॥

अथ क्रूरस्वर-वर्णन–(दोहा)

झींगुर, साँप, उलूक, अज, महिषी, कोल बखानि।
काल, काक, बृक, करभ, खर, स्वान क्रूरस्वर जानि ॥४३॥

(कबित्त)

झिल्ली तें रसीली जीली राँटे हू की रट लीली,
स्याऊँ तें सवाई भूतभावती तें आगरी।
'केसोदास' भैंसनि की भामिनी तें भासै भास,
खरी तें खरी सी धुनि ऊँट तें उजागरी।

---

[४०] दिन दाव–बनदाव (याज्ञिक ग्र०, हरि०, सरदार०, दीन०)। ताप–पाप (बाल०)।

[४३] काल-भेंड़ि (दीन०)

भेड़िन की मीड़ी मैंड, एंड न्यौरा-नारिन की,
बोक हू तें बाँकी बानी, कागनि की कागरी।
सूकरी सकुचि, संकि कूकरियौ मूक भई,
घूघू की घरनि को है मोहै नाग-नागरी ॥४४॥

अथ सुस्वर-वर्णन–(दोहा)

कलरव, केकी, कोकिला, सुक, सारो, कलहंस।
तंत्री, कंठनि आदि दै सुभसुर दुंदुभि, बंस ॥४५॥

(कबित्त)

केकिन की केका सुनि काके न मथत मन,
मनमथ-मनोरथ रथपथ सोहिये।
कोकिला की काकलीनि कलित ललित बाग,
देखत ही अनुराग उर अवरोहिये।
कोकनि की कारिका कहत सुक-सारिकानि,
'केसोदास' नारिका कुमारिकाऊ मोहिये।
हंसमाल बोलत ही मान की माला उतारि,
बोलै नंदलाल सों न ऐसी बाला को हिये ॥४६॥

अथ मधुर-वर्णन–(दोहा)

मधुर प्रियाधर, सोमकर, माखन, दाख समान।
बालक बातैं तोतरी, कबिकुल-उक्ति प्रमान ॥४७॥
महुवा, मिश्री, दूध, घृत अति सिंगार रस मिष्ट।
ऊख, महूख, पियूष गनि 'केसव' साँचो इष्ट ॥४८॥

(सवैया)

खारिक खात न दारयौं दाखन माखन हूँ सह मेटी इठाई।
'केसव' ऊख महूखहु दूषत आई हौं तो पहिं छोड़ि जिठाई।
तो रदनच्छद को रस रंचक चाखि गए करि केहूँ ढिठाई।
ता दिन तें उन राखी उठाइ समेत-सुधा बसुधा की मिठाई ॥४९॥

---

[४४] रसीली–लजीली (बाल०)। स्याऊँ–स्यारि (हरि०, सरदार०, दीन०)। भावती–भामिनी (हरि०, सरदार०, दीन०)। भास–बेस (दीन०)। ऊँट–ऊँटि (याज्ञिक०, हरि०, दीन०)।
[४५] तंत्री कंठनि–तोतक तंत्री (दीन०)।
[४९] मेटी–छोड़ी (बाल०)। दिन–छिन (बाल०)।

अथ अबल-वर्णन—(दोहा)

पंगु, गुंग, रोगी, बनिक, मीत भूखजुत जानि।
अंध, अनाथ, अजादि सिसु, अबला अबल बखानि ॥५०॥

(कबित्त)

खात न अघात सब जगत खवावत है,
द्रौपदी के साकपात खातहीं अघाने हौ।
'केसोदास' नृपतिसुता के सतिभाइ भए,
चोर तें चतुरभुज चहूँ चक्क जाने हौ।
माँगनेऊ, द्वारपाल, दास, दूत, सुत, सूनौ,
काठमध्य कौन पाठ बेदनि बखाने हौ।
और है अनाथनि को नाथ कोऊ, रघुनाथ
तुम तौ अनाथनि के हाथी ही बिकाने हौ ॥५१॥

अथ बलिष्ठ-वर्णन—(दोहा)

पवन, पवन को पूत, अरु परमेसुर, सुरपाल।
काम, भीम, बाली, हली, बलि राजा, पृथु, काल ॥५२॥
सिंघ, बराह, गयंद, गुर, सेष, सती सब नारि।
गरुर, बैद, माता, पिता, बली अदिष्ट बिचारि ॥५३॥

(सवैया)

बालि बिंध्यो, बलिराउ बँध्यो कर सूली के सूल कपालथली है।
काम जर्‍यो जग, काल पर्‍यो बँदि, सेष धरै बिष हालाहली है।
सिंधु मथ्यो, किल काली नथ्यो, कहि 'केसव' इंद्र कुचालि चली है।
राम हू की हरी रावन बाम, चहूँ जुग एक अदिष्ट बली है ॥५४॥

अथ साँच-झूठ-वर्णन— (दोहा)

'केसव' चारि हू बेद को मन क्रम बचन बिचारि।
साँचो एक अदिष्ट हरि, झूठे सब संसार ॥५५॥

(सवैया)

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाँउ न ठाँउ को नाँउ बिलैहै।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न अंगऊ संग न रैहै।
'केसव' काम कौं राम बिसारत और निकाम न कामहि ऐहै।
चेत रे चेत अजौं चित-अंतर अंतक-लोक अकेलो ही जैहै ॥५६॥

(कबित्त)

अनही ठीक को ठग, जानै न कुठौर ठौर,
ताही पै ठगावै ठेलि जाही कों ठगतु है।

[५३] गरुर—गरुड़ (हरि०, सरदार०, दीन०) । बैद—बयल (अन्यत्र) ।

जाके तौ डर निडर डग न डगत डरि,
डर के डरनि डगि डोंगी ज्यों डगतु है।
ऐसे बसवास तें उदास होहि 'केसोदास',
काहे सो न भजै कहि काहे कौं खगतु है।
झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई काहू,
साँचे को बनायो तातें साँचो सो लगतु है ॥५७॥

अथ मंडल-वर्णन–(दोहा)

'केसव' कुंडल, मुद्रिका, बलया, बलय, बखानि।
आलबाल, परिबेष, रबिमंडल मंडल जानि ॥५८॥

(कबित्त)

मनिमय आलबाल थलज जलज रबि-
मंडल में जैसे मति मोहै कबितानि की।
जैसे सबिसेष परिबेष रेख, में असेष,
सोभित सुबेष सोम सीमा सुखदानि की।
जैसे बंकलोचनि कलित कर कंकननि,
बलित ललित दुति प्रगट प्रभानि की।
'केसोदास' तैसे राजै रास में रसिक लाल,
आसपास मंडली बिराजै गोपिकानि की ॥५९॥

अथ अगति-सदागति-वर्णन–(दोहा)

अगति सिंधु, गिरि, ताल, तरु, बापी, कूप बखानि।
महानदी, नद, पंथ, जग, पवन सदागति जानि ॥६०॥

(कबित्त)

पंथ न थकत पल मनोरथ-रथनि के,
'केसोदास' जग-मग जैसे गाए गीत मैं।
पवन बिचार चक्र चक्र मन चित्त चढ़ि,
भूतल अकास भ्रमैं घाम जल सीत मैं!
कौ लौं राखौं थिर बपु बापी कूप सर सम,
हरि बिन कीने बहु बासर बितीत मैं।
ज्ञान-गिरि फोरि, तोरि लाज-तरु जाइ मिलौं,
आपु ही तें आपगा ज्यों आपनिधि प्रीतमैं ॥६१॥

---

[५७] काहे सो न भजै–कैसो न भगत (याज्ञिक०, हरि०. सरदार०, दीन०)।
बनायो–कियो है (दीन०)।
[५९] बलित-कलित (बाल०)। तैसे-ऐसे (दीन०)।
[६१] पल–मन (सरदार०, दीन०)।

अथ दान-वर्णन—(दोहा)

गौरि, गिरीस, गनेस, बिधि, गिरा, ग्रहनि को ईस।
चिंतामनि, सुरबृक्ष, गो, जगमाता, जगदीस ॥६२॥
रामचंद, हरिचंद, नल, परसुराम दुखहर्न।
'केसवदास' दधीचि, पृथु, बलि, सिबि, भीषम, कर्न ॥६३॥
भोज, बिक्रमाजीत नृप, जगद्देव रनधीर।
दानिन हूँ के दानि दिन, इंद्रजीत, बलबीर ॥६४॥

गौरीजू को दान—(दोहा)

पावक, फनि, बिष, भस्म, मुख हर पवर्गमय मानि।
देत जु हैं अपबर्ग कहँ, पारबती-पति जानि ॥६५॥

गणेशजू को दान—(कवित्त)

बालक मृनालनि ज्यों तोरि डारै सब काल,
कठिन कराल वै अकाल दीह दुख को।
बिपति हरत हठि पंकज के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुष को।
दूरि कै कलंक-अंक भव-सीस-ससि सम,
राखत है 'केसोदास' दास के बपुष को।
साँकरे की साँकरनि सनमुख होत तोरै,
दसमुख मुख जोवै गजमुख-मुख को ॥६६॥

महादेवजू को दान—(कवित्त)

काँपि उठ्यो आपपति तपनहि ताप चढ़ी,
सीरी यों सरीर-गति भई रजनीस की।
अजहूँ न ऊँचो चाहै अनल मलिन-मुख,
लागि रही लाज मन मानौ मन बीस की।
छबि सों छबीली लक्षि छाती में छपाई हरि,
छूटि गई दान-गति कोरि हू तैंतीस की।
'केसोदास' तेही काल कारोई ह्वै आयो काल,
सुनत श्रवन बकसीस एक ईस की ॥६७॥

---

[६६] दसमुख-मुख—दसमुख नग (बाल०, याज्ञिक ग्र०)।
[६७] आपपति—आपनिधि (हरि०, दीन०)। मलिन—अनिल (बाल०)। लाज मन—लाज मुख (दीन०); लोकलाज (याज्ञिक०); लाज मनमानी दसबीस की (सरदार०)।

ब्रह्माजू को दान–(कवित्त)

आसीबिष, राकसनि, दैयतनि दै पताल,
सुरनि, नरनि दियो दिव्य, भू निकेतु है।
थिर चर जीवनि कौं दीनी वृत्ति 'केसोराइ'
दीबे कहँ और कोऊ कहूँ कहा हेतु है।
सीत, बात, तेज, तोय आवत समय पाइ,
काहू पे न नाकी जाति ऐसी सकसेतु है।
अब तब जब कब, जहाँ तहाँ देखिजत,
बिधि ही को दयो सब सब हो कौं देतु है ॥६८॥

गिराजू को दान–(कवित्त)

बानी जगरानी की उदारता बखानी जाति,
ऐसी मति 'केसव' उदार कौन की भई।
देवता प्रसिद्ध सिद्ध रिषिराज तपबृद्ध,
कहि कहि हारे सब कहि न काहू लई।
भावी, भूत, बर्तमान जगत बखानत है,
'केसोदास' क्यों हू न बखानी काहू पै गई।
बनैं पति चारिमुख पूत बनैं पाँचमुख,
नाती बनैं षटमुख तदपि नई नई ॥६९॥

सूर्यजू को दान–(कवित्त)

वाधक बिबिध ब्याधि त्रिबिध अधिक आधि,
बेद उपबेद बध बंधन बिधानु हैं।
जग पारावार पार करत अपार नर,
पूजक परम पद पावत प्रमानु हैं।
पुरुष पुरान कहैं पुरुष पुरानै सब,
पूरन पुरान सुनि निगम निदानु हैं।

---

[६८] दिब्य–दिवि (याज्ञिक ग्र०, हरि०, सरदार०, दीन०)। जाति–जाइ (याज्ञिक ग्र०, याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। सक–सर (याज्ञिक०); बाँधो (हरि०, सरदार०, दीन०)। दयो-दियो (याज्ञिक०); दीनो (याज्ञिक ग्र०, हरि०, सरदार०); दीन्हो (दीन०)।

[६९] जाति–जाइ (याज्ञिक ग्र०, याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। केसव-कैसे क (याज्ञिक ग्र०); उदित (दीन०); उद्यत (सरदार०)।

भोगवान भागवान भगतन भगवान,
करिबे कौं 'केसोदास' भानु भगवानु हैं ॥७०॥

परशुरामजू को दान—(सवैया)

जो धरती हिरनाछ हरी बर जज्ञबराह छिनाइ लई जू।
मानव दानव देवन के जु तपोबल केहुँ न हाथ भई जू।
जा लगि 'केसव' भारथ भो भव पारथ जीवन ही जु बई जू।
सातौ समुद्रन मुद्रित राम सु बिप्रन बार अनेक दई जू ॥७१॥

रामजू को दान—(कबित्त)

पूरन पुरान अरु पुरुष पुराने परि-
पूरन बतावैं न बतावैं और उक्ति कों।
दरसन देत जिनि दरसन समझैं न,
नेति नेति कहैं बेद छाँडि और जुक्ति कों।
जानि यह 'केसोदास' अनुदिन राम राम,
ररत रहत न डरत पुनरुक्ति कों।
रूप देइ अनिमाहि, गुन देइ गरिमाहि,
महिमाहि देह भक्ति नाम देइ मुक्ति कों ॥७२॥

(सवैया)

जो सतजज्ञ करैं करी इंद्र कों सो प्रियता कपिपुंज सों कीनी।
ईस दई जु दए दससीस सु लंक बिभीषन ऐसहि दीनी।
दानकथा रघुनाथ की 'केसव' को बरनै रस अद्भुत भीनी।
जो गति ऊरधरेतन की सु तौ औध के सूकर कूकर लीनी ॥७३॥
कैटभ सो, नरकासुर सो, पल में मधु सो, मुर सो जिनि मार्‌यो।
लोक चतुर्दस रक्षक 'केसव' पूरन बेद पुरान बिचार्‌यो।
श्रीकमला-कुच-कुंकुम-मंडन-पंडित, देव अदेव निहार्‌यो।
सो कर माँगन कौं बलि पै करतारहु के करतार पसार्‌यो ॥७४॥

---

[७०] पूजक–पूजन (बाल०)।

[७१] केहूँ न–कैस हू (बाल०)। ही जु–बीज (हरि०, दीन०)। यह छंद सरदार० में नहीं है।

[७२] और–भेद (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। ररत–कहत (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०)।

[७४] कहीं कहीं इसके अनंतर 'सूर्य के दान' का कवित है।

इंद्रजीतजू को दान–(कवित्त)

कारे कारे तम कैसे प्रीतम सुधारे बिधि,
वारि वारि डारे गिरि 'केसोदास' भाखे हैं।
थोरे थोरे मदनि कपोल फूले थूले थूले,
डोलैं जल थल बल थानुसुत नाखे हैं।
घंटा टननात घननात घने घूँघुरानि,
भौंर भननात भुवपति अभिलाषे हैं।
दुज्जन-दलिद्र-दल-दलन बिदारिबे कौं
इंद्रजीत हाथियै हथ्यार करि राखे हैं ॥७५॥

बीरबलजू को दान–(सवैया)

पाप के पुंज पखावज 'केसव' सोक के संख सुने सुषमा मैं।
झूँठ कै झाँझि बड़े डर कै डफ, आवझ जूथन जानी जमा मैं।
भेद की भेरी, अलोक कै झालरि, कौतुक भो कलि के कुरमा मैं।
जूझत ही बलबीर बजे बहु दारिद के दरबार दमामैं ॥७६॥

इति श्रीमत्दिविविधिभूषणभूषितायां कविप्रियायां
सामान्यालंकारवर्णनं नाम षष्ठः प्रभावः ॥३॥

७

अथ भूमि-भूषण-वर्णन–(दोहा)

देस, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल।
रबि, ससि, सागर, भूमि के भूषन, रितु सब काल ॥१॥

---

[७५] टननात-घननात (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। दुज्जन दुवन (दीन)। दल–दीह (बाल०)। बिदारिबे कौं–अमरसिंघ (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०, हरि०, दीन०)। इंद्रजीत–केसोदास (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०); ऐसे ऐसे (दीन०)। करि–कै कै (याज्ञिक०)।

[७६] झूठ कै०–झूठ के झालरि झाँझि अलोक के (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०)। अलोक कै झालरि-बड़े डर के डफ (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)।

अथ देश-वर्णन—(दोहा)

रतनखानि, पसु, पक्षि, बसु, बसन सुगंध सुबेस।
नदी, नगर, गढ़ बरनियै भाषा-भूषित देस ॥२॥

(कबित्त)

आछे आछे असन, बसन, बसु, बासु, पसु,
दान, सनमान, जान, बाहन बखानियै।
लोग, भोग जोग, भाग, बाग, राग, रूपजुत,
भूषननि भूषित, सुभाषा मुख जानियै।
सातौ पुरीं तीरथ, सरित, सब गंगादिक,
'केसोदास' पूरन पुरान, गुन गानियै।
गोपाचल ऐसे गढ़, राजा रामसिंघजू से,
देसनि की मनि महि मध्यदेस मानियै ॥३॥

अथ नगर-वर्णन—(दोहा)

खाई, कोट, अटा, धुजा, बापी, कूप तड़ाग।
बारनारि, असती, सती, बरनहु नगर सभाग ॥४॥

(कबित्त)

चहूँ भाग बाग बन मानहु सघन घन,
सोभा की सी साला, हंसमाला सी सरितबर।
ऊँचे ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु,
कौसिक की कीनी गंगा खेलत तरल तर।
आपने सुखनि आगे निंदत नरिंद और,
घर घर देखिजत देवता से नारि-नर।
'केसोदास' त्रास जहाँ केवल अदिष्ट ही को
वारियै नगर और ओड़छे नगर पर ॥५॥

अथ वन-वर्णन—(दोहा)

सुरभी, इभ, बन-जीव बहु भूत प्रेत भय-भीर।
भिल्ल भवन, बल्ली, बिटप, दव बन बरनहु धीर ॥६॥

(कबित्त)

'केसोदास' ओडछे कें आसपास तीस कोस,
तुंगारन्य नाम बन बैरी कौं अजीत है।

---

[२] भूषित–भूषन (सरदार०, दीन०)।
[३] रामसिंघ–मानसिंघ (बाल०)।

बिधि कैसो बंधु बर बारन-बलित, बाघ,
बानर, बराह, बहु भिल्ल कौं अभीत है।
जम की जमाति सी कि जामवंत को सो दल,
महिष सुखद स्वच्छ रिच्छन को मीत है।
अचल अनलवंत, सिंधु सो सरितजुत,
संभु कैसो जटाजूट परम पुनीत है ॥७॥

अथ गिरि-वर्णन–(दोहा)

शृंग तुंग, दीरघ दरी, सिद्ध सुंदरी, धातु।
सुर-नर-जुत गिरि बरनियै, औषध, निर्झरपातु ॥८॥

(कवित्त)

रामचंद्र कीने तेरे अरिकुल अकुलाइ,
मेरु के समान आन अचल घरीनि में।
सारो सुक हंस पिक कोकिला कपोत मृग,
'केसोदास' कहूँ हय करभ करीनि में।
डारे कहूं हार टूटे राते पीरे पट छूटे,
फूटे हैं सुगंध घट श्रवत तरीनि में।
देखिजत सिखर सिखर प्रति देवता से,
सुंदर कुँवर अरु सुंदरी दरीनि में ॥९॥

अथ आश्रम-वर्णन–(दोहा)

होम-घूम-जुत बरनियै, ब्रह्मघोष मुनिबास।
सिंघादिक मृग मोर अहि, इभ सुभ बैर-बिनास ॥१०॥

(कवित्त)

'केसोदास' मृगज बछेरू चोखैं बाघिनीनि,
चाटति सुरभि बाघ-बालक-बदन है।
सिंघनि की सटा एँचैं कलभ करनि करि,
सिंघनि को आसन गयंद को रदन है।
फनी के फननि पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसनि,
रिषि को निवास किधौं सिव को सदन है ॥११॥

---

[७] विधि–बिंध्य (हरि०, दीन०)।
[९] कोकिला कपोत–पारावत–केकी (बाल०)।
[११] सिंघनि की सटा–सिंघिनी की सटा (याज्ञिक प्र०)।

अथ सरिता-वर्णन—(दोहा)

जलचर हय गय जलज तट जज्ञकुंड मुनिवास।
स्नान दान पावन नदी बरनौ 'केसवदास' ॥१२॥

(सवैया)

ओड़छे तीर-तरंगिनि बेतवै ताहि तरै रिपु 'केसव' को है।
अर्जुन-बाहु-प्रबाह-प्रबोधित रेवा ज्यों राजन की रज मोहै।
जोति जगै जमुना सी लगै जगलोचन-लालित पाप बिपोहै।
सूरसुता सुभ संगम तुंग तरंग-तरंगित गंग सी सोहै ॥१३॥

अथ बाग-वर्णन—(दोहा)

ललित लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल कलरव, मोर।
बरनि बाग अनुराग स्यों, भँवर भँवत चहुँ ओर ॥१४॥

(कवित्त)

सहित सुदरसन करुनाकलित कम-
लासन बिलास मधुबन मीत मानियै।
सोहियै अपर्ना रूपमंजरी पै नीलकंठ
'केसोदास' प्रगट असोक उर आनियै।
रंभा स्यों सदंभ बोलै मंजुघोषा उरबसी,
हंस फूले सुमनसु सब सुखदानियै।
देव को दिवान सो प्रबीनरायजू को बाग,
इंद्र के समान तहाँ इंद्रजीत जानियै ॥१५॥

अथ ताल-वर्णन—(दोहा)

ललित लहर, खग, पुष्प, पसु, सुरभि समीर, तमाल।
करत केलि पंथी प्रगट, जलचर बरनहु ताल ॥१६॥

(सवैया)

आपु धरैं मल औरनि 'केसव' निर्मल काय करैं चहुँ ओरैं।
पंथिन के परिताप हरैं हठि जे तरु तूल-तनूरुह तोरैं।
देखहु एक सुभाउ बड़ी बड़भाग तड़ागनि के बित थोरैं।
ज्यावत जीवनहारिनि कों निज बंधन कै जगबंधन छोरैं ॥१७॥

---

[१३] रिपु—सिवु (बाल०)। रज मोहै—मन मौहै (याज्ञिक ग्र०)।
[१५] पै—और (सरदार०, दीन०)। तहाँ—जहाँ (याज्ञिक ग्र०, याज्ञिक०)।
[१६] करत—करभ (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[१७] निज बंधन—निज बंधक (बाल०)।

अथ समुद्र-वर्णन–(दोहा)

तुंग तरंग गभीरता रतन जलज बहु जंतु।
गंगा-संगम देवप्रिय, जान बिमान अनंतु ॥१८॥
गिरि बड़वानल वृद्धि बहु चंद्रोदय तें जानि।
पन्नग देव अदेव गृह ऐसो सिंधु बखानि ॥१६॥

(सवैया)

सेष धरै धरनी, धरनी धरै 'केसव' जीव रचे बिधि जेते।
चौदह लोक समेत तिन्हैं हरि के प्रति रोमनि में चित चेतें।
सोवत तेऊ सुने इनही में अनादि अनंत अगाध हैं एते।
अद्भुत सागर की गति देखहु सागर ही महँ सागर केते ॥२०॥
भूति विभूति पियूषहु को बिष ईस सरीर कि पाप बिपोहै।
है किधौं 'केसव' कस्यप को घर देव अदेवनि के मन मोहै।
संत हियो कि बसैं हरि संतत सोभ अनंत कहै कबि को है।
चंदन-नीर-तरंग-तरंगित नागर कोऊ कि सागर सोहै ॥२१॥

अथ सूर्योदय-वर्णन–(दोहा)

सूर-उदय तें अरुनता पय-पावनता होइ।
संख-बेद-धुनि मुनि करैं पंथ लगै सब कोइ ॥२२॥
कोक, कोकनद सोकहत, दुख कवलय, कुलटानि।
तारा ओषधि दीप ससि घूक चोर तम हानि ॥२३॥

(कबित्त)

कोकनद-मोदकर मदन-बदन किधौं,
दसमुख-मुख कबलय-दुखदाई है।
रोधक असाधु-जन, सोधक तमोगुन को,
उदित प्रबोध बुधि 'केसोदास' पाई है।
पावन-करन पय हरिपद-पंकज कै,
जगमगै मनु जगमग दरसाई है।
तारापति तेजहर, तारका को तारक कै,
प्रगट प्रभातकर ही की प्रभुताई है ॥२४॥

अथ चंद्रोदय-वर्णन–(दोहा)

कोक कोकनद बिरहि तम मानिनि कुलटनि दुख्ख।
चंद्रोदय तें कुबलयनि जलधि चकोरनि सुख्ख ॥२५॥

---

[२०] चेते–जेते (बाल०)।
[२२] लगै–चलै (बाल०, सरदार०)।
[२४] मनु–मनि (याज्ञिक०)।

(कबित्त)

'केसोदास' है उदास कमलाकर सों कर,
सोषक प्रदोष ताप तमोगुन तारियै।
अमृत असेष के बिसेष भाव बरषत,
कोकनद मोद चंड खंडन बिचारियै।
परम पुरुष पद बिमुख पुरुष रुख,
संमुख सुखद बिदुषनि उर धारियै।
हरि हैं री हिये में न हरिन हरिननैनी,
चंद्रमा न चंद्रमुखी नारद निहारियै॥२६॥

अथ वसंत-वर्णन–(दोहा)

बरनि बसंत सपुष्प-अलि, बिरहि-बिदारन बीर।
कोकिल-कलरव-कलित बन, कोमल सुरभि-समीर॥२७॥

(कबित्त)

सीतल समीर सुभ गंगा के तरंगजुत,
अंबर-बिहीन बपु बासुकि लसंत है।
सेवत मधुपगन गजमुख परभृत
बोल सुनि होत सुखो संत औ असंत है।
अदल अमल रूपमंजरी-सुपद-रज-
रंजित असोक दुख देखत नसंत है।
जाके राज दिसि दिसि फूले हैं सुमन सब,
सिव को समाज किधौं 'केसव' बसंत है॥२८॥

अथ ग्रीष्म-ऋतु-वर्णन–(दोहा)

तातें तरल समीर सुख सूखे सरिता ताल।
जीव अबल जल थल बिकल ग्रीषम सफल रसाल॥२९॥

(कबित्त)

चंडकर-कलित, वलित बर सदागति,
कंदमूल फल फूल दलनि को नासु है।
कीच-बीच बचैं मीन, ब्याल बिल, कोलकुल
दुरद दरीनि दिनकृत को बिलासु है।
थिर चर जीवन-हरन बन बन प्रति,
'केसोदास' मृगसिर श्रवन निवासु है।

---

[२६] चंड–चंद–(याज्ञिक०, याज्ञिक अ०)
[२८] सुपद०–में नीलकंठ (अन्यत्र)।
[२९] सुख–मुख (हरि०, दीन०)।

धावन बली धनुप सोभत निपानि सर,
सबर समूह किधौं ग्रीषम प्रकासु है ॥३०॥

अथ वर्षा-ऋतु-वर्णन–(दोहा)

बरषा हंस पयान, बक, दादुर, चातक, मोर।
केतकि पुंज, कदंब, जल, सौदामिनि घन घोर ॥३१॥

(कवित्त)

भौहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर,
भूषन जराइ जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी मुख सुख सुखमा ससी की नैन
अमल कमल-दल दलित निकाई है।
'केसोदास' प्रबल करेनुका गमन हर,
मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है।
अंबर - वलित मति मोहै नीलकंठजू की
कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है ॥३२॥

अथ शरद-ऋतु-वर्णन–(दोहा)

अमल अकास प्रकास ससि मुदित कमल-कुल कास।
पंथी पितर पयान नृप सरद सु 'केसवदास' ॥३३॥

(कवित्त)

सोभा को सदन ससि बदन मदन कर,
बंदै नर देव कुवलय बलदाई है।
पावन पद उदार लसति हंसक मार,
दीपति जलजहार दिसि दिसि धाई है।
तिलक चिलक चारु लोचन कमल रुचि,
चतुर चतुरमुख जग जिय भाई है।
अमल अंबर नील लीन पीन पयोधर
'केसोदास' सारदा कि सरद सुहाई है ॥३४॥

---

[३०] मृगसिर-मृगसुत (बाल०) । भवन-भवत (बाल०) । धावन-धावत (याज्ञिक अ०, हरि०, दीन०) । सबर-समर (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०) ।
[३१] बरषा०-बरषा बरनहु हंस बक (याज्ञिक अ०, हरि०) । पुंज-कुंद (याज्ञिक०); पुष्प (दीन०) ।
[३४] बलदाई-सुखदाई (याज्ञिक अ०) ।

अथ हेमंत-ऋतु-वर्णन–(दोहा)

तेल, तूल, तामोर, त्रिय, ताप, तपन रतिवंत।
दीह रयनि, लघु द्योस सुनि सीत-सहित हेमंत॥३५॥

(कबित्त)

अमल कमल-दल लोचन, ललित गति,
जारत समीर सीत, भीत दीह दुख की।
चंद्रक न खायो जाइ चंदन न लायो जाइ,
चंद न निहारयो जाइ प्रकृति बपुष की।
घट की घटति जात घटना घटी हू घटी,
छिन छिन छीन छबि रबिमुख सुख की।
सीकर तुषार स्वेद सोहत हेमंत रितु,
किधौं 'केसोदास' त्रिय प्रीतम बिमुख की॥३६॥

अथ शिशिर-ऋतु-वर्णन–(दोहा)

सिसिर सरस मन बरनियै, 'केसव' राजा रंक।
नाचत गावत रैनि दिन, खेलत हँसत निसंक॥३७॥

(कबित्त)

सरस असमसर सरसिज-लोचनि, बि-
लोकि लोक लीक लाज लोपिबे कौं आगरी।
ललित लता सुबाहु जानि जून ज्वान बाल,
बिटप उरनि लागै उमँगि उजागरी।
पल्लव अधर मधु मधुपन पीवतहीं,
रचित रुचिर पिक-रुत सुख-सागरी।
इति बिधि सदागति बास बिगलित गात,
सिसिर की सोभा किधौं बारनारि नागरी॥३८॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
सामान्यालंकारवर्णने श्वेतादिवर्णवर्णनं
नाम सप्तमः प्रभावः॥७॥

———

[३६] निहारयो-चितयौ (याज्ञिक अ०, हरि०, दीन०), लखायौ (याज्ञिक०)।
त्रिय-प्रिया (सरदार०, दीन०)।
[३८] पल्लव-कोमल (याज्ञिक० अ०)।

८

अथ राज्यश्री-भूषण-वर्णन–(दोहा)

राजा, रानी, राजसुत, प्रोहित, दलपति, दूत।
मंत्री, मंत्र, पयान, गय, हय, संग्राम अभूत ॥१॥
आखेटक, जलकेलि पुनि, बिरह स्वयंबर जानि।
भूषित सुरतादिकनि करि, राज्यश्रीहि बखानि ॥२॥

अथ राजा-वर्णन–(दोहा)

प्रजा, प्रतिज्ञा, पुन्यपन, परम प्रताप, प्रसिद्धि।
सासन, नासन सत्रु के, बल बिबेक की बृद्धि ॥३॥
दंड, अनुग्रह, धीरता, सत्य, सूरता, दान।
कोष, देसजुत बरनियै, उद्दिम छमा-निधान ॥४॥

(कबित्त)

नगर नगर पर घनई तौ गाजैं घेरि,
ईति की न भीति, भीति अधन अधीर की।
अरि-नगरीन प्रति होत हैं अगम्या-गौन,
भावै बिभिचारी, जहाँ चोरी पर-पीर की।
सासन को नासन करत एक गंधासन,
'केसोदास' दुर्गनहीं दुर्गति सरीर की।
दिसि दिसि जीति पै अजीति दुज दीननि सों,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥५॥

अथ रानी-वर्णन–(दोहा)

सुंदरि, सुखद, पतिब्रता, सुचि रुचि, सील समान।
यहि बिधि रानी बरनियै सलज सुबुद्धि-निधान ॥६॥

(कबित्त)

माता जिमि पोषति, पिता ज्यों प्रतिपाल करै,
प्रभु जिमि सासन करति, हेरि हिय सों।
भैया ज्यों सहाउ करै, देति है सखा ज्यों सुख,
गुरु ज्यों सिखावै सीख हेत जोरि जिय सों।

[५] पर पीर-बित्त धीर (बाल०)। गंधासन–गंधवाह (दीन०)। गयासन (अन्यत्र)।

दासी ज्यों टहल करै, देवी ज्यों प्रसन्न ह्वै,
सुधारै परलोक नातो नाहिं काहू बिय सों।
छाके हैं अयान मद छिति के छनक छुद्र,
और सों सनेह करैं छाँड़ि ऐसी तिय सों ॥७॥
काम के हैं आपने ही कामरति, काम साथ,
रति न रतीकौ जरी, कैसे उर आनियै।
अधिक असाधु इंद्र, इंद्रानी अनेक इंद्र,
भोगवति, 'केसोदास' वेद न बखानियै।
बिधि हू अबिधि कीनी, सावित्री हू साप दीनी,
ऐसे सब पुरुष जुवति उनमानियै।
राजा रामचंद्रजू से राजत न अनुकूल,
सीता सी न पतिव्रता नारी जग जानियै ॥८॥

अथ राजकुमार-वर्णन—(दोहा)

बिद्या बिबिध बिनोद जुत, सील-सहित आचार।
सुंदर, सूर, उदार, बिभु, बरनिय राजकुमार ॥९॥

(कबित्त)

दाननि के सील, परदान के प्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखियै सुभाइ के।
दीपदीप हू के अवनीपनि के अवनीप,
पृथु सम 'केसोदास' दास दुज गाइ के।
आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये,
परदार-प्रिय, साधु मन बच काइ के।
देह-धर्मधारी पै बिदेहराजजू से राज,
राजत कुमार ऐसे दसरथ राइ के ॥१०॥

अथ पुरोहित-वर्णन—(दोहा)

प्रोहित नृपहित, बेदवित, सत्यसील, सुचि अंग।
उपकारी, ब्रह्मन्य, रिजु, जीत्यो जगत अनंग ॥११॥

---

[७] और सों—औरनि सों नेह करें छोड़ि (दीन०)।
[८] उर आनियै—ताहि मानियै (दीन०)। अबिधि—अवधि (याज्ञिक अ०)। कीनी—करि (बाल०)। दीनी—धरि (बाल०)। जग जानियै—उर आनियै (बाल०, हरि०, सरदार०, दीन०)!
[१०] दाननि—दानिन (याज्ञिक अ०, हरि, सरदार०, दीन०), सुरपालक०—सुरपालक के बालक से (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०, हरि०, सरदार०)।

(कवित्त)

कीनो पुरहूत मीत, लोक लोक गाए गीत,
पाए जु अभूत पूत, अरि उर त्रास है।
जीते जु अजीत भूप, देस देस बहुरूप,
और को न 'केसोदास' बल को बिलास है।
तोर्‌यो हर को धनुष, नृपकुल गौ-बिमुख,
देख्यो जु बधू को मुख सुखमा को बास है।
ह्वै गए प्रसन्न राम, बाढ़ो धन धर्म धाम,
केवल बसिष्ठ के प्रसाद को प्रकास है ॥१२॥

अथ सेनापति-वर्णन–(दोहा)

स्वामिभक्त, श्रमजित, सुधी, सेनापति अभीत।
अनआलस, जनप्रिय, जसी सुख संग्राम अजीत ॥१३॥

(सवैया)

छाँडि दियो अति आरस पारस 'केसव' स्वारथ साथ समूरो।
साहस सिद्ध प्रसिद्ध सदा जल हू थल हू बल-विक्रम पूरो।
सोहिय एक अनेकन माहिं, अनेक न एक बिना रन रूरो।
राजत है तेहि राज को राज सु जाकी चमू में चमूपति सूरो ॥१४॥

अथ दूत-वर्णन–(दोहा)

तेज बढ़ै निज राज को अरि उर उपजै छोभ।
इंगित जानै, समय गुन बरनहु दूत अलोभ ॥१५॥

(कबित्त)

स्वारथ-रहित, हित-सहित बिहित-मति,
काम क्रोध लोभ, मोह छोभ मद हीने हैं।
मीत हू अमीत पहिचानिबे कों, देस काल,
बुद्धि, बल जानिबे कों परम प्रबीने हैं।
आपनी उकति अति ऊपरी दै औरनि की,
दूर दूर दुरी मति लै लै बस कीने हैं।
'केसोदास' रामदेव देस देस अरिदल,
राजनि के देखिबे कों दूतै द्रिग दीने हैं ॥१६॥

---

[१२] नृपकुल-नृपगन (याज्ञिक ग्र०, हरि०, दीन०); नृपमन भो (सरदार०)।
[१३] सेनापत्ति०–सेनापति सु (दीन); सेनापति श्रनमीत (श्रन्यत्र)।
[१४] सिद्ध–सिंधु (हरि०, सरदार०, दीन०)। सदा–महा (बाल०)।
[१६] लोभ मोह–लोभ (बाल०)। मद–दमादिक (बाल०)।

अथ मंत्री-वर्णन–(दोहा)

राजनीतिरत, राजरत, सुचि, सर्वज्ञ, कुलीन।
क्षमी, सूर, जस-सीलजुत मंत्री मंत्र-प्रवीन ॥१७॥

(सवैया)

'केसव' कैसेहुँ बारिधि बाँधि कहा भयो रीछनि ज्यों छिति छाई।
सूरज को सुत बालि को बालक, को नल नील, कही हम ठाई।
को हनुमंत कितेक बली, जम हूँ पहँ जोर लई नहिं जाई।
भूषन भूषन, दूषन दूषन, लंक विभीषन के मत पाई ॥१८॥
जुद्ध जुरे जुरजोधन सों कहि को न करी जमलोक बसीत्यो।
कर्न, कृपा, द्विज द्रोन सों बैर कै काल बचै बल कीजै प्रतीत्यो।
भीम कहा बपुरो अरु अर्जुन नारि नँग्यावत ही बल रीत्यो।
'केसव' केवल केसव के मत भारथ पारथ भारथ जीत्यो ॥१९॥

अथ मंत्री मति-वर्णन–(दोहा)

पंच अंग गुन संग षट, बिद्याजुत दसचारि।
आगम संगम निगम मति, ऐसे मंत्र बिचारि ॥२०॥

(सवैया)

'केसव' मादक क्रोध बिरोध तजी सब स्वारथ सिद्धि अनैसी।
भेद, अभेद, अनुग्रह, बिग्रह, निग्रह संधि कही बिधि जैसी।
बैरिन कौं बिपदा प्रभु कौं प्रभुता करै मंत्रिन की मति ऐसी।
राखत राजन, देवन ज्यों दिन दिव्य बिचार बिमानन बैसी ॥२१॥

अथ प्रयाण-वर्णन–(दोहा)

चँवर, पताका, छत्र छबि, दुंदुभि, धुनि बहु जान।
जल-थलमय भुवकंप रज-रंजित बरनि पयान ॥२२॥

(सवैया)

राघव की चतुरंग चमू चय को गनै 'केसव' राज-समाजनि।
सूर तुरंगन के उरझें पग तुंग पताकनि के पट साजनि।
टूटि परें तिनतें मुकता धरनी उपमा बरनी कबिराजनि।
बिंदु मनौ मुख-फेनन के किधौं राजसिरी स्रवै मंगल-लाजनि ॥२३॥

---

[१८] हम–यह (याज्ञिक ग्र०, याज्ञिक०)। नहिं–जु न (अन्यत्र)।
[१९] बचै–डरै मन (बाल०)। भारथ०–भूतल भारत पारथ (हरि०, सरदार०, दीन०); भूलत० (याज्ञिक०), भारथ पारथ ऐसे ही (याज्ञिक०)।
[२०] सिद्धि–बुद्धि (याज्ञिक ग्र० हरि०, सरदार०)।

(कबित्त)

नाद पूरि, धूरि पूरि तूरि बन, चूरि गिरि,
सोखि सोखि जल भूरि भूरि थल गाथ की।
'केसोदास' आसपास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपति सब आपने ही साथ की।
उन्नत नवाए, नत उन्नत बनाए भूप,
सत्रुन की जीविका सुमित्रन के हाथ की।
मुद्रित समुद्र सात, मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दस दिसि जीति सेना रघुनाथ की ॥२४॥

अथ हय-वर्णन–(दोहा)

तरल, तताई, तेजगति, मुखसुख, लघुदिन देखि।
देस, सुबेस, सुलक्षनै, बरनहु बाजि बिसेषि ॥२५॥

(कबित्त)

बामनहि दुपद जु नाख्यो नभ ताहि कहा,
नाखें पद चारि थिर होत इहि हेत हैं।
छेकी छिति छीरनिधि छाँडि धाप छत्र · तर,
कुंडली करत लाल चित्त मोल लेत हैं।
मन कैसे मीत, बीर बाहन समीर कैसे,
नैनन ज्यों नौनी, नौनि नेह के निकेत हैं।
गुनगन बलित, ललित गति 'केसोदास',
ऐसे बाजि रामचंद्र दीनन कौं देत हैं ॥२६॥

अथ गज-वर्णन–(दोहा)

मत्त, महाउत हाथ में, मंद चलनि, चलकर्न।
मुक्तामय, इभ कुंभ सुभ, सुंदर, सूर सुबर्न ॥२७॥

(कबित्त)

जल कै पगार, निज दल कै सिंगार, पर
दल को बिगार करि, पर-पुर पारैं रौरि।
ढाहैं गढ़ जैसे घन, भट ज्यों भिरत रन,
देति देखि आसिषा गनेसजू के भोरे गौरि।

---

[२४] जीविका सुमित्रन-जीति कांति मित्रनि (याज्ञिक०)। हाथ–साथ (याज्ञिक०)।
[२६] चित्त–चाकै (दीन०)।

बिंध के से बांधव, कलिंदनंद से अमंद,
बंदन कै भूड़ भरे, चंदन की चारु खौरि।
सूर के उदोत उदैगिरि से उदित अति,
ऐसे गजराज राजैं राजा रामचंद्र पौरि ॥२८॥

अथ संग्राम-वर्णन–(दोहा)

सेना, स्वन, संनाह, रज, साहस, सस्त्र-प्रहार।
अंग-भंग, संघट्ट भट, अंध, कवंध अपार ॥२९॥
'केसव' बरनहु जुद्ध महँ, जोगिनि-गन-जुत रुद्र।
भूमि भयानक रुधिरमय, सरवर, सरित समुद्र ॥३०॥

(कबित्त)

सोनित सलिल नर बानर सलिलचर,
गिरि हनुमंत, विष बिभीषन डार्‌यो है।
चँवर पताका बड़ी बाड़वा अनल सम,
रोगरिपु जामवंत 'केसव' विचार्‌यो है।
बाजि सुरवाजि, सुरगज से अनेक गज,
भरत सबंधु इंदु अंमृत निहार्‌यो है।
सोहत सहित सेष रामचंद्र, कुस लव,
जीति कै समर-सिंधु साँच ही सुधार्‌यो है ॥३१॥

अथ आखेट-वर्णन–(दोहा)

जुररा, बहरी, बाज बहु, चीते, स्वान, सचान।
सहर, बहलिया, भिल्लजुत, नील निचोल-बिधान ॥३२॥
बानर, बाघ, वराह, मृग, मीनादिक बहु जंत।
बध, बंधन, बेधन बरनि मृगया खेद अनंत ॥३३॥

(कबित्त)

तीतर, कपोत, पिक, केकी, कोक, पारावत,
कुरर, कुलंग, कलहंस गहि लाए हैं।
'केसव' सरभ सीह साह, गोस रोष हति,
कूकरन पास सक सूकर गहाए हैं।

---

[२८] भूड़ भरे-भूरि भरे (बाल०); सूँड भरे (दीन०)।
[२९] स्वन–स्वर (बाल०)। स्वसन (सरदार०)। सस्त्र-सत्रु (याज्ञिक अ०)।
[३१] सबंधु–से बंधु (याज्ञिक अ०)।
[३२] विधान-पिधान (याज्ञिक अ०, याज्ञिक०)।
[३३] बहु–बन (हरि०, सरदार०, दीन०)। मृगया खेद–खग आखेट (सरदार०); खेल (दीन०)।

मकर निकर बेधि, बाँधि गजराज मृग,
सुंदरी दरीनि भील भामिनीन भाए हैं।
रीझि रीझि गुंजन के हार पहिराए देखो,
काम ऐसे राम के कुमार दोऊ आए हैं ॥३४॥

खलनि के खैलभैल, मनमथ-मन ऐल,
सैलजा कें सैल गैल गैल प्रति रोक है।
सेनानी के सटपट, चंद्र-चित चटपट
अति अति अटपट अंतक के ओक है।
इंद्रजू के अकबक, धाताजू के धकपक,
संभुजू के सकपक 'केसोदास' को कहै।
जब जब मृगया को राम के कुमार चढ़ैं,
तब तब कोलाहल होत लोक लोक है ॥३५॥

अथ जलकेलि-वर्णन–(दोहा)

सर, सरोज, सुभ, सोभ भनि, हिय सो प्रिय मन झेलि।
गहिबो गत भूषनन को, जलचर ज्यों जलकेलि ॥३६॥

(कबित्त)

एक दमयंती ऐसी हरैं हँसि हंस-बंस,
एक हंसिनी सी बिसहार हिंये रोहियै।
भूषन गिरत एक लेति बूड़ि बीचि-बीच,
मीन-गति-लीन, हीन उपमा न टोहियै।
एक हरि-कंठ लागि लागि बूड़ि बूड़ि जाति,
जलदेवता सी द्रिग देवता बिमोहियै।
'केसोदास' आसपास भँवर भँवत जल-
केलि में जलजमुखी जलज सी सोहियै ॥३७॥

---

[३४] सरभ-करभ (बाल०)। सीह साह-सीह स्याह (याज्ञिक०, सरदार०); साह सीह (हरि०, दीन०)। हति-हित (याज्ञिक०); गति (हरि०, दीन०); गत (सरदार०)। सक-सिसु (याज्ञिक०); सस (हरि०, सरदार०, दीन०)। निकर-समूह (दीन०)। ऐसे-जैसे (दीन०); कैसे (बाल०)।
[३५] चढ़ैं-चलै (बाल०, याज्ञिक०)।
[३६] मन-हिय (दीन०)। झेलि-मेलि (याज्ञिक अ०, सरदार०)।
[३७] एक हरि०-एकै मत कै कै (दीन०)।

अथ विरह-वर्णन—(दोहा)

स्वास निसा, चिंता बढ़ैं रुदन परेखै बात।
कारे, पीरे, होत कृस, ताते सीरे गात ॥३८॥
भूख, प्यास, सुधि बुधि घटै, सुख, निद्रा, दुति अंग।
दुखद होत हैं सुखद सब, 'केसव' बिरह-प्रसंग ॥३९॥

(कबित्त)

बार बार बरजी मैं सारस सरस मुखी,
आरसी लै देखि मुख, या रस में बोरिहै।
सोभा के निहोरे तौ निहारति न नेक हू तू,
हारी हैं निहोरि सब कहा काहू खोरि है।
सुख को निहोरो जो न मान्यो सु भली करी तैं,
'केसोराइ' की सौं तोहि जौ तू मन मोरिहै।
नाह को निहोरो किन मानति निहोरति हौं,
नेह के निहोरे फिरि मोहीं जु निहोरिहै ॥४०॥

हरित हरित हार हेरत हिये हरत,
हारी हौं हरिननैनी हरि न कहूँ लहौं।
बनमाली ब्रज पर बरसत बनमाली,
बनमाली दूर दुख 'केसव' कैसे सहौं।
आप घने घनस्याम, घन ही से होत घन,
सावन के द्यौस घनस्याम बिनु क्यों रहौ।
हृदय-कमल-नैन देखि कै कमलनैन,
होहुँगी कमलनैनी और हौं कहा कहौं ॥४१॥

(सवैया)

भूलि गयो सब सों रस रोष, मिटे भव के भ्रम रैनि बिभातौ।
को अपनो पर को पहिचानत, जानति नाहिनै सीतल तातौ।
नीकेहि में वृषभानुलली की भई सु न जाकी कही परै बातौ।
एकहि बेर न जानियै 'केसव' काहे तें छूटि गए सुख सातौ ॥४२॥
मेह की हीस कै आँसू, उसासनि साथ निसा सु बिसासिनि बाढ़ी।
हास गयो उड़ि हंसनि ज्यों, चपला सम नींद नई गति काढ़ी।

---

[३९] दुखद-सुखद (बाल०)। सुखद-दुखद (बाल०)।
[४०] तैं-न (हरि०, दीन०); ब (सरदार०)। मन-मान (हरि०, दीन०)।
[४१] 'हृदय-कमल-नैन पंक्ति' याज्ञिक ग्र०, हरि०, सरदार० दीन० में तीसरी है

चातक ज्यों पिउ पीउ रटै, चढ़ी ताप-तरंगिनि ज्यों तन गाढ़ी।
'केसव' वाकी दसा सुनि हौं अब, आगि बिना अँग अंगनि डाढ़ी। ४३॥

अथ स्वयंवर-वर्णन–(दोहा)

सची स्वयंबर रक्षियै, मंडल मंच बनाउ।
रूप, पराक्रम, वंस, गुन बरनिय राजा राउ॥४४॥

(सवैया)

मंडली मंचन की, नृपमंडल-मंडित देखियै देवसभा सी।
दंतनि की दुति, देह की दीपति, भूषन-जोति-समेत अभासी।
फूलनि की छबि, अंबर की छबि, छत्रन की छबि तत्क्षन भासी।
सोहति है अति सीय-स्वयंबर आनन-चंद-प्रबेष-प्रभा सी॥४५॥

अथ सुरति-वर्णन–(दोहा)

सुरति सातुकी भाव भनि, मनित रुनित मंजीर।
हाव, भाव, बहि अंत रति, अलज सलज्ज सरीर॥४६॥

(कबित्त)

'केसोदास' प्रथम ही उपजत भय-भीर,
रोम-रुचि स्वेद देह कंपनि गहति हैं।
प्रान प्रिय बाजी कृत बारन पदाति क्रम,
बिबिध सबद द्विज दानहि लहति हैं।
कलित कृपान कर सकति सुमान त्रान,
सजि सजि करज प्रहारन सहति हैं।
भूषन सुदेस हार दूषन सकल होत,
सखि न सुरति-रीति, समर कहति हैं॥४७॥

इति श्रीमद्विविधिभूषणभूषितायां कविप्रियायां
सामान्यालंकारवर्णने राज्यश्रीभूषणवर्णनं
नाम अष्टमः प्रभावः॥८॥

---

[४३] हीस कै-हैं सखि (याज्ञिक०, हरि, सरदार०, दीन०)। नई–गई (हरि०, सरदार०)।
[४७] रोम-रोष (हरि, दीन०)। गहति–धरति (बाल०)। लहति–लजति (बाल०)। आनतन–आननि के (बाल०, याज्ञिक०)।

९

अथ विशिष्टालंकार-वर्णन–(दोहा)

जाति सुभाव, बिभावना, हेतु, बिरोध, बिसेष
उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम, आसिष प्रिय सुस्लेष ।।१।।
प्रेमा, स्लेष, सभेद है नियम, बिरोधी मान।
सूक्षम, लेस, निदर्सना, उर्जस्वी पुनि जान ।।२।।
रस, अर्थांतरन्यास है, भेद सहित ब्यतिरेक।
फेरि अपह्नुति, उक्ति है, बक्रोकति सबिबेक ।।३।।
अन्योकति, ब्यधिकरन है, सुबिसेषोकति भाषि।
फिरि सहोक्ति को कहत हैं, क्रम ही सों अभिलाषि ।।४।।
ब्याजस्तुति निंदा कहैं, पुनि निंदास्तुतिवंत।
अमित सु पर्यायोक्ति पुनि, युक्त सुनौ सब संत ।।५।।
स समाहित जु सुसिद्धि पुनि औ प्रसिद्ध बिपरीत।
रूपक, दीपक भेद पुनि, कहि प्रहेलिका मीत ।।६।।
अलंकार परबृत कहौ उपमा जमक सुचित्र।
भाषा इतने भूषननि भूषित कीजै मित्र ।।७।।

अथ जाति-लक्षण–(दोहा)

जाको जैसो रूप गुन कहिजै तैसे साज।
तासों जाति-सुभाव कहि बरनत हैं कबिराज ।।८।।

(कबित्त)

पीरी पीरी पाट की पिछौरी कटि 'केसोदास'
पीरी पीरी पागें पग पीरियै पनहियाँ।
बड़े बड़े मोतिन की माल बड़े बड़े नैन,
नान्ही नान्ही भृकुटी कुटिल बघनहियाँ।
बोलनि, हँसनि मृदु चलनि, चितौनि चारु,
देखत ही बनैं पै न कहत बनहियाँ।
सरजू के तीर तीर खेलैं चारौ रघुबीर,
हाथ द्वै द्वै तीर राते रातियै धनुहियाँ ।।९।।

---

[८] तैसे–तेही (बाल०, हरि०, सरदार०, दीन०)। सुभाव०–सुभाव सब कहि बरनत कबिराज (हरि०, सरदार०, दीन०, याज्ञिक०); सुभाव कहि बरनत सब कबिराज (याज्ञिक अ०)।

[९] बनहि याँ–बनै हियाँ (दीन०)।

अथ स्वभाव-वर्णन–(कवित्त)

गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख,
उर उरजातन की बात अवरोहियै।
हँसति कहति बात, फूल से झरत जात,
औंठ अवदात राती रेख मन मोहियै।
स्यामल कपूरधूर की उढ़ौनी ओढ़े, उड़ि
धूरि ऐसी लागी 'केसो' उपमा न टोहियै।
काम ही की दुलही सी काके कुल उलही सु,
लहलही ललित लता सी लोल सोहियै॥१०॥

अथ विभावनालंकार-वर्णन–(दोहा)

कारज को बिनु कारनहि, उदौ होत जिहि ठौर।
तासों कहत बिभावना, 'केसव' कबि-सिरमौर॥११॥

(कबित्त)

पूरन कपूर पान खाए कैसो मुखबास,
अरुन अधर रुचि सुधा सों सुधारे हैं।
चित्रित कपोल, लोल लोचन, मुकुर, ऐन,
अमल झलक, झलकनि मोहि मारे हैं।
भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न किये ही होंहि,
आँजी ऐसी आँखें 'केसोराइ' हेरि हारे हैं।
काहे कों सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अंग सहज सिंगार ही सिंगारे हैं॥१२॥

अन्य विभावना–(दोहा)

कारन कौनहु आन तें, कारज होइ जु सिद्ध।
जानौ यहौ बिभावना, कारज छाँडि प्रसिद्ध॥१३॥

(सवैया)

नेक हू काहू नवाई न बानी बनाई बिना इह बक्र भई है।
लोचन-श्री बिझुकाए बिना बिझुकी सी, रँगे बिनु रागमई है।
'केसव' कौन की दीनी कहौ यह चंदमुखी गति मंद लई है।
छोली न, ह्वै ही गई कटि छीन सु जोबन की यह रीति नई है॥१४॥

[१०] उलही सु–उलही है सु (याज्ञिक०)।
[११] सुधा–सधर (याज्ञिक ग्र०)।
[१३] कारज छाँडि–कारन छाँड़ि (याज्ञिक ग्र०, दीन०)।
[१४] बनाई बिना इह–बनाइ बिना सु तौ (याज्ञिक०); नवाए बिना ही सु (हरि०, सरदार०, दीन०)। रीति–युक्ति (याज्ञिक ग्र०, हरि०, सरदार०, दीन०)।

अथ हेतु-लक्षण—(दोहा)

हेतु होत है भाँति द्वै, बरनत सब कबिराव।
'केसवदास' प्रकास सब, बरनि सभाव अभाव ॥१५॥

अथ सभाव-हेतु-वर्णन—(सवैया)

'केसव' चंदन-बृंद घने अरबिंदन को मकरंद सरीरो।
मालती, बेल, गुलाब, सु केतिक, केतिक, चंपक को बन पीरो।
रंभन के परिरंभन संभ्रम गर्ब घनो घनसार को जीरो।
सीतल मंद सुगंध समीर हर्‌यो इनसों मिलि धीरज धीरो ॥१६॥

अथ अभाव-हेतु-वर्णन—(सवैया)

जान्यो न मैं मद जोबन को उतर्‌यो कब, काम को काम गयो ई।
छाँड्यो न चाहत जीव कलेवर जीव कलेवर छाँडि दयो ई।
आवति जाति जरा दिन लीलति, रूप जरा सब लीलि लयो ई।
'केसव' राम ररौ न ररौ अनसाधे ही साधन सिद्ध भयो ई ॥१७॥

अथ सभाव-अभाव-हेतु-वर्णन—(सवैया)

जा दिन तें बृषभानुललीहि अली मिलए मुरलीधर तें ही।
साधन साधि अगाध सबै बुधि सोधि जो दूत अभूतन में ही।
ता दिन तें दिनमान दुहून की 'केसव' आवति बात कहें ही।
पीछे अकास प्रकासै ससा, बढ़ि प्रेमसमुद्र रहै पहिलें ही ॥१८॥

अथ विरोधाभास-लक्षण—(दोहा)

बरनत लगै बिरोध सो, अर्थ सबै अविरोध।
प्रगट बिरोधाभास यह, समझत सबै सुबोध ॥१९॥

(कवित्त)

परम पुरुष कुपुरुष-सँग सोभिजत,
दिन दानसील पै कुदान ही सों रति है।
सूर-कुल-कलस पै राहु को रहत सुख,
साधु कहें साधु, परदार-प्रिय अति है।

---

[१५] सब-अरु (याज्ञिक अ०); करि (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)।
[१६] गुलाब–गुलाल (बाल०)। सु केतिक–सु केसरि (दीन०)। 'सु केतिक' बाल० में नहीं है और 'चंपक' के बाद 'चंदन' पाठ है। गर्व–संग (बाल०)। जीरो–सीरो (याज्ञिक अ०, दीन०)।
[१७] छाँड्यो न चाहत–छाड्यो ई चाहत (बाल०)। जीव-जति (बाल०); जोरि (हरि०, सरदार०, दीन)।
[२०] रहत–खलल (बाल०, याज्ञिक, अ०)।

अकर कहावत धनुष धरे देखियत,
परम कृपाल पै कृपान कर पति है।
विद्यमान लोचन द्वै, हीन वाम लोचनि सु,
'केसोदास' राजा राम अदभुत गति है ॥२०॥

अथ बिरोध-लक्षण-(दोहा)

'केसवदास' बिरोधमय, रखियत बचन बिचारि।
तासों कहत बिरोध सब कबिकुल सुबुधि सुधारि ॥२१॥

(कबित्त)

सोभत सुबास हास सुधा सों सुधार्‌यो बिधि,
बिष को निवास जैसो तैसो मोहकारी है।
'केसोदास' पावन परम हंस गति तेरी,
पर-हीय-हरन प्रकृति कौने पारी है।
बारक बिलोकि वलबीर से बलीनि कहूँ,
करत बरहि बस, ऐसी बैस बारी है।
एरी मेरी सखी तेरी कैसे कों प्रतीत कीजै,
कृसनानुरागी द्रिग करनानुसारी है ॥२२॥

(सवैया)

आपु सितासित रूप, चितै चित स्याम सरीर रँगैं रँग रातैं।
'केसव' कानन हीन सुनैं, सु कहैं रस की रसना बिन बातैं।
नैन किधौं कोउ अंतरजामी री जानति हौ जिय बूझति तातैं।
दूर लौं दौरत हैं बिन पाइन दूरि दुरी दरसै मति जातैं ॥२३॥

अथ विशेष-लक्षण-(दोहा)

साधन कारन बिकल जहँ, होय साध्य की सिद्धि।
'केसवदास' बखानियै, सो बिसेष परसिद्धि ॥२४॥

(सवैया)

साँप को कंकन, माल कपाल, जटान को जूट, रही जटि आँतैं।
खाल पुरानी, पुरानोई बैल, सु और की और कहै बिष-मातैं।
पारबती-पति-संपति देखि, कहै यह 'केसव' संभ्रम तातैं।
आपुन माँगत भीख भिखारिन देत दई मुँहमाँगी कहाँ तैं ॥२५॥

---

[२१] मय-मों (अन्यत्र)। सुबुधि-सुद्ध (वही)।
[२२] कृसनारागी-कृसनानुसारी (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[२३] हौं जिय-नाहिन (दीन०)।
[२५] भीख०-भीखयै औरहि (बाल०)। माँगी-माँग्यौ (बाल०)।

(कबित्त)

तमोगुन ओप तन ओपित, बिरूप नैन,
लोकनि बिलोप करैं, कोप के निकेत हैं।
मुख बिष भरे, बिषधर, धरे, मुंडमाल,
भूषितबिभूति, भूत प्रेतान समेत हैं।
पातक पिता के जुत, पातकी ही को तिलक,
भावै गीत काम हीं को, कामिनि के हेत हैं।
जोगिन की सिधि, सब जग की सकल सुधि,
'केसोदास' दासनि ज्यों दासनि कों देत हैं ॥२६॥

(सबैया)

बाजि नहीं, गजराज नहीं, रथ पत्ति नहीं, बल गात बिहीनो।
'केसवदास' कठोर न तीक्षन भूलि हू हाथ हथ्यार न लीनो।
जोग न जानत, मंत्र न जाप, न जंत्र न पाठ पढ्यौ न प्रबीनो।
रक्षक लोकनि कौं सु गँवारनि एक बिलोकनि ही बस कीनो ॥२७॥

(कबित्त)

ब्रज की कुमारिका वै लीने सुक सारिका,
पढ़ावैं कोक-कारिकान 'केसव' सबै निबाहि।
गोरी गोरी, भोरी भोरी, थोरी थोरी बैस फिरैं,
देवता सी दौरि दौरि आईं चोरा चोरी चाहि।
बिन गुन, तेरी आन, भृकुटी कमान तानि,
कुटिल कटाक्ष बान, यह अचिरज आहि।
एते मान ढीठ, ईठ मेरे को अदीठ मनु,
पीठ दै दै मारतीं पै चूकतीं न कोऊ ताहि ॥२८॥

(दोहा)

बाँचि न आवै, लिखि कछू, देखत छाँह न घाम।
अर्थ, सुनारी, बैदई, करि जानत पतिराम ॥२९॥

अथ उत्प्रेक्षा-लक्षण—(दोहा)

'केसव' औरहि वस्तु में औरै कीजै तर्क।
उत्प्रेक्षा तासों कहैं जिनके बुद्धि सपर्क ॥३०॥

---

[२६] बिरूप—बिषम (दीन०)। बिलोप करै-बिलोपकर (याज्ञिक अ०)। सुधि-सिद्धि (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)।
[२७] जप-जंत्र (बाल०, दीन०)। जंत्र-तंत्र (हरि०, सरदार०, दीन०)। न जंत्र० न पाठ न मोह पढ्यो (बाल०)।
[२८] कोऊ—नैकु (याज्ञिक अ०); एको (याज्ञिक०)।
[२९] देखत—सूझत (बाल०); समुझै (याज्ञिक०); जानत (दीन०)।

(कवित्त)

हर को धनुष तोरि, लंक तोरि रावन को
बंस तोरि तोरैं जैसे बृद्ध बंस बात हैं।
सत्रुन के सेल-सूल फूल-तूल सहे राम,
सुनि 'केसोराइ' की सौं हिये हहरात हैं।
कामसर हू तें तिक्ष तारे तरुनीन हू के,
लागि लागि उचटि परत ऐसे गात हैं।
मेरे जान जानकी तू जानति है जान कछू,
देखत ही तेरे नैन मैन से ह्वै जात हैं॥३१॥

अंक न, ससंक न, पयोधि हू को पंक न सु-
अंजन न रंजित रजनि निज नारी को।
नाहिनै झलक झलकति तमपान की, न
छिति छाँह छाई, छल नाहीं सुखकारी को।
'केसव' कृपानिधान देखियै बिराजमान,
मानियै प्रमान राम बैन बनचारी को।
लागति है जाइ कंठ नाग दिगपालन के,
मेरे जान सोई कृतु कीरति तिहारी को॥३२॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
विशिष्टालंकारे जात्याद्युत्प्रेक्षालंकार-
वर्णनं नाम नवमः प्रभावः॥९॥

१०

अथ आक्षेपालंकार-वर्णन--(दोहा)

कारज के आरंभ ही, जहँ कीजत प्रतिषेध।
आक्षेपन तासों कहत, बहु बिधि बरनि सुमेध॥१॥

---

[३१] सहे राम--सम सहे (बाल०)। सुनि-सुनि सुनि (बाल०)। की सौंहिये-हियैं (बाल०)।
[३२] छल--छिद्र (दीन०)। देखियै-सुनियै (बाल०)। बैन--बैठे (बाल०)। मेरे जान-जानतु हौं (बाल०)। कृतु-कृच्छ (दीन०)।
[१] आक्षेपन-आक्षेपक (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)।

तीनो काल बखानिजै, भयो जु, भावी, होतु।
कबिकुल को कौतिक कहत प्रति प्रतिषेध उदोतु ॥२॥
बरज्यौं हौं हरि, त्रिपुरहर, बारक करि भ्रूभंग।
सुनौ मदनमोहनि मदन ह्वै ही गयो अनंग ॥३॥
तातैं गौरि न कीजई कौन हु बिधि भ्रूभंग।
को जानै ह्वै जाइ कह प्राननाथ के अंग ॥४॥
कोबिद कपट नकार-सर लगत न तजहि उछाह।
प्रतिपल नूतन नेह को पहिरै नाह सनाह ॥५॥
प्रेम अधीरज, धीरजहि, संसय मरन, प्रकास।
आसिष, धरम, उपाय कहि, सिक्षा 'केसवदास' ॥६॥

अथ प्रेमाक्षेप—लक्षण— (दोहा)

प्रेम बखानत ही जहाँ, उपजत कारज बाधु।
कहत प्रेम-आक्षेप यह, तासों 'केसव' साधु ॥७॥

(कबित्त)

ज्यों ज्यों बहु बरजे मैं, मेरे प्रान प्राननाथ
अंग न लगाइयै जू, आगे दुख पाइबो।
त्यों त्यों हँसि हँसि अति सिर पर उर पर,
कीबो कियो आँखिन के ऊपर खिलाइबो।
एकौ पल इत उत साथ तें न जान दीने,
लीने फिरे हाथ ही कहाँ लौं गुन गाइबो।
तुम तौ कहत तिन्हें छाँडि कै चलन अब,
छाँडत ये कैसें तुम्हें आगे उठि धाइबो ॥८॥

अथ अधैर्याक्षेप—लक्षण— (दोहा)

प्रेम-भंग भय सुनत जहँ उपजत सातुक भाव।
कहत अधीरज को सुकबि, यह आक्षेप सुभाव ॥९॥

(सवैया)

'केसव' प्रात बड़े ही, बिदा कहँ आए प्रिया पहँ नेह नहे री।
आऊँ महाबन ह्वै जु कही, हँसि बोल द्वै ऐसे बर्याइ कहे री॥

---

[३] हरि-हर (बाल०)। बरज्यौं-बरजो (बाल०)
[४] गोरि-गौरि (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०) कीजई-कीजिए (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। यह दोहा बाल० तथा याज्ञिक० में नहीं है।
[५] तजति-करत (बाल०)। पहिरैं-परिहरि (बाल०)। यह दोहा याज्ञिक०में नहीं है।
[८] कियो-कहें (याज्ञिक०)।
[९] भय-बच (हरि०, दीन०)।

को प्रतिउत्तर देइ सखी सुनि लोल, विलोचन यों उमहे री।
सौंहैं कक्कै हरि हारि रहे दिन बीसक लौं असुवाँ न रहे री ॥१०॥

अथ धैर्याक्षेप-लक्षण–(दोहा)

कारज करि कहियै बचन, काज निवारन-अर्थ।
धीरज को आक्षेप यह, बरनत बुद्धि-समर्थ ॥११॥

(कवित्त)

चलत चलत दिन बहुत व्यतीत भए,
सकुचत कत चित चलत चलाए हौ।
जात हैं ते कहौ कहा नाहिनै मिलत आनि,
जानि यह छाँडौ मोह बढ़त बढ़ाए ही।
मेरी सौं तुम्हिं हरि रहियौ सुखहि सुख,
मोहूँ है तिहारी सौंहैं रहौं सुख पाए ही।
चले ही बनत जौ तौ चलियै चतुर पीय,
सोवत ही जैयौ छाँडि जागौंगी हौं आए ही ॥१२॥

अथ संशयाक्षेप-लक्षण–(दोहा)

उपजाएँ संदेह कछु, उपजत काज-बिरोध।
यह संसय-आक्षेप कहि बरनत जिनहिं प्रबोध ॥१३॥

(कवित्त)

गुननि बलित, कल सुरनि कलित गाइ
ललिता ललित गीत श्रवन रवाइहैं।
चित्रित हौ चित्रन में परम विचित्र तुम,
चित्रिनी ज्यों देखि देखि नैननि नवाइहैं।
काम के बिरोधी मत सोधि सोधि साधि सिद्धि,
बोधि बोधि अवधि के बासर गँवाइहैं।
'केसोराइ' की सौं मोहि यह ई कठिन वाको
रसनै रसिक लाल पान को खवाइहैं ॥१४॥

अथ मरणाक्षेप-लक्षण–(दोहा)

मरन निवारन करत जहँ, काज-निवारन होत।
जानहु मरनाक्षेप कबि जौ जिय बुद्धि-उदोत ॥१५॥

---

[१०] बर्‌घाइ–बनाय (हरि०, सरदार०, दीन०)। दिन बीसक–अधरातिक (दीन०)।
[११] कारज–कारन (दीन०)।
[१४] रवाइहैं–रचाइहै (हरि०, सरदार०, दीन०); रमाइहै (बाल०)। चित्रित हौ–चित्रति हैं (याज्ञिक प्र०)।
[१५] कबि–यह (याज्ञिक०, दीन०)।

(कवित्त)

नीके कै किवाँर देहौं द्वार द्वार दर बार,
'केसोदास' आस पास सूरज न छावैगो।
छिन में छवाय लैहौं ऊपर अटानि आजु,
आँगन पटाइ लैहौं जैसे मोहिं भावैगो।
न्यारे न्यारे नारदान मूँदौंगी झरोखा-जाल
पाइहै न पानी, पौन आवन न पावैगो।
माधव तिहारे पीछे मोपहँ मरन सूढ़,
आवन कहत सु धौं कौन पैंडे आवैगो ॥१६॥

अथ आशिषाक्षेप-लक्षण—(दोहा)

आसिष पिय के पंथ को, दीजै दुख्ख दुराइ।
आसिष को आक्षेप यह, कहत सकल कबिराइ ॥१७॥

(कवित्त)

मंत्री मित्र पुत्र जन 'केसव' कलत्र गन,
सोदर सजन जन भट सुखसाज सों।
एतो सब होतै जात जौ पै है कुसल गात,
अबहीं चलौ कै प्रात सगुन-समाज सों।
कीनो जु पयान-बाध छमिजै सु अपराध,
रहिजै न पल आध, बँधिजै न लाज सों।
हौं न कहौं, कहत निगम सब अब तब
राजन परम हित आपने ही काज सों ॥१८॥

अथ धर्माक्षेप-लक्षण—(दोहा)

राखत अपने धर्म कों, जहँ कारज रहि जाइ।
धर्माक्षेप सदा यहै, बरनत सब कबिराइ ॥१९॥

(कवित्त)

जौ हौं कहौं 'रहिजै' तौ प्रभुता प्रगट होति,
'चलन' कहौं तौ हित-हानि, नाहिं सहनै।
'भावै सो करहु' तौ उदास भाव प्राननाथ
'साथ लै चलहु' कैसे लोकलाज बहनै।

---

[१६] छावैगो—आवैगो (हरि०, दीन०)। पटाइ लैहौं—पटाइ देहौं (हरि०, दीन०)। मूँदौंगी—मूँदिहौं (हरि०, सरदार०, दीन०)। पाइहै—जाइहै (याज्ञिक०, दीन०)। पानी—पैंडो (हरि०, सरदार०)।

'केसोराइ' की सौं तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जौ पै नाहीं राजि रहनै।
तैसियै सिखावौ सीख तुम ही सुजान पिय,
तुमहि चलत मोहि कैसो कछु कहनै ॥२०॥

अथ उपायाक्षेप-लक्षण—(दोहा)

कौनहु एक उपाय करि, रोकिय प्रिय-प्रस्थान।
तासों कहत उपाय कबि, यह आक्षेप सुजान ॥२१॥

(सवैया)

मोकों सबै ब्रज की जुवती हर-गौरि समान सोहागिनि जानै।
ऐसी को गोपी गोपाल तुम्हैं बिन, गोकुल में बसिबो उर आनै।
मूरति मेरी सुदीठ कै ईठ चलौ, कि रहौ जौ कछु मन मानै।
प्रेमनि छेमनि आदि दै 'केसव' कोऊ न मोहि कहूँ पहिचानै ॥२२॥

अथ शिक्षाक्षेप—(दोहा)

सुख ही सुख जहँ राखिजै, सिख ही सिख सुखदानि।
सिक्षाक्षेप कहों बरनि, छप्पद बारह बानि ॥२३॥

अथ चैत्र-वर्णन—(छप्पय)

फूली लतिका ललित तरुनितर, फूले तरुबर।
फूली सरिता सुभग, सरस फूले सब सरबर।
फूली कामिनि, कामरूप करि कंतनि पूजहिं।
सुक सारो कुल हँसै, फूलि कोकिल कल कूजहिं।
कहि 'केसव' ऐसी फूल महँ सूल न फूलहिं लाइयै।
पिय आपु चलन की का चली चित्त न चैत चलाइयै ॥२४॥

अथ वैशाख-वर्णन—(छप्पय)

'केसवदास' अकास अवनि बासित सुबास करि।
बहति पवन गति मंद गात मकरंद-बिंदु धरि।
दिसि बिदिसनि छबि लागि, भाग पूजित पराग बर।
होत गंध हिय अंध बधिर भौंरा बिदेसि नर।

---

[२०] राजि-राजा (दीन०); राज (बाल० याज्ञिक०, हरि०, सरदार०)। कैसी-जैसो (याज्ञिक अ०)।
[२१] कौनहु०—राखत अपने धर्म करि (बाल०)। यह आक्षेप—केसवदास (दीन०)।
[२२] मोकों—मोसों (बाल०)। हर—हरि (बाल०, सरदार०)। सुदीठि०--सुईठ कै डीठ (याज्ञिक अ०) प्रेमनि०—प्रेमिनि छेमिनि (याज्ञिक अ०, दीन०)।
[२४] कुल हँसै--कलकेलि (याज्ञिक०)।

पुनि सुखद, सुखद सिख सीखियत, रति सिखई सुख-साख में।
वर बिरहिन बधत बिसेष करि काम बिसिष बैसाख में ॥२५॥

अथ ज्येष्ठ-वर्णन—(छप्पय)

एक भूतमय होत भूत, भजि पंचभूत भ्रम।
अनिल, अंबु, आकास, अवनि ह्वै जात आगि सम।
पंथ थकित, मद मुकित सुखित सर सिंधुर जोवत।
काकोदर कर-कोष, उदर-तर केहरि सोवत।
प्रिय प्रबल जीव इहि बिधि अबल, सकल बिकल जल थल रहत।
तजि 'केसवदास' उदास मति, जेठ मास जेठे कहत ॥२६॥

अथ आषाढ़-वर्णन—(छप्पय)

पवन चक्र परचंड चलत चहुँ ओर चपल गति।
भवन भामिनिहि तजत भ्रमति मानहु तिनकी मति।
संन्यासी इहि मास होत इक आसनबासी।
पुरुषन की को कहै भए पंछियौ निबासी।
इहि समय सेज सोवन लियो श्रीहि साथ श्रीनाथ हू।
कहि 'केसवदास' आषाढ़ चल मैं न सुन्यों श्रुतिगाथ हू ॥२७॥

अथ श्रावण-वर्णन—(छप्पय)

'केसव' सरिता सकल मिलित सागर मन मोहैं।
ललित लता लपटात तरुन तन तरबर सोहैं।
रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुँ ओरन।
मनभावन कहँ भेंटि भूमि कूजत मिस मोरन।
इहि रीति रमन रमनी सकल लागे रमन रमावन।
प्रिय गमन करन की को कहै गमन सुनिय नहि सावन ॥२८॥

अथ भाद्रपद-वर्णन—(छप्पय)

घोरत घन चहुँ ओर घोष निर्घोषनि मंडहि।
धाराधर धरि धरनि मुसलधारनि जल छंडहि।
झिल्लीगन-झंकार पवन झुकि झुकि झकझोरत।
बाघ सिंघ गुंजरत पुंज-कुंजर तरु तोरत।
निसिदिन बिसेष निरसेष मिटि जात, सु ओली ओड़िये।
निज देस पियूष, बिदेस बिष भादौं भवन न छोड़िये ॥२९॥

---

[२५] पूजित–पूरित (याज्ञिक अ०, दीन०, हरि०, सरदार०)। बधिर–बौर (दीन०, सरदार०)।

[२८] रुचि–चित (बाल०); चिरु (अन्यत्र)। इहि०–इहि रमनीय रमन रमनीनि कहुँ रमन अरु लगे रमावन (बाल०)। लागे० रमारमन लागे रमन (याज्ञिक०)।

अथ आश्विन-वर्णन–(छप्पय)

प्रथम पिंड हित प्रगट पितर पावन घर आवहिं।
नव दुर्गा नर पूजि स्वर्ग अपबर्गनि पावहिं।
छत्रनि दै छतपत्ति लेत भुव लै सँग पंडित।
'केसवदास' अकास अमल, जल जलजनि मंडित।
रमनीय रमन रजनीस रुचि रमारमन हू रासरति।
कल केलि कलपतरु क्वार महँ कंत न करहु बिदेस-मति ॥३०॥

अथ कार्त्तिक-वर्णन–(छप्पय)

बन, उपबन, जल, थल, अकास दीसंत दीपगन।
सुख ही सुख सुखराति जुवा खेलत दंपति-जन।
देव-चरित्र बिचित्र चित्र चित्रित आँगन घर।
जगति जगत जगदीस-जोति, जगमगत नारि नर।
दिन दान न्हान गुनगान-हरि जनम सुफल करि लीजियै।
कहि 'केसवदास' बिदेस-मति कंत न कातिक कीजियै ॥३१॥

अथ मार्गशीर्ष-वर्णन–(छप्पय)

मासन में हरि-अंस कहत यासों सब कोऊ।
स्वारथ परमारथनि देत भारथ महँ दोऊ।
'केसव' सरिता सरनि फूल फूले सुगंध गुर।
कूजत कल कलहंस, कलित कलहंसनि के सुर।
दिन परम नरम सीतल गरम करम करम यह पाइ रितु।
करि प्राननाथ परदेस कहँ मारगसिर मारग न चितु ॥३२॥

अथ पौष-वर्णन–(छप्पय)

सीतल जल, थल बसन, असन सीतल अनरोचक।
'केसवदास' अकास अवनि सीतल असु-मोचक।
तेल, तूल, तामोर, तपन, तापन, नव नारी।
राज रंक सब छाँड़ि करत इनहीं अधिकारी।
लघु द्यौस दीह रजनी रमन होत दुसह दुख रूस में।
यह मन क्रम बचन बिचारि पिय पंथ न बूझिय पूस में ॥३३॥

अथ माघ-वर्णन–(छप्पय)

बन, उपबन, केकी, कपोत, कोकिल कल बोलत।
'केसव' भूले भँवर भरे बहु भाइनि डोलत।

---

[३०] रमनीय०–रमनीय रजनि (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[३१] सुखराति–दिनरात (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)।
[३२] सरनि–सकल (बाल०)।

मृगमद, मलय, कपूरधूर धूसरित दसौ दिसि।
ताल, मृदंग, उपंग सुनत संगीत गीत निसि।
खेमलत बसंत संतत सुघर संत असंत अनंत गति।
घर नाह न छाँडिय माघ में जौ मन माहि सनेह-मति ॥३४॥

अथ फाल्गुन-वर्णन–(छप्पय)

लोकलाज तजि राज रंक निरसंक बिराजत।
जोइ आवत सोइ कहत करत पुनि हसत न लाजत।
घर घर जुवती जुवनि जोर गहि गाँठिनि जोरहिं।
बसन छीनि मुख माँडि, आँजि लोचन तिन तोरहिं।
पटबास सुबास अकास उड़ि भुवमंडल सब मंडियै।
कह 'केसवदास' बिलासनिधि फागु न फागुन छंडियै ॥३५॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
विशिष्टालंकारवर्णने आक्षेपालंकारवर्णनं
नाम दशमः प्रभावः ॥१०॥

११

अथ क्रमालंकार-वर्णन–(दोहा)

आदि अंत भरि बरनियै, सो क्रम 'केसवदास'।
अनुगनना सों कहत हैं जिनके बुद्धि प्रकास ॥१॥

(छप्पय)

धिक मंगन बिन गुनहिं, गुन सु धिक सुनत न रिज्झय।
रिज्झकु धिक बिन मौज, मौज धिक देत जु खिज्झय।
दीबो धिक बिन साँच, साँच धिक धर्म न भावै।
धर्म सु धिक बिनु दया, दया धिक अरि कहँ आवै।
अरि धिक चित्त न सालई, चित धिक जहँ न उदार मति।
मति धिक 'केसव' ज्ञान बिन, ज्ञान सु धिक बिनु हरि-भगति ॥२॥

(सवैया)

सोभति सो न सभा जहँ बृद्ध न, बृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहीं।
ते न पढ़े जिन साधु न साधित दीह दया न दिपै जिन माहीं।

[३५] फागुन–का गुन (दी॰)।

सो न दया जू न धर्म धरै धर, धर्म न सो जहँ दान बृथाहीं।
दान न सो जहँ साँच न 'केसव', साँच न सो जु बसै छल छाहीं ॥३॥

(छप्पय)

तजहि जगत बिन भवन, भवन तजि तिय बिन कीने।
तिय तजि जु न सुख देइ सुख्ख तजि संपति-हीने।
संपति तजि बिन दान, दान तजि जहँ न बिप्र मति।
बिप्र तजहि बिन धर्म धर्म, तजि यहि बिन भूपति।
तजि भूप भूमि बिन, भूमि तजि दीह दुर्ग बिन जो बसै।
तजि दुर्ग सु 'केसवदास' कहि जहाँ न जल पूरन लसै ॥४॥

अथ गणना-एक-वर्णन–(दोहा)

एक आतमा, चक्र रबि, एक सुक्र की दृष्टि।
एकै दसन गनेस को, जानति सिगरी सृष्टि ॥५॥

द्विवर्णन–(दोहा)

नदी-कूल द्वै, राम-सुत, पक्ष, खड़ग की धार।
द्वै लोचन, द्विज-जन्म, पद, भुज, अस्विनीकुमार ॥६॥
लेखनि-डंक, भुजंग की रसना, अयननि जानि।
गजरद, मुख चुकरेंड के, कक्षासिखा बखानि ॥७॥

त्रिवर्णन–(दोहा)

गंगा-मग, गंगेस-दृग, ग्रीव-रेख, गुन लेखि।
पावक, काल, त्रिसूल, बलि, संध्या तीनि बिसेषि ॥८॥
पुस्कर, बिक्रम, राम, बिधि, त्रिपुर, त्रिबेनी, बेद।
तीनि पाप, परिताप, पद ज्वर के तीन, सखेद ॥९॥

चतुर्वर्णन–(दोहा)

बेद, बदन-बिधि, बारिनिधि, हरि-बाहन-भुज चारि।
सेना अंग, उपाय, जुग, आस्रम, बरन बिचारि ॥१०॥
सुरनायक-बारन-रदन, 'केसव' दिसा बखानि।
चतुरब्यूह-रचना चमू, चरन, पदारथ जानि ॥११॥

[३] साधित-साधुन (याज्ञिक प्र०)। जिन-जिय (दीन०) कीने–हिन्नेउ (सहज०)।
[४] सुख्ख-सुख जु (दीन०); सुखहि (सहज०)। बिन धर्म-जु बिधर्म (बाल०)।
तजियहि-तजि जिहि (दीन०)।
[९] बेद–देव (अन्यत्र)। पाप-ताप (बाल०, सहज०)। सखेद-सभेव (अन्यत्र)।

पंच-वर्णन—(दोहा)

पंडुपूत, इंद्रिय, कवल, रुद्रबदन, गति बान।
लक्षन पंच पुरान के, पंच-अंग अरु प्रान ॥१२॥
पंचवर्ग, तरुपंच, अरु पंचसब्द परमान
पंचसंधि, पंचाग्नि भनि, कन्या पंच समान ॥१३॥
पंच भूत, पातक प्रगट पंचजज्ञ, जिय जानि।
पंचगव्य, माता, पिता, पंचामृतनि बखानि ॥१४॥

षट्-वर्णन—(दोहा)

कुलिस कोन षट, तर्क षट दर्सन, रस, रितु अंग।
चक्रवर्ति, सिवपुत्र-मुख, सुनि षटराग प्रसंग ॥१५॥
षटमाता षट बदन का, षट गुन बरनहु मित्त।
आततइ नर षट गनहु, षटपद मधुप, कबित्त ॥१६॥

सप्त-वर्णन—(दोहा)

सात रसातल, लोक, मुनि, द्वीप, सूरहय, बार।
सागर, सुर, गिरि, ताल. तरु, अन्न, ईति, करतार ॥१७॥
सात छंद, सातो पुरी, सात तुचा, सुख सात।
चिरंजीव मुनि, सात नर, सप्तमातृका, तात ॥१८॥

अष्ट-वर्णन—(दोहा)

जोग-अंग, दिगपाल, बसु, सिद्धि, कुलाचल चारु।
अष्टकुली अहि, व्याकरन, दिग्गज, तरुनि बिचारु ॥१९॥

नव-वर्णन—(दोहा)

अंगद्वार, भूखंड, रस, बाघिनि-कुच, निधि, जानि।
सुधाकुंड, ग्रह, नाड़िका, नवधा भक्ति बखानि ॥२०॥

दस-वर्णन—(दोहा)

रावन-सिर, श्रीराम के दस अवतार बखानि।
बिस्वेदेवा, दोष दस, दिसा, दसा दस जानि ॥२१॥

(कबित्त)

एक थल थित पै बसत प्रीति जन जिय,
द्विकर पै देस देस कर को धरत है।

---

[१२] कवल कँमल (सहज०)। गति-गनि (बाल०, सहज०)।
[१८] मुनि-ऋषि (दीन०)। सप्त०-सूर प्रमानिक सात (अन्यत्र)। तात-घात (दीन०)। [२०] नाड़िका-नाटिका (दीन०, हरि०)।
[२१] श्रीराम-बिष्णु के (दीन०)।

त्रिगुन कलित बहु बलित ललित गुन,
गुनिन के गुनतरु फलित करनु है।
चारि ही पदारथ को लोभ चित नित नित,
दीबे कौं पदारथ-समूह को परनु है।
'केसोदास' इंद्रजीत भूतल अभूत, पंच-
भूत की प्रभूति भवभूति को सरनु है ॥२२॥
दरसै न सुर से नरेस सिर नावैं नित,
षठ दरसन ही को सिर नाइयतु है।
'केसोदास' पुरी, पुरपुंजन को पालक, पै
सात ही पुरी सों पूरो प्रेम पाइयतु है।
नायका अनेकन को नायक नगर नव,
अष्ट नायकनि ही सों मन लाइयतु है।
नवधाई हरि को भजन इंद्रजीतजू को,
दस अवतार ही को गुन गाइयतु है ॥२३॥

अथ आशिष-वर्णन—(दोहा)

मातु, पिता, गुरु, देव, मुनि कहत जु कछु सुख पाइ।
ताही सों सब कहत हैं आसिष कबि कबिराइ ॥२४॥

(कबित्त)

मलयमिलित बास, कुंकुमकलित, जुत-
जावक, कुसुम-नख पूजित, ललित कर।
जटित जराइ की जँजीर बीच नीलमनि,
लागि रहे लोकन के नैन मानो मनहर।
चिरु चिरु सोहौ रामचंद्र के चरन जुग,
'केसोदास' दीबो करें आसिष असेष नर।
हय पर, गय पर, पालिक सु पींठ पर,
अरि-उर पर अवनीसन के सीस पर ॥२५॥

(सवैया)

होय धौं कोऊ चराचर मध्य में उत्तम जाति अनुत्तम ही को।
किंनर कै नर नारि बिचारि कि बास करै थल कै जल ही को।
अंगी अनंग कि मूढ़ अमूढ़ उदास अमीत कि मीत सही को।
सो अथवै कबहूँ जनि 'केसव' जाके उदोत उदौ सब ही को ॥२६॥

---

[२३] चारि ही—चारिहूँ (बाल०, सहज०)।
[२६] हय पर०—पन्नग पतंगु अरु किंनर असुर सुर मसक गयंद सम चाहत अवरवर (याज्ञिक अ०)।

अथ प्रेमालंकार-वर्णन–(दोहा)

कपट निपट मिटि जाइ जहँ उपजै पूरन क्षेम।
ताही सों सब कहत हैं, 'केसव' उत्तम प्रेम ॥२७॥

(सवैया)

कछु बात सुनै सपने हू बियोग की होन चहै दुइ टूक हियो।
मिलि खेलिय जा सह बालक तैं, कहि तासों अबोलो क्यों जात कियो।
कहिजे यह 'केसव' नैननि सों बिन कार्जहि पावक-पुंज पियो।
सखि तू बरजै अरु लोग हँसे सब, काहे को प्रेम को नेम लियो ॥२८॥

अथ श्लेषालंकार-वर्णन–(दोहा)

दोइ तीनि अरु भाति बहु आनत जामें अर्थ।
स्लेष नाम तासों कहत, जे हैं बुद्धिसमर्थ ॥२९॥

द्वि-अर्थ–(कबित्त)

धरत धरनि, ईस सीस चरनोदकनि,
गावत चतुरमुख सब सुखदानियै।
कोमल कमल कर कमलाकर कमल
कलित बलित गुन क्यों न उर आनियै।
हिरनकसिपु दानकारी प्रहलाद हित,
द्विजपद उरधारी बेदन बखानियै।
'केसोदास' दारिद दुरद के बिदारिबे कौं,
एकै नरसिंह की अमरसिंह जानियै ॥३०॥

त्रि-अर्थ–(कबित्त)

परम बिरोधी अबिरोधी ह्वै रहत सब,
दानिन के दानि, कबि 'केसव' प्रमान है।
अधिक अनंत आप, सोहत अनंत संग,
असरनसरन, निरक्षक निधान है।
हुतभुक हित मति, श्रीपति बसत हिय,
भावत है गंगाजल, जग को निदान है।

---

[२७] उत्तम–उपमा (बाल०)।
[२८] सुनै–कहै (बाल०)। सह सँग (दीन०)।
[२९] जे हैं–जिनकी (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)।
[३०] कमल-भ्रमल (हरि०, सरदार०, दीन०)। कर-पद (याज्ञिक भ्र०, हरि०, सरदार०, दीन०) कलित-ललित (याज्ञिक भ्र०, दीन०)।

'केसोराइ' की सौं कहैं 'केसोराइ' देखि देखि,
रुद्र की समुद्र की अमरसिंह रान है ॥३१॥

चतुरर्थ–(कवित्त)

दानवारि सुखद, जनकजातनानुसारि,
करषत धनु गुन सरस सुहाए हैं।
नरदेव क्षयकर करम हरन, खर
दूषन के दूषन सु 'केसोदास' गाए हैं।
नागधर प्रिय मानि, लोकमाता सुखदानि,
सोदर सहायक नवल गुन भाए हैं।
ऐसे राजा राम, ब्रजराम, कै परसुराम,
कैधौं है अमरसिंह मेरे उर भाए हैं ॥३२॥

पंच-अर्थ–(कवित्त)

भावत परम हंस जात गुन सुनि सुख
पावत संगीत मीत बिबुध बखानिये।
सुखद सकति धर समरसनेही बहु,
बदन बिदित जस 'केसोदास' गानिये।
राजै द्विजराज पद भूषन बिमल कम-
लासन प्रकास परदार प्रिय मानियै।
ऐसे लोकनाथ की त्रिलोकनाथ नाथनाथ,
कैधौं जगनाथ रामनाथ जग जानियै ॥३३॥

(दोहा)

तिन में एक अभिन्नपद, और भिन्नपद जानि।
स्लेष - बुद्धि द्वै वेष की 'केसवदास' बखानि ॥३४॥

अभिन्नपद–(कवित्त)

सोहति सुकेसी, मंजुघोषा, रति, उरबसी,
राजा राम मोहिबे को मूरति सोहाई है।

[३१] रहत -कहत (अन्यत्र)।
[३२] करषत–बरषत (बाल०)। ब्रजराम बलराम (दीन०)।
[३३] मीत–सीत (बाल०)। नाथनाथ०-नाथनाथ भूतल को नाथ किधौं इंद्रजीत जानिये (याज्ञिक०); रघुनाथ किधौं नाकनाथ किधौं ब्रह्मनाथ जानिये (याज्ञिक अ०); रघुनाथ कैधौं नाथनाथ राजा रामसिंह जानिये (हरि०); नाथनाथ कैधौं रघुनाथ कै अमरसिंह जानियै (दीन०); जगरनाथ अंबरांत किधौं संभु··· (बाल०)।
[३४] बुद्धि–सुद्धि (याज्ञिक०)। वेष भेद (दीन०)।

कलरव कलित सुरनि राग रंग जुतु,
बदन कमल षटपद छबि छाई है।
भृकुटी कुटिल धनु, लोचन कटाक्ष सर,
भेदिजत मंजु मन तन सुखदाई है।
प्रमुदित पयोधर सौदामिनि साथ नाथ,
काम की सी सेना कामसेना बनि आई है ॥३५॥

अथ भिन्नपद-लक्षण—(दोहा)

पद ही में पद काटियै ताहि भिन्नपद जानि।
भिन्न भिन्न पुनि पदन के, उपमा स्लेष बखानि ॥३६॥
वृषभ बाहिनी अंग उर, वासुकि लसत प्रबीन।
सिव-सँग सोहै सर्बदा सिवा कि राइ प्रबीन ॥३७॥

(कवित्त)

राजै रज 'केसोदास' टूटत अरुन लार,
प्रतिभट अंकन तें अंक पसरतु है।
सेना सुंदरीन के बिलोकि मुख भूषननि,
किलकि किलहि जाही ताही कों धरतु है।
गाढ़े गढ़ खेल ही खिलौननि ज्यों तोरि डारै,
जग जय जस चारु चंद्र कौं अरतु है।
चंद्रसेन भुवपाल अंगन बिसाल रन,
तेरो करवाल बाललीला सी करतु हैं ॥३८॥

(दोहा)

बहुज्यौ एक अभिन्नक्रिय अबिरुद्धक्रिय जान।
पुनि बिरुद्धकर्मा अवर नियम बिरोधी, मान ॥३९॥

---

[३५] मूरति–सूरति (याज्ञिक०, हरि० दीन०)। सुरनि–सुरभि (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०)। मंजु०–मर्मतनु तन (याज्ञिक०); तनु मनु तनु (याज्ञिक अ०); तन मन अति (हरि०, दीन०); मनु तरु तन (सरदार०)। सौदामिनि०–दामिनी सी (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०)।

[३६] भिन्न-अर्थ (दीन०)।

[३७] अंक परसतु–अंकनि भरतु (याज्ञिक०)। जय–धर (याज्ञिक अ०)। अंगन–आंगन (सरदार०, दीन०)। चंद्रसेन०–एलिच बहादुर नवाब खानखाना सूय जाको (याज्ञिक०)।

अथ अभिन्नक्रिय–(कवित्त)

प्रथम प्रयोगि जतु बाजि द्विजराज प्रति
सुबरन सहित न बिहित प्रमान है।
सजल सहित अंग बिक्रम प्रसंग रंग,
कोष तें प्रकासमान धीरज-निधान है।
दीन को दयाल प्रतिभटन कों साल करै,
कीरति को प्रतिपाल जानत जहान है।
जात हैं बिलीन ह्वै दुनी के दान देखि राम-
चंद्रजू को दान कैधौं 'केसव' कृपान है ॥४०॥

अथ अविरुद्धक्रिय–(सवैया)

कछु कान्ह सुनौ कल बोलति कोकिल काम कौ कीरति गावति सी।
पुनि बातैं कहै कल भाषिनि कामिनि केलि कलानि पढ़ावति सी।
सुनि बाजति बीन प्रबीन नवीन सुराग हिये उपजावति सी।
कहि 'केसवदास' प्रकास बिलास सबै बन सोभ बढ़ावति सी ॥४१॥

अथ विरुद्धकर्मो–(सवैया)

दोऊ भगवंत तेजवंत बलवंत अति,
दुहुन की बेदन बखानी बात ऐसी है।
दोऊ जानैं पुन्य पाप, दुहुन के रिषि बाप,
दुहुन की देखिजत सूरति सुदेसी है।
सुनौ देवदेव बलदेव, कामदेव प्रिय,
'केसोराइ' की सौं तुम कहौ तैसी जैसी है।
बारुनी को राग होत सूरजु करत अस्त,
उदौ द्विजराज को जु होत यह कैसी है ॥४२॥

अथ नियम–(कबित्त)

बैरी गाइ बाँभन को ग्रंथनि में सुनिजत,
कबिकुल ही कें सुबरनहर काज है।
गुरु सेजगामी एक बालकै बिलोकिजत,
मातँगनि ही को मतवारे को सो साज है।

[३९] क्रिय-कृष्टु (याज्ञिक प्र०)। और०–अचिरजु कृतु उर आनु (बाल०); और भिन्नक्रिय (दीन०)।
[४०] सजल-सकल (बाल०)। साल-ब्याल (बाल०)।
[४१] बोलति-कूकति (दीन०)। पढ़ावति-बढ़ावति (बाल०)। बढ़ावति-सिखावति (बाल०)।

अरि नगरीन प्रति होत है अगम्यागौन,
दुर्गन ही 'केसोदास' दुर्गति सी आज है।
दुख ही को खंडन है मंडन सकल जग,
चिरु राम राज करौ जाको ऐसो राज है ॥४३॥

अथ विरोधी—(सवैया)

कृस्न हरैं हरये हरैं संपत्ति, संभु बिपत्ति यहै अधिकाई।
जातक काम अकामन के हितु, घातक काम सकाम सहाई।
छाती मैं लच्छि दुरावत वे तौ, फिरावत ये सबके सँग धाई।
जद्यपि 'केसव' एक तऊ हरि तैं हर सेवक कौं सति भाई ॥४४॥

अथ सूक्ष्मालंकार—(दोहा)

कौनहु भाव प्रभाव तें, जानिय जिय की बात।
इंगित तें आकार तें, कहि सूक्षम अवदात ॥४५॥

सवैया

सखि सोभित गोपसभा मँह गोबिद बैठे हुते दुति कों धरिकै।
जनु 'केसव' पूरन चंद लसै चित चारु चकोरन को हरिकै।
तिनको उलटो करि आनि दियो केहु नीरज नीर नयो भरिकै।
कहु काहे तें नेकु निहारि मनोहर फेरि दियो कलिका करिकै ॥४६॥

---

[४३] ग्रंथनि में०—कीलै सब काल जहाँ (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन०) । दुख ही को०—राजा दसरथसुत राजा रामचंद्र तुम (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०, दीन) । राम—चिरु (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार, दीन०) !

[४४] काम०—कायम कामनि (बाल०) । सति—सित (याज्ञिक अ०) । सत (हरि०, सरदार०, दीन०) ।

[४५] जिय—मन (बाल०) । कहि—सुनि (बाल०) ।

[४६] सोभित—मोहन (याज्ञिक अ०); सोहत (दीन०); सोहन (अन्यत्र) । कहीं कहीं यह सवैया है—

बैठी हुती वृषभानुकुमारि सखीन के मंडल मध्य प्रबीनी।
लै कुम्हिलानो सो कंज परी जू कोऊ इक ग्वालिनि पायँ नवीनी।
बंदन सौं छिरक्यो वह वाकहँ पान दये करुना रस भीनी।
चंदन चित्र कपोल बिलेपि कै अंजन आँजि बिदा करि दीनी ॥

अथ लेशालंकार–(दोहा)

चतुराई के लेस तें, चतुर न समझत लेस।
कहत सु कोबिद कबि सवै तासों उत्तम लेस ॥४७॥

(सवैया)

खेलत हैं हरि बागे बने जहँ बैठी प्रिया रति तें अति लोनी।
'केसव' कैसेहुँ पीठि में दीठि परी कुच-कुंकुम की रुचि रोनी।
मातु समीप दुराई भलें तिहि सातुक भावन की गति होनी।
धूरि कपूर की पूरि बिलोचन सूँघि सरोरुह ओढ़ि ओढ़ोनी ॥४८॥

अथ निदर्शनालंकार–(दोहा)

कौनहु एक प्रकार तें, सत अरु असत समान।
करियै प्रगट निदर्सना, समुझत सकल सुजान ॥४९॥

(कबित्त)

तेई करैं चिर राज, राजन में राजैं राज,
तिनहीं को जस लोक लोकनि अटतु है।
जीवन, जनम तिनहीं के धन्य 'केसोदास'
औरन को पसु सम दिन निघटतु है।
तेई प्रभु परम प्रसिद्ध पुहुमी के पति,
तिनही की प्रभु प्रभुताई को रटतु है।
सूरज समान सोम मित्र हू अमित्र कहँ,
दुख सुख आपने उदै ही प्रगटतु है ॥५०॥

अथ ऊर्जालंकार–(दोहा)

तजै न निज हंकार कों, जद्यपि घटै सहाइ।
ऊर्ज नाम तासों कहैं, 'केसव' सब कबिराइ ॥५१॥

(सवैया)

को बपुरा जो मिल्यो है विभीषन है कुलदूषन जीवैगो कौ लौं।
कुंभकरन्न मर्‌यौ मघवारिपु तौ रे कहा न डरौं जम सौं लौं।

[४७] कहत०–बरनत कबि कोबिद सबै सीता को 'केसव' बेस (याज्ञिक०); बरनत कबि 'केसव' सबै वाको कोबिद लेस (याज्ञिक अ०)।
[४८] गति–मति (बाल०); रति (याज्ञिक०)।
[५०] आपने०–निज उदै अस्त (दीन०)।
[५१] बाल० मैं नहीं है। सरदार० में यह रूप है–
अहंकार को ना तजै सो ऊर्जालंकार। कबि कोबिद सब कहत हैं 'केसबदास' उदार।

श्रीरघुनाथ के गातन सुंदरि जानहि तूँ कुसलात न तौ लौं।
साल सबै दिगपालन कौं कर रावन के करवाल है जौ लौं ॥५२॥

अथ रसवत् अलंकार—(दोहा)

रसमय होइ सु जानियै, रसवत् 'केसवदास'।
नव रस को संक्षेप ही, समुझौ करत प्रकास ॥५३॥

अथ शृंगार रसवत्—(सवैया)

आन तिहारी, न आन कहौं, तन में कछु, आनन आन ही कैसौ।
'केसव' स्याम सुजान सुरूप न जाइ कह्यो मन जानत जैसौ।
लोचन सोभहि पीवत जात, समात, सिहात, अघात न तैसौ।
ज्यौ न रहात बिहात तुम्हैं बलि जात सु बात कहौ नेक बैसौ ॥५४॥

अथ रौद्र रसवत्—(छप्पय)

जेहि सर मधुमद मर्दि महा मुर मर्दन किन्नउ।
मार्‌यो करकस नरक संख हनि संख जु लिन्नउ।
निष्कंटक सुर कटक कर्‌यो कैटभ-बपु खंड्यउ।
खरदूषन त्रिसिरा कबंध तरुखंड विहंड्यउ।
कुंभकरन जेहि मद हर्‌यो, पल न प्रतिज्ञा तें टरउँ।
तेहि बान प्रान दसकंठ-के कंठ दसौ खंडित करउँ ॥५५॥

अथ वीर रसवत्—(छप्पय)

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्ब सर्ब पसु।
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउँ इंद्र अब।
बिद्याधरन अबिद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब।
लै करौं दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाइ जल।
सुनि सूरज सूरज्ज उवत ही करौं असुर संसार बल ॥५६॥

अथ करुण रसवत्—(सवैया)

दूर तें दुंदुभि दीह सुनी न सुनी जन पुंज की गुंजन गाढ़ी।
तोरन तार न तूर बजैं बरम्हावत भाट न गावत ढाढ़ी।

---

[५२] है कुल—ह्वै० (याज्ञिक०, हरि०, दीन०)।
[५४] नेक-टुक (दीन०)।
[५५] संहर्‌यो—मद हर्‌यो (हरि०, दीन०)।
[५६] गहि—धरि (बाल०)। लै० बरु होइ (अन्यत्र)। दासि०—अदिति की दासि दिति (बाल०)। संसार—संहार (अन्यत्र)।

बिप्र न मंगल मंत्र पढ़ैं अरु देखी न बारबधू ढिग ठाढ़ी।
'केसव' तात के गात, उतारति आरति, आरति मातहि बाढ़ी ॥५७॥

अथ भयानक रसवत्–(सवैया)

राम की बाम जु आनी चुराई सु लंक में मीचु की बेलि बई जू।
क्यों रन जीतहुगे तिनसों जिनकी धनुरेख न नाखी गई जू।
बीस बिसे बलवंत हुते, जु हुती दृग 'केसव' रूप रई जू।
तोरि सरासन संकर को पिय सीय स्वयंबर क्यों न लई जू ॥५८॥
बालि बली न बच्यो पर खोरि सु क्यों बचिहौ तुम कै निज खोरहि।
'केसव' छीरसमुद्र मथ्यो कहि कैसें न बाँधिहै सागर थोरहि।
श्रीरघुनाथ गनौ असमर्थ न देखि बिना रथ हाथिन घोरहि।
तोर्‌यो सरासन संकर को जिहि सोऽब कहा तुव लंक न तोरहि ॥५६॥

अथ बीभत्स रसवत्–(त्रिभंगी छंद)

सिगरे नरनाइक असुर बिनाइक राकसपति हिय हारि गए।
काहू न उठायो, थल न छुड़ायो, टर्‌यो न टार्‌यो भीत भए।
इन राजकुमारन अति सुकुमारन लै आए हैं, पैज करै।
ब्रतभंग हमारो भयो तुम्हारो रिषि तप-तेज न जानि परै ॥६०॥

अथ अद्‌भुत रसवत्–(कवित्त)

आसीबिष, सिंधुबिष, पावक सों नातो कछू,
हुतो प्रह्‌लाद सों, पिता को प्रेम टूटो है।
द्रौपदी की देह में खुथी ही कहा दुस्सासन,
खरोई खिसानो खैंचि बसन न खूटो है।
पेट में परीक्षित की पारथ बचाई मीचु,
जब सब ही को बल बिधिबान लूटो है।
'केसव' अनाथन को नाथ जौ न रघुनाथ,
हाथी कहा हाथ कै हथ्यार करि छूटो है ॥६१॥

---

[५७] तोरन०–तोरन तूर न ताल (दीन०)। तार न–तीरी न (याज्ञिक०)।
[५८] आनी–ल्याए (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०, सरदार०)। नाखी०–गई न तरी जू (बाल०)। जु हुती०–वहई त्रिय (याज्ञिक अ०)।
[५६] कहि–जिहि (बाल०)।
[६०] थल०–अरु न चढ़ायो (याज्ञिक०, याज्ञिक अ०, हरि०); गहि० (दीन०)। हैं–हो (दीन०); सँग (अन्यत्र)।
[६१] है–तो (बाल०)। खैंचि–खलु (बाल०)। पारथ–पैठि कै (हरि०, सरदार०, दीन०)।

'केसोदास' बेदबिधि साथहीं बनाइ व्याध,
सबरी कबहि सुचि संहिता सिखाई ही।
बेषधारी हरिवेष देख्यो हो असेष जग
तारका कों कौने सीख तारक पढ़ाई ही।
बारानसी बारन कज्यो हो कब्र बसबासु,
गनिका कब्हि मनिकर्निका अन्हाई ही।
पतितन पावन करत जौ न नंदपूत,
पूतना कबहिं पतिदेवता कहाई ही ॥६२॥

अथ हास्य रसवत्–(सवैया)

बैठति है तिनमें हठिकै जिनकी तुम सों मति प्रेमपगी है।
जानति हौं नलराज दमँती की दूतकथा रसरंग-रँगी है।
पूजैगी साध सबै सुख की बड़भाग की 'केसव' जोति जगी है।
भेद की बात सुने तें कछू वह मासक तें मुसकान लगी है ॥६३॥

अथ शांत रसवत्–(सवैया)

देइगो जीवनवृत्ति वहै प्रभु, है सिगरे जग कौं जिहि दैयै।
आवत ज्यों अनउद्यम तें दुख त्यों सुख पूरब के कृत पैयै।
राज औ रंक सुराज करौ सब काहे कौं 'केसव' काहु डरैयै।
मारनहार उबारनहार सु तौ सबके सिर ऊपर हैयै ॥६४॥

अथ अर्थांतरन्यास–(दोहा)

और आनियै अर्थ जहँ औरे बस्तु बखानि।
अर्थांतर को न्यास यह चारि प्रकार सु जानि ॥६५॥

(सवैया)

भोरेहुँ भौंह चढ़ाइ चितै डरपाइजै कै मन क्यों हूँ करेरो।
ताको तौ 'केसव' कोरि हियै दुख होत महा, सु कहा इत हेरो।
कैसो है तेरो हियो हरि मेरेहि छोरो नहीं तनु छूटत मेरो।
बूँदक दूध को मार्‍यो है बाँधि सु जानति हौं माई जायो न तेरो ॥६६॥

---

[६२] साथ–व्यर्थ (दीन०)। कबहिं–को कौने (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[६३] सुख–मन (दीन०)। बड़–तन (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[६४] बृत्ति-मूरि (बाल०)। दुख त्यों सुख-सुख ज्यों दुख (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। उबारन–जियावनहार (दीन०)
[६६] कहा–कहौं (हरि०, सरदार०, दीन०)।

अथ भेद–(दोहा)

जुक्त अजुक्त बखानिजै और अजुक्ताजुक्त।
'केसवदास' बिचारिजै चौथो जुक्त अजुक्त ॥६७॥

अथ युक्त अर्थांतरन्यास–(दोहा)

जैसो जहाँ जु बूझिजै, तैसो तहाँ सु आनि।
रूप सील गुन जुक्ति बल, ऐसो जुक्त बखानि ॥६८॥

(कबित्त)

गरुवो गुरू को दोष दूषित कलंक करि,
भूषित निसाचरीनि अंक न भरत हैं।
चंडकरमंडल तें लै लै बहु चंडकर,
'केसोदास' प्रतिमास मास निसरत हैं।
बिषधर बंधु हैं, अनाथिनी को प्रतिबंधु,
विष को बिसेष बंधु हिये हहरत हैं।
कमलनयन की सौं, कमल-नयन मेरे,
चंद्रमुखी चंद्रमा तें न्याय ही जरत हैं॥६९॥

अथ अयुक्त अर्थांतरन्यास–(दोहा)

जैसो जहाँ न बूझिजै तैसो तहाँ जु होइ।
'केसवदास' अजुक्त कहि बरनत हैं सब कोइ॥७०॥

(कबित्त)

'केसोदास' होत मारसीरी पै सुमार सी री,
आरसी लै देखि देहि ऐसियै है रावरी।
अमल बतासे से हैं ललित कपोल तेरे,
अधर तमोल धरे दृग तिलचावरी।
ये ही छबि छकि जात छन में छबीले छैल,
लोचन गँवार छीनि लैहैं इत आव री।
बारबार बरजति, बारबार जाति कत,
मेलैबार वारों आनिवारी है तू बावरी॥७१॥

अथ अयुक्त-युक्त अर्थांतरन्यास–(दोहा)

असुभै सुभ ह्वै जात जहँ, क्यों हूँ 'केसवदास'।
इहै **अजुक्तै जुक्त** कवि बरनत बुद्धि-बिलास॥७२॥

---

[७१] पै सुमार०–श्रौ है सारसिरी (बाल०)। मेलै०–मिलैबार बारो आनिबारी है तू बावरी (याज्ञिक०); मेलैबार बीर की त्यों० (बाल०),…सौं (अन्यत्र)

(सवैया)

पातक-हानि, पितानि सों हारिबो, गर्भ के सूलन तें डरियै जू।
तालन को बँधिबो, बध रोर को, नाथ के साथ चिता जरियै जू।
पत्र फटै तें कटै रिन 'केसव', कैसेहु तीरथ जौ मरियै जू।
नीकी सदा लगै गारि सगैन की, डाँड भलौ जौ गया भरियै जू।।७३।।

आगे ह्वै लीबो यहै, जु चितै इत, चौंकि उतै दृग ऐंचि लई है।
कोबिद स्याम वहै प्रतिउत्तर, मानियै बात, जु मौनमई है।
रोष की रेख, वहै रस की रुख, काहे कों 'केसव' छाँडि दई है।
नाहियँ हाँ, तुम नाहीं सुनी, यह नारि नईनि की रीति नई है।।७४।।

अथ युक्त-अयुक्त अर्थांतरन्यास–(दोहा)

इष्टै बात अनिष्ट जहँ कैसे हू ह्वै जाति।
तासों जुक्ताजुक्त कहि बरनत बुद्धि बिभाति।।७५।।

(सवैया)

सूल से फूल, सुबास कुबास सी, भाकसी से भए भौन सभागे।
'केसव' बाग महाबन सो, जुर सी चढ़ी जोन्हि सबै अँग दागे।
नेह लग्यो उर नाहर सो, निसि नाह घरीक कहूँ अनुरागे।
गारी से गीत, बिरी बिष सी, सिगरेई सिंगार अँगार से लागे।।७६।।

पाप की सिद्धि, सदा रिनवृद्धि, सुकीरति आपनी आप कही की।
दुख्ख को दान जु, सूतक न्हान जु दासी की संतति संतत फीकी।
बेटी को भोजन, भूषन राँड को, 'केसव' प्रीति सदा पर-ती की।
जूझ में लाज, दया अरि कौं, अरु बाम्हन जाति सों जीति न नीकी।।७७।।

अथ व्यतिरेकालंकार–(दोहा)

तामहिं आनिय भेद कछु, होइ जु बस्तु समान।
सो व्यतिरेक सुभाति द्वै, जक्ति सहज परमान।।७८।।

अथ युक्ति व्यतिरेक–(कबित्त)

सुंदर सुखद अति अमल सकल विधि,
सदल सफल बहु सरस सँगीत सों।
बिबिध सुबासजुत 'केसोदास' आसपास,
राजै दुजराज तनु परम पुनीत सों।

[७३] बध बँधु (बाल०)। सगैन-सनेह (दीन०)।
[७४] कोबिद स्याम०–मानिबे को वहई (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। मौनमई–मानमई (याज्ञिक०)। नाहिय–नाहीं जू (याज्ञिक०), नाहि है (हरि०, दीन०)।
[७५] कहि–मति (बाल०)। बुद्धि०–कबि सुख पाइ (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)।

फूले ई रहत दोऊ दीवे ही को प्रतिपल,
देत कामनानि सब मीत हू अमीत सों।
लोचन बचन गति बिन, इतनो ई भेद,
इंद्रतरुबर अरु इंद्र इंद्रजीत सों ॥७९॥

अथ सहज व्यतिरेक–(सवैया)

गाइ बराबरि धर्म सबै धन जाति बराबर ही चलि आई।
'केसव' कंस दिवान पितान बराबर ही पहिरावनि पाई।
बैस बराबरि दीपति देह बराबर ही विधि बुद्धि उपाई।
ऐ सखि आज ही होहुगी कैसें बड़ी तुम आँखिन ही की बड़ाई ॥८०॥

अथ अपह्नुति अलंकार–(दोहा)

मन की बात दुराइ मुख, औरै कहियै बात।
कहत अपह्नुति सकल कवि, यासों बुधि-अवदात ॥८१॥

(कबित्त)

सुंदर ललित गति बलित सुवास अति,
सरस सुबृत्त मति मेरे मन मानी है।
अमल अदूषित सुभूषननि भूषित,
सुब्बरन, हरनमन, सुर सुखदानी है।
अंग अंग गूढ़ भाव के प्रभाव जानै को,
सुभाव ही को भाव रुचि पचि पहिचानी है।
'केसोदास' देवी कोऊ देखी तुम ? नाहीं राज,
प्रगट प्रवीनराइ जू को यह बानी है ॥८२॥
कारे सटकारे केस, नौनी कछु होनी बैस,
सोने तें सलोनी दुति देखियत तन की।
आछे आछे लोचननि चलनि चितौनि आछी,
आछी मुख कबिता बिमोहै मति मन की।
'केसोदास' केहूँ भाग पाइयै जौ बाग गहि,
साँसनि उसासैं साध पूजै रति रन की।

---

[७९] सकल–कमल (याज्ञिक०)। इंद्र०–इंद्रजीत जीत सों (बाल०)। लाल···
(अन्यत्र)।

[८०] उपाई–बनाई (याज्ञिक०)। ऐ सखि–ऐ अलि (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०,
दीन०)।

[८१] यासों–ताहि (दीन०), जिनकै (याज्ञिक०)।

[८२] अंग०–अंग ही को भाव गूढ़ अब के प्रभाव जानै को सुभाव रूप रुचि
पहिचानी है (दीन०)। रुचि-रूप (सरदार०)। रुचि०–रूप पचि पहिचानी
है (हरि०)।

बेटी काहू गोप की बिलोकी प्यारे नंदलाल ?
नाहीं लोललोचनी ! बड़वा बड़ेपन की ॥८३॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां विशिष्टालंकारांतरे क्रमालंकारादि-अपह्नुतिवर्णनं नाम एकादशः प्रभावः ॥११॥

१२

अथ उक्ति अलंकार-वर्णन–(दोहा)

बुद्धि बिबेक अनेक बल, उपजत तर्क अपार।
तासों कबिकुल उक्ति कहि, बरनत अमित प्रकार ॥१॥

अथ उक्ति-भेद–(दोहा)

बक्र, अन्य, ब्यधिकरन कहि, और बिसेष समान।
सहित सहोकति में कही, उक्ति सु पंच प्रमान ॥२॥

अथ वक्रोक्ति-लक्षण–(दोहा)

'केसव' सूधी बात में, बरनिय टेढ़ो भाव।
बक्रउक्ति तासों कहें, जे प्रबीन कबिराव ॥३॥

(सवैया)

ज्यों ज्यों हुलास सों 'केसवदास' बिलास-निवास हिये अवरेख्यो।
त्यों त्यों बढ़यो उर कंप कछू भ्रम भीत भयो किधौं सीत बिसेख्यो।
मुद्रित होत सखी बरहीं मेरे नैन सरोजनि साँच कै लेख्यो।
तैं जु कह्यो मुख मोहन को अरबिंद सो है सो तौ चंद सो देख्यो ॥४॥

अथ अन्योक्ति-लक्षण–(दोहा)

औरहि प्रति जु बखानिजै कछू औरई बात।
अन्यउक्ति यह जानिजै, बरनत कबि न अघात ॥५॥

---

[८३] चलिनि०–चितौनि औ चलनि (हरि०, सरदार०, दीन०)। आछे मुख–सुखमुख (हरि०, सरदार०, दीन०)।

[३] जे०–केसव कबि (बाल०), सदा सबै (सरदार०); सही सबै (दीन०)।

[५] पिय–जिय (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, दीन०)। तेऊ०–ते उलटी (याज्ञिक०)। जिय सों–तिन सों (याज्ञिक०); जिय सों उन सों जिन्हैं देखत जीजै (हरि०, सरदार०);···देखिकै जीजै (दीन०)।

(सवैया)

दल देख्यो नहीं जड़ जाड़ो बड़ो अरु घाम घनो जल क्यों हरिहै।
कहि 'केसव' बाउ बहै बहु दाउ दहै धर धीरज क्यों धरिहै।
फलिहै फल नाहिं कि तौ लौं तु ही कहि तो पहँ भूख सही परिहै।
कछु छाँह नहीं सुख सोभ नहीं, कहि कीर करीर कहा करिहै॥६॥
अंग अली धरियै अँगियाऊ न आजु तें नींदौ न आवन दीजै।
जानति हौं पिय नाते सखीन के लाजउ तौ अब साथ न लीजै।
थोरहि द्यौस तें खेलन तेऊ लगों जिय सों जिनकौं जिय जीजै।
नाह के नेह के मामिले आपनी छाँह हू की परतीति न कीजै॥७॥

अथ व्यधिकरणोक्ति-लक्षण–(दोहा)

औरहि में कीजै प्रगट औरहि को गुन-दोष।
उक्ति यहै व्यधिकरन की सुनत होइ संकोष॥८॥

(कबित्त)

जानु, कटि, नाभिकूल, कंठ, पीठि, भुजमूल,
उरज करजरेख रेखी बहु भाँति है।
दलित कपोल, रद ललित अधर रुचि,
रसना रसित रस, रस में रिसाति है।
लोटि लोटि लौटि पौटि लपटाति बीच बीच
हा हा, हू हू, नेति नेति बानी होति जाति है।
आलिंगन अंग अंग पीड़ियत पद्मिनी के,
सौतिन के अंग अंग पीरनि पिराति है॥९॥
राजभार, साजभार, लाजभार, रजभार,
भूमिभार, भवभार, नीके ही अटत हैं।
प्रेमभार पनभार, 'केसव' संपत्तिभार,
पतिभार जुत अति जुद्धनि जटत है।
दानभार, मानभार, सकल-सयानभार,
भोगभार, भागभार घटना घटत हैं।
एते भार फूलनि ज्यों राजैं राजा राम सिर,
तिहि दुख सत्रुन के सिरई फटत हैं॥१०॥

[६] यह०–तेहि कहत हैं (दीन०)।
[७] बहु–दिन (हरि०, सरदार०, दीन०)। फल–फूल (हरि०, सरदार०), फुलिहै (दीन०)। कहि–रहि (सरदार०, दीन०)।
[९] रसित–रसतु (याज्ञिक०)। रस में–रोस में (दीन०)। पीरनि पीर अति (अन्यत्र)।

(सवैया)

पूत भयो दशरत्थ कें 'केसव' देवन कें घर बाजी बधाई।
फूलि कै फूलन कों बरषें, तरु फूलि फलें सब ही सुखदाई।
छीर बहीं सरिता सब भूतल, धीर समीर सुगंध सुहाई।
सबंसु लोग लुटावत देखि कै दारिद-देह दरार सी खाई ॥११॥

(दोहा)

होइ हँसी औरनि सुनें, यह अचरज की बात।
कान्ह चढ़ावत चंदनहि, मेरे अंग सिरात ॥१२॥

(सोरठा)

दये सुनारनि दाम, रावर को सोनो हर्‌यो।
दुख पायो पतिराम, प्रोहित 'केसव' मिश्र सों ॥१३॥

अथ विशेषोक्ति-लक्षण–(दोहा)

बिद्यमान कारन सकल, कारज होंहि न सिद्ध।
सोइ उक्ति बिसेषमय, 'केसव' परम प्रसिद्ध ॥१४॥

(सवैया)

कर्न से दुष्ट ते रुष्ट हुते भट पाप सपुष्ट न सासना टारे।
सादर सैंन दुसासन से सब साथ समर्थ भुजा उसकारे।
हाथी हजारन को बल 'केसव' ऐंचि थके पट कौं डर डारें।
द्रौपदी को दुरजोधन पै तिल अंग तऊ उघर्‌यो न उघारे ॥१५॥

(दोहा)

मूल तोल कसिवान बनि काइथ लिखत अपार।
राखि मरत पतिराम ये सोनो हरत सुनार ॥१६॥

(कबित्त)

सिखै हारी सखी डरवाइ हारी कादंबिनि,
दामिनी दिखाइ हारी दिसि अधरात की।
झुकि झुकि हारी रति मारि मारि हार्‌यो मार,
हारी झकझोरति त्रिबिध गति बात की।
दई निरदई दई वाहि काहे ऐसा मति,
जारति जु रैन ऐन दाह ऐसे गात की।
कैसे हू न मानै हौं मनाइहारी 'केसोराइ'
बोलि हारी कोकिला बुलाइहारी चातकी ॥१७॥

---

[१०] साजभार–रजभार (दीन०)। भवभार०–भवभार जयभार (हरि०, सरदार०, दीन०। [१२] अंग--नैन (याज्ञिक०); हियो (दीन०)।
[१५] दुष्ट०--दुष्ट ते पुष्ट (हरि०, सरदार०, दीन०,)। सपुष्टन–श्री कष्ट न (दीन०)। दुसासन--कुयोधन (दीन०)। दुरजोधन--दुहसासन (दीन०)।
[१६] मूल--तुला (दीन०)। मरत--भरत(वही)।ये--पै(वही)। [१७]ऐन--दिन(याज्ञिक०)

(सवैया)

कर्न कृपा दुज द्रौन तहाँ जिनको मत काहू पै जात न टार्‌यो।
भीम गदाहि धरें धनु अर्जुन, जुद्ध जुरे जिनसों जम हार्‌यो।
'केसवदास' पितामह भीषम मीचु करी बस लै दिसि चार्‌यो।
देखत ही तिनके दुरजोधन द्रौपदी सामुहें हाथ पसार्‌यो ॥१८॥
वेई हैं बान बिधान-निधान अनेक चमू जिन जोर हई जू।
वेई हैं बाहु वहै धनु धीरज दाह दिसा जिन जुद्ध जई जू।
वेई हें अर्जुन आपु नहीं जग में जस की जिन वेलि बई जू।
देखत ही तिनके तब कोलनि नेकहि नारि छुड़ाइ लई जू ॥१९॥

अथ सहोक्ति-लक्षण—(दोहा)

हानि बृद्धि सुभ असुभ कछु कहियै गूढ़ प्रकास।
होइ सहोक्ति स साथ ही बरनत 'केसवदास' ॥२०॥

(कबित्त)

सिसुता समेत भई मंदगति लोचननि,
गुनन सों बलित ललित गति पाई है।
भौंहनि की होड़ीहोड़ा ह्वै गई कुटिल अति,
तेरी बानी मेरी रानी सुनत सुहाई है।
'केसोदास' मुखहास हीसखँ ही कटितट,
छिन छिन सूछम छबीली छबि छाई है।
बारबुद्धि बारनि के साथ ही बढ़ी है बीर,
कुचनि के साथ ही सकुच उर आई है ॥२१॥

अथ व्याजस्तुति-निंदालंकार-लक्षण—(दोहा)

स्तुति निंदा मिस होइ जहँ स्तुति मिस निंदा जान।
व्याजस्तुति निंदा वहै, 'केसवदास' बखान ॥२२॥

(कबित्त)

सीतल हूँ हीतल तिहारे न बसति वह,
तुम न तजत तिल ताको तन ताप-गेहु।
आपनो ज्यौ हीरा सो पराए हाथ ब्रजनाथ,
दै कै तौ अकाथ कथ मैन ऐसो मन लेहु।
एते पर 'केसोराइ' तुम्हें न प्रवाहि वाहि,
वहै जक लागी भागी भूख सुख भूल्यो गेहु।

[१८] मत-पन (दीन०)। [२१] लोचननि-चरननि (दीन०)।

माँडौ मुख छाँडौ छिन छलनि छबीले लाल,
ऐसी तौ गँवारिन सों तुम ही निबाहौ नेहु ॥२३॥

अथ निंदाव्याज स्तुति– (कबित्त)

केसर कपूर कुंज केतकी गुलाब लाल,
सूँघत न चंपक चमेली चारु तोरी हैं।
जिनकी तू पासवानि बूझियत, आसपास,
ठाढ़ीं 'केसोदास' कीनी भय भ्रम भोरी हैं।
तेरी कौनो कृति किधौं सहज सुबास ही तें,
बसि गई हरि चित क्यों हूँ चोराचोरी हैं।
सुनहि अचेत आई इहि हेत, नाहींतर,
तो सो ग्वारि गोकुल गुब्ररिहारी थोरी हैं ॥२४॥
जानिजै न जाकी माया मोहति मिलेहीं माँझ,
एक हाथ पुन्य एक पाप को निवारियै।
परदारप्रिय मत्त मातंग सुताभिगामी,
निसिचर को सो मुख देख्यो देह कारियै।
आजु लौं अजादि राखे बरद बिनोद भावै,
एते पै अनाथ अति 'केसव' निहारियै।
राजन के राजा छाँडि कीजतु तिलक ताहि,
भीषम सों कहा कहौं पुरुष न नारियै ॥२५॥

अथ अमित-लक्षण– (दोहा)

जहाँ साधनै भोगवै, साधक की सुभ सिद्धि।
अमित नाम तासों कहत, जाकी अमित प्रसिद्धि ॥२६॥

(सवैया)

आनन सीकर सीक कहा हिय तो हित तें अति आतुर आई।
फीको भयो सुख ही मुखराग क्यों तेरे पिया बहु बार बकाई।
प्रीतम को पटु क्यों पलट्यो अलि केवल तेरी प्रतीति कौं लाई।
'केसव' नीकेहि प्रीतम सों रमी, नायिका बातन ही बहराई ॥२७॥
को गनै कर्न जगन्मनि से नृप साथ सबै दल राजन ही को।
जाने को खान किते सुलतान सु आयो सहाबुदी साह दिली को।

---

[२३] तनु-उर (याज्ञिक० हरि०, सरदार०, दीन०)। ताको-वाको (याज्ञिक०)। कथ-हाथ (याज्ञिक०); अब (सरदार०); साथ (हरि०, दीन०)। प्रवाहि-प्रतीत (याज्ञिक०)। गेहु-देहु (याज्ञिक०)। [२४] पासवानि-टहलनी (याज्ञिक०)। [२५] अजादि-अजानि (बाल०)। राखे-रिषि, (याज्ञिक०)।
[२७] सुख-मुख (बाल०)। प्रीतम-नायक (याज्ञिक०, हरि०, सरदार०, (दीन०)।

ओरछे आनि जुर्‌यो कहि 'केसव' साह मधूकर सों सक जी को।
दौरि कै दूलहराम सु जीति कर्‌यो अपने सिर कीरति-टीको ॥२८॥

अथ पर्यायोक्ति-लक्षण–(दोहा)

कौनहु एक अदृष्ट तैं, अनही किये जु होइ।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोकति सोइ ॥२९॥

(कबित्त)

खेलति ही सतरंज अलीनि सों तहाँ हरि
आए आपु ही तें किधौं काहू के बुलाए री।
लागे मिलि खेलन मिलै कै मनु हरें हरें
देन लागे दाउ आपु आपु मन भाए री।
उठि उठि गईं ति मिस ही मिस जित तित,
'केसोराइ' की सौं दोऊ रहे छबि छाए री।
चौकि चौंकि चहुँ दिसि तिहि छिन राधाजू के,
जलज से लोचन जलद से ह्वै आए री ॥३०॥

अथ युक्तालंकार-लक्षण–(दोहा)

जैसो जाको बुद्धि-बल, कहिजै तैसो रूप।
तासों कबिकुल कहत हैं जुक्त बरनि बहुरूप ॥३१॥

(कबित्त)

मदन बदन लेत लाज को सदन देखि,
जदपि जगत जीव मोहिबे को है छमी।
कोटि कोटि चंद्रमा सँवारि वारि वारि डारौं
जाके काज ब्रजराज आज हू लौं संजमी।
'केसोदास' सबिलास तेरे मुख की सुबास,
सुनिजत सही सार आरसनि लै रमी।
मित्रदेव, छिति दुर्ग, दंड दल, कोस, कुल,
बल जाकें ताकें कहौ कौन बात की कमी ॥३२॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां विशिष्टालंकार-वर्णने उक्तियुक्तलंकारवर्णनं नाम द्वादशः प्रभावः ॥

———

[३०] चौंकि चौंकि–चौंकि चित (याज्ञिक०)।
[३१] तासों कबि०–तासों कबिकुल जुक्ति कहि बरनत अधिक अनूप (याज्ञिक०); युक्त यह बहुत सरूप (हरि०, सरदार०, दीन०)।
[३२] सुनिजत० सुनियत आरस ही सारसनि (हरि० सरदार०, दीन०)।

१३

अथ समाहितालंकार-वर्णन—(दोहा)

होइ न क्योंहू, होतु जहँ दैवजोग तें काज।
ताहि समाहित नाम यह, बरनत कबिसिरताज ॥१॥

(कबित्त)

छबि सों छबीली बृषभानु की कुमारि आजु,
रही हुती रूपमद मानमद छकि के।
मार हू तें सुकुमार नंद के कुमार ताहि,
आए री मनावन सयान सब तकि कै।
हँसि हँसि, सौहें करि करि पाइ परि परि,
'केसोराइ' की सों जब रहे जिय जकि कै।
ताही समै उठे घन घोर घोरि, दामिनी सी,
लागी लौटि स्याम घन उर सों लपकि कै ॥२॥

(सवैया)

सातहु दीपनि के अवनीपति हारि रहे जिय मैं जब जाने।
बीस बिसे ब्रतभंग भयो सु कहौ अब 'केसव' को धनु ताने।
सोक की आगि लगी परिपूरन आइ गए घनस्याम बिहाने।
जानकी के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु-पुन्य पुराने ॥३॥

अथ सुसिद्धालंकार—(दोहा)

साधि साधि औरै मरें, औरै भोगें सिद्धि।
तासों कहत सुसिद्ध सब जिनके बुद्धि-समृद्धि ॥४॥

(सवैया)

मूलन सों फलफूल सबै दल जैसी कछू रसरीति चली जू।
भाजन भोजन भूषन भामिनि भौन भरी भव भाँति भली जू।
डासन आसन बास सुबासन बाहन जान बिमान थली जू।
'केसव' जैसे महाजन लोग मरैं सचि भोगत भोग बली जू ॥५॥

---

[१] जहँ—अब (बाल०)। यह-कहि (दीन०)।
[२] तकि-नकि (बाल०)। जब-दाऊ (बाल०)।
[३] परिपूरन-पुर पूरन (बाल०); पुनि पूरन (याज्ञिक०)।
[४] भोगैं-भोगवै (बाल०, याज्ञिक०)। जिनके-जाकी अमित प्रसिद्धि (बाल०)।
[५] जैसे-कै कै (बाल०)। सँचि०-भव भोगवै लै लै (बाल०)।

(छप्पय)

सरघा संचि संचि मरहिं, सहर मधुपान करत मुख।
खनि खनि मरत गँवार कूप, जल पियत पथिक सुख।
बागवान बहि मरत फूल बाँधत उदार नर।
पचि पचि मरत सुबार, भूप भोजननि करत बर।
भूषन सुनार गढ़ि गढ़ि मरत भामिनि भूषित करति तन।
कहि 'केसव' लेखक लिखि मरहि पंडित पढ़ें पुरानगन ॥६॥

अथ प्रसिद्धालंकार--(दोहा)

साधन साधै एक भव भोगें सिद्धि अनेक।
तासों कहत प्रसिद्ध सब 'केसव' सहित बिवेक ॥७॥

(सवैया)

मात के मोह पिता परितोषनि केवल राम भरे रिस भारे।
औगुन एक ही अर्जुन को छितिमंडल के सब छत्रिय मारे।
देवपुरी कहँ औधपुरी जन 'केसवदास' बड़े अरु बारे।
सूकर कूकर स्यों हरिचंद के सत्य समेत सदेह सिधारे ॥८॥

अथ बिपरीतालंकार--(दोहा)

कारज साधक को जहाँ, साधन बाधक होइ।
तासों सब बिपरीत कहि, कहत सयाने लोइ ॥९॥

(कबित्त)

नाह तें नाहर, त्रिय जेवरी तें साँप करि,
घालैं घर, बीथिका बसावति बननि की।
सिवहिं सिवा हू भेद पारति जिनकी माया,
माया हू न जानै छाया छलित तननि की।
राधाजू सों कहा कहौं ऐसिन की सुन सीख,
साँपिनि सहित विषरहित फननि की।
क्यों न परै बीच बीच आँगिहू न सहि सकैं,
बीच परी अंगना अनेक आँगननि की ॥१०॥

साथ न सयानो कोऊ हाथ न हथ्यार, रघु-
नाथजू के जज्ञ को तुरंग गहि राख्योई।
काछन कछोटी सिर छोटी छोटी काकपक्ष,
सातहीं बरस किनि जुद्ध अभिलाख्योई।
नील नल अंगद सहित जामवंत हनु-
मंत से अनंत जिन नीरनिधि नाख्योई।

[८] कूकर०-स्वान सबै (याज्ञिक०)। समेत०--से देह समेत (याज्ञिक०)।

'केसोदास' देस-देस कुलनि त्यों रघुकुल,
कुसलव जीति तें बिजय-रस चाख्यो ई ॥११॥

अथ रूपकालंकार—(दोहा)

उपमा ही के रूप सों, मिल्यो बरनियै रूप।
ताही सों सब कहत हैं, 'केसव' रूपक-रूप ॥१२॥
बदन चंद्र, लोचन कमल, बाहु बीसनी जानि।
कर पल्लव अरु भ्रूलता, बिंबाधरनि बखानि ॥१३॥
ताके भेद अनेक में, तीन्यैं कहे सुभाउ।
अदभुत एक बिरुद्ध पुनि, रूपक रूपक नांउ ॥१४॥

अथ अद्‌भुत रूपक—(दोहा)

सदा एकरस बरनियै, और न जाहि समान।
अद्‌भुत रूपक कहत हैं, तासों बुद्धिनिधान ॥१५॥

(कवित्त)

सोभा सरवर माँहि फूल्यो ई रहत सखि,
राजैं राजहंसिनी समीप सुखदानियै।
'केसोदास' आसपास सौरभ के लोभ घने,
घ्राननि के देव भौंर भ्रमत बखानियैं।
होति जोति दिन दूनी निसि में सहसगुनी
सूरज सुहृद चारु चंद्र मन मानियै।
रति को सदन छूइ सकै न मदन ऐसो;
कमलबदन जग जानकी को जानियै ॥१६॥

अथ विरुद्ध रूपक—(दोहा)

जहँ कहियै अनमिल कछू, सुमिल सकल बिधि अर्थ।
सो बिरुद्ध रूपक कहैं, 'केसव' बुद्धिसमर्थ ॥१७॥

(सवैया)

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरनौं सुनि बुद्धि सकै छ्वै।
'केसवदास' मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से द्वै।
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चलै च्वै।
तापर एक सुवा सुभ तापर खेलत बालक खंजन के स्वै। ॥१८॥

---

[११] पाँच ही-सातही (दीन०) नीरनिधि-बारिनिधि (बाल०)। दीप०-दीप भूपनि (दीन०)।
[१३] बीसनी मृणालहि (याज्ञिक०); पास ज्यों (हरि०, सरदार, दीन०)।
[१८] द्वै-ब्वै (दीन०); च्वै (हरि०); ग्वै (सरदार०)। स्वै-द्वै (हरि०, दीन०)।

अथ रूपक रूपक—(दोहा)

रूप भाव जहँ बरनियैं कौनिहु बुद्धि बिबेक।
रूपक रूपक कहत कबि 'केसवदास' अनेक ॥१६॥

(सवैया)

काछे सितासित काछनी 'केसव' पातुरि ज्यों पुतरीनि बिचारो।
कोटि कटाक्ष चलैं गति भेद नचावत नायक नेह निनारो।
बाजतु है मृदु हास मृदंग, सुदीपति दीपन को उजियारो।
देखो नहीं हरि देखि तुम्हैं यहि होत है आँखिन ही में अखारो ॥२०॥

अथ दीपकालंकार—(दोहा)

बाच्य क्रिया गुन द्रव्य बहु, बरनहि करि इक ठौर।
दीपक दीपति कहत हैं, 'केसव' कबिसिरमौर ॥२१॥
दीपक रूप अनेक हैं, मैं बरने द्वै रूप।
मनि माला तिनसों कहैं 'केसव' कवि कबिभूप ॥२२॥
वरषा, सरद बसंत, ससि, सुभता, सोभ, सुगंधु
प्रेम, पवन, भूषन, भवन, दीपक दीपक-बंधु ॥२३॥

अथ मणिदीपक—(दोहा)

इनमें एक जु बरनियैं, कौनहु बुद्धिबिलास।
तासों मनिदीपक सदा, बरनत 'केसवदास' ॥२४॥

(कवित्त)

प्रथम हरिननैंनी हेरि हेरि हरि की सौं,
हरषि हरषि तम तेजहि हरतु है।
'केसोदास' आसपास परम प्रकास सों,
बिलासनि बिलास कछु कहि न परतु है।
भाँति भाँति भामिनी भवन कह भूषैं, भव,
सुभग सुभाइ सुभ सोभा को धरतु है।
मानिनी समेत मान मानिनीनि बस करि,
मेरो मन तेरो दीप दीपित करतु है ॥२५॥
दक्षिन पवन दक्षि जक्षिनी रमन लगि,
लोलन करत लौंग लवली लता को फरु।
'केसोदास' केसर कुसुम कोस-रसकन,
तनु तनु तिनहू को सहि न सकत भरु।

---

[१७] सो-तेहि (दीन०)। [१६] केसवदास-जिनकै बुद्धि अनेक। (याज्ञिक०)। [२०] देखो नहीं देखति हो (याज्ञिक, हरि०, सरदार०, दीन०)। [२१] यह दोहा बाल० में नहीं है। [२४] तासों०-सो मन दीपक जानियो नीकै केसवदास (याज्ञिक०)।

क्यों हूँ कहूँ होत हठि साहस बिलास बस,
चंपक चमेली मिलि मालती सुबास हरु।
सीतल सुगंध मंद गति नँदनंद की सौं,
पावत कहाँ तें तेज तोरिबे कों मानतरु ॥२६॥

अथ मालादीपक—(दोहा)

सबै मिलै जहँ बरनियें, देस काल बुधिवंत।
मालादीपक कहत हैं, ताके भेद अनंत ॥२७॥

(सवैया)

दीपक-देह दसा सों मिलै सु दसा मिलि तेजहि जोति जगावै।
जागि कै जोति सबै समुझै तम सोधि सु तौ सुभता दरसावै।
सो सुभता रचै रूप को रूपक रूप सु कामकला उपजावै।
काम सु 'केसव' प्रेम बढ़ावत प्रेम लै प्रानप्रियाहि मिलावै ॥२८॥

(कबित्त)

घननि की घोर सुनि, मोरन को सोर सुनि,
सुनि सुनि 'केसव' अलाप अलीजन को।
दामिनी दमक देखि, दीप की दिपति पेखि,
देखि सुभ सेज, देखि सदन सुमन को।
कुंकुम की बास, घनसार की सुबास भए
फूलनि की बास मन फूलि कै मिलन को।
हँसि हँसि मिले दोऊ, अनही मनाएँ, मान
छूटि गो एक ही बार राधिका रवन को ॥२९॥

अथ प्रहेलिका अलंकार—(दोहा)

बरनिय बस्तु दुराइ जहँ, कौनहुँ एक प्रकार।
तासों कहत प्रहेलिका, कबिकुल बुद्धि उदार ॥३०॥
सोभित सत्ताईस सिर, उनसठि लोचन लेखि।
छप्पन पद जानहु तहाँ, बीस बाहु बर देखि ॥३१॥
सूर्यमंडल जानिबौ।
चरन अठारह बाहु दस, लोचन सत्ताईस।
मारत हैं प्रतिपाल करि, सोभित ग्यारह सीस ॥३२॥
हरिहरात्मक सरीरु जानिबो।
नौ पसु, नव ही देवता, द्वै पक्षी जिहि गेह।
'केसव' सोई राखिहै, इंद्रजीत की देह ॥३३॥
सूर्यमंडल जानिबो।
देखै सुनै न खाइ कछु, पाइ न, जुवती जाति।
'केसव' चलन न हारई, बासर गनै न राति ॥३४॥
बार जानिबौ।

'केसव' ताके नाम के आखर कहिजै दोइ।
सूधे भूषन मित्र के उलटे दूषन होइ ॥३५॥
राज जानवी।

जाति लता दुइ आखरनि, नाउ कहै सब कोइ।
सूधे सुखमुख बरनियै, उलटे अंबर होइ ॥३६॥
दाख जानिबी।

सब सुख चाहौ भोगवै, जौ पिय एकहि बार।
चंद गहै जहँ राहु कों, जैयो तिहि दरबार ॥३७॥
बीरबर को दरबार जानिबी।

ऐसी मूरि दिखाउ सखि, जिय जानत सब कोइ।
पीठि लगावत जासु रस छाती सीरी होइ ॥३८॥
पुत्र जानिबी।

इत्यादिक बहिर्लापिका जानिबी।

अथ परिवृत्तालंकार–(दोहा)

और कछू कीजै जहाँ उपजि परै कछु और।
तासों परिबृत कहत हैं, 'केसव' कबिसिरमौर ॥३९॥

(सवैया)

हँसि बोलत ही जु हँसैं सब 'केसव' लाज भगावत लोक भगै।
कछु बात चलावत घैरु चलै, मन आनत ही मनमथ्थ जगै।
सखि तू जु कहै सु हुती मन मेरेही जानि यहै न हियो उमगै।
हरि त्यों नक डीठि पसारत ही अँगुरीन पसारन लोग लगै ॥४०॥

हाथ गह्यौ ब्रजनाथ सुभाव ही छूटि गई धर धीरजताई।
पान भखें मुख नैन रची रुचि, आरसी देखि कहौ यह ठाई।
दै परिरंभन मोहन को मन मोहि लियो सजनी सुखदाई।
लाल गुपाल कपोल नखक्षत तेरे दिये तें महा छबि पाई ॥४१॥

जीउ दयो जिन जन्म दयो जग, जाही की जोति बड़ी जग जानै।
ताही सों बैर मनो बच काइ करै कृत 'केसव' को उर आनै।
मूषक तें रिषि सिंघ कह्यो रिषि ही कह मूरख रोष बितानै।
ऐसो कछू यह काल है जाको भलो करियै सो बुरो करि मानै ॥४२।

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां विशिष्टालंकारे समाहितालंकारवर्णनं नाम त्रयोदशः प्रभावः ॥१३॥

---

[३६] दुई०–दूषन रहित (याज्ञिक ग्र०)। बरनियै-भक्षिये (दीन०)। [३८] यह दोहा केवल हरि०, सरदार०, दीन० में ही है, प्राचीन हस्तलेखों में नहीं। [४०] नक–नैक (बाल०, याज्ञिक०,); टुक (दीन०); निकु (सरदार०)। [४१] नखक्षत–रदच्छत (दीन०)। पाई-छाई (वही)। [४२] कह-सह (याज्ञिक०)।

१४

अथ उपमालंकार--(दोहा)

रूप सील गुन होहि सम, जौ क्यों हूँ अनुसार।
तासों उपमा कहत कवि, 'केसव' बहुत प्रकार ॥१॥
संसय, हेतु, अभूत अरु, अदभुत, बिक्रिय जानि।
दूषन, भूषन, मोह मय, नियम, गुनाधिक आनि ॥२॥
अतिसय, उत्प्रेक्षित कहौं, स्लेष, धर्म, बिपरीत।
निर्नय, लाक्षनिकोपमा, असंभाविता मीत ॥३॥
बुधि बिरोध, माला कहत, और परस्पर ईस।
उपमा भेद अनेक हैं में बरने इकबीस ॥४॥

अथ संशयोपमा–(दोहा)

जहाँ नहीं निरधार कछु सब संदेह सरूप।
यह संसय उपमा सदा, बरनत हैं कबिभूप ॥५॥

(सवैया)

खंजन हैं मनरंजन 'केसव' रंजन नैन किधौं, मति जी की।
मीठी सुधा कि सुधाधर की दुति दंतन की किधौं दाड़िम ही की।
चंद भलो मुखचंद किधौं सखि सूरति काम कि कान्ह की नीकी।
कोमल पंकज कै पदपंकज, प्रानपियारे कि मूरति पी की ॥६॥

अथ हेतूपमा–(दोहा)

होत कौनहू हेत तें, अति उत्तम से हीन।
ताही सों हेतोपमा, 'केसव' कहत प्रबीन ॥७॥

(कबित्त)

अमल कमल-कुल कलित ललित गति,
बेल सों बलित मधु माधवी को पानियै।
मृगमद मरदि कपूर धूरि चूरि पग,
केसरि को 'केसव' बिलास पहिचानियै।
झेलि कै चमेली करि चंपक सों केलि, सेइ
सेवती समेत हेतु केतकी सों जानियै।
हिलि मिलि मालती सों आवति समीर जब
तब तेरे सुखमुख बास सो बखानियै ॥८॥

---

[२] बिक्रिय-चित्रित (बाल०) । [४] माला०–मालोपमा (हरि०, सरदार०, दीन०) । [५] यह-सो (दीन०) । [६] किधौं सखि०–सखी सुरनि सूति (बाल०) । सूरति-मूरति (याज्ञिक०) । [८] गति–बाग (बाल०) । पानियै-मानियै (बाल०) ।

अभूतोपमा—(दोहा)

उपमा जाइ कही नहीं, जाको रूप निहारि।
सो अभूत उपमा कही, 'केसवदास' बिचारि ।।६।।

(कबित्त)

दुरिहै क्यों भूषन बलन दुति जोबन की,
देह ही की जोति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाह की सुबास लागें ह्वैहै कैसी 'केसव'
सुभाव ही की बास भौंर-भीर फारें खाति है।
देखि तेरी मूरति की सूरति बिसूरति हौं,
लालन कों दृग देखिबे कों ललचाति है।
चलिहै क्यों चंद्रमुखी कुचनि के भार भएँ,
कचन के भार तें लचकि लंक जाति है ।।१०।।

(सवैया)

भाल गुही गुन लाल लटें लपटीं लर मोतिन की सुखदैनी।
ताहि बिलोकति आरसी लै कर आरस सों इक सारसनैनी।
'केसव' स्याम दुरें दरसी परसी उपमा मति सों अति पैनी।
सूरजमंडल में ससिमंडल मंडि धरी जनु जाइ त्रिबैनी ।।११।।

अद्‌भुतोपमा—(दोहा)

जसी भई न होति अब, आगे कहै न कोइ।
'केसव' ऐसी बरनियै, अद्‌भुत उपमा सोइ ।।१२।।

(सवैया)

प्रीतम को अपमाननि माननि, गान सयाननि रीझि रिझावै।
बंक बिलोकनि बोल अमोलनि बोलि कै 'केसव' मोद बढ़ावै।
हाव हू भाव बिभाव प्रभाव सुभाव के भाइनि चित्त चुरावै।
ऐसे बिलास जु होंहि सरोज में तौ उपमा मुख तेरे की पावै ।।१३।।

अथ बिक्रियोपमा—(दोहा)

क्योंहूँ क्योंहूँ बरनियै, कौनहु एक उपाइ।
बिक्रिय उपमा होति तहँ, बरनि कहत कबिराइ ।।१४।।

(कवित्त)

'केसोदास' कुंदन के कोस तैं प्रकासमान,
चिंतामनि ओपना सों ओपिकै उतारी सी।

---

[१०] लंक–कटि (बाल०)। [११] आरस०–आरस में इक (याज्ञिक०)। मंडि०–मध्य धसी (याज्ञिक अ०)। [१२] कहै–लहै (दीन०)। [१३] प्रभाव०-प्रभाव के भाव के भेदनि (याज्ञिक अ०)। [१४] कौनहु–कहै न (दीन०)। उपाइ–प्रकार (वही०)। बरनि०–'केसव' बुद्धि उदार (वही०)।

इंदु के उदोत तें उकीरी ऐसी काढ़ी, सब
सारस सरस, सोभासार तें निकारी सी।
सोंधे की सी सोंधी, देह सुधा सों सुधारी, पावँ
धारी देवलोक तें कि सिंधु तें उधारी सी।
आजु यासों हँसि खेलि बोलि चालि लेहु लाल,
काल्हि एक बाल ल्याऊँ काम की कुमारी सी ॥१५॥

अथ दूषणोपमा—(दोहा)

जहँ दूषनगन बरनियै, भूषन-भाव दुराइ।
दूषन उपमा होति तहँ, बुधजन कहत बनाइ ॥१६॥

(सवैया)

जौ कहौं 'केसव' सोम सरोज सुधासुर भृंगनि देह दहे हैं।
दाड़िम के फल श्रीफल बिद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं।
कोक, कपोत, करी, अहि, केहरि, कोकिल, कीर कुचील कहे हैं।
अंग अनूपम वा प्रिय के उनकी उपमा कहँ वेई रहे हैं ॥१७॥

अथ भूषणोपमा—(दोहा)

दूषन दूर दुराइ जहँ, बरनत भूषन-भाइ।
भूषन उपमा होति तहँ, बरनत सब सुख पाइ ॥१८॥

(कवित्त)

सुबरनजुत, सुरवलित बरनि पुनि,
भैरो सो मिलित गति ललित बितानी है।
पावन प्रगट दुति दुजन की देखिजत,
दीपति दिपति अति श्रुति सुखदानी है।
सोभा सुभ सानी परमारथ-निधानी दीह
कलुष कृपानी मानी सब जग जानी है।
पूरब के पूरे पुन्य सुनिजै प्रवीनराइ,
तेरी बानी मेरी रानी गंगा को सो पानी है ॥१९॥

अथ मोहोपमा—(दोहा)

रूपक के अनुरूप कौं कोनहि बस मन जाइ।
ताही सों मोहोपमा कहत सकल कबिराइ ॥२०॥

(कवित्त)

खेलत न खेल कछू हाँसी न हँसत हरि,
सुनत न गान कान तान बान सी बहै।

[१८] बरनत०—'केसव' सुखद सुभाइ (याज्ञिक ग्र०); सब कबिराय (दीन०)।
[१९] सुरबलित—सुख सुरनि (याज्ञिक०)। [२०] कोनहि०—जानि कतहुँ (दीन०)।

ओढ़त न अंबरन डोलत दिगंबर सो,
संबर ज्यों संबरारि दुख्ख देह कों दहै।
भूलिहू न सूँघै फूल, फूलि फलि कुँभिलात,
जात, खात वीरा हू न बात काहू सों कहै।
जानि जानि चंद-मुख 'केसव' चकोर सम,
चंदमुखी चंद ही के बिंब त्यौं चितै रहै ॥२१॥

अथ नियमोपमा–(दोहा)

एकै सुभ जहँ बरनियै, मन क्रम बचन बिसेष।
'केसवदास' प्रकास बस, नियमोपमा सु लेख ॥२२॥

(कबित्त)

कलित कलंककेतु केतु अरि सेत गात,
भोग जोग को अजोग रोग ही को थल सो।
पून्यो ही को पूरन पै प्रतिदिन ऊनो ऊनो
छिन छिन छीन छबि छीलर के जल सो।
चंद सो जु बरनत रामचंद की दुहाई,
सोई मतिमंद कबि 'केसव' कुसल सो।
सुंदर सुबास अरु कोमल अमल अति,
सीताजू को मुख सखि केवल कमल सो ॥२३॥

अथ गुणाधिकोपमा–(दोहा)

अधिकन हू तें अधिक गुन, जहाँ बरनियत होइ।
तासों गुन अधिकोपमा, कहत सयाने लोइ ॥२४॥

(कबित्त)

वे तुरंग सेत रंग संत एक ये अनेक,
हैं सुरंग अंग अंग पै कुरंगम से।
ये निसंक अंक जज्ञ वे ससंक 'केसोदास',
ये कलंक रंक वे कलंक ही कलीत से।
वे पियें सुधाहि, ये सुधानिधीस के रसैं जु,
साँचहू सुनीत ये, पुनीत वे पुनीत से।
देहिं ये दिये बिना, बिना दिये न देहिं वे,
भए न, हैं न, होहिं गे न, इंद्र इंद्रजीत से ॥२५॥

---

[२१] सुनत०–सुनत न कान तान बान गंग सी बहै (बाल०)। जानि०–देखि देखि (बाल०)। [२२] सुभ–सम (हरि०, सरदार०, दीन०); सों (याज्ञिक अ०)। प्रति–आन (अन्यत्र)। [२३] कुसल–मुसल (दीन०)। [२४] होइ-कोइ (दीन०)। [२५] सुनीत०-पुनीत ये सुनीत (दीन०)।

अथ अतिशयोपमा–(दोहा)

एक कछू एकहि बिषै, सदा होइ रस एक।
अतिसय उपमा होति तहँ, बरनत सहित बिबेक ॥२६॥

(कवित्त)

'केसोदास' प्रगट प्रकास सों अकास पुनि,
ईस हू के सीस रजनीस अवरेखियै।
थल थल जल जल अचल अमल अति,
कोमल कमल बहु बरन बिसेखियै।
मुकुर कठोर बहु नाहिनै अचल जस
बसुधा सुधा हू तिय अधरन लेखियै।
एकरस एकरूप जाकी गीता सीता सुनि,
तेरो सो बदन तैसो तोही बिषै देखियै ॥२७॥

अथ उत्प्रेक्षितोपमा–(दोहा)

'केसव' दीपति एक ही, होइ अनेकन माह।
उत्प्रेक्षित उपमा सोई, कहैं कविन के नाह ॥२८॥

(कवित्त)

न्यारो ही गुमान मन, मीननि के मानिजत,
जानिजत सब ही सु कैसे न जनाइयै।
पंचबान बाननि के आन आन भाँति गर्ब,
बाढ़यो परिमान बिनु कैसे वै बताइयै।
'केसौदास' सबिलास गीत रंग रंगनि
कुरंग अंगनानि हू के आँगननि गाइयै।
सीता जू की नयन-निकाई इन ही पै है सु,
झूठे हैं नलिन खंजरीट हू में पाइयै ॥२९॥

अथ श्लेषोपमा–(दोहा)

जहाँ सरूप प्रयोगिजै सब्द एक ही अर्थ।
'केसव' तासों कहत हैं, स्लेषोपमा समर्थ ॥३०॥

(कवित्त)

सगुन, सरस, सब अंग राग रंजित है,
सुनहु सुभाग बड़े भाग बाग पाइयै।

---

[२६] बरनत०–कहत सुबुद्धि अनेक (दीन०)। [२७] प्रकास०–अकास में प्रकासमान (दीन०)। अचल-अचला (बाल०)। सीता०–सुनियत (दीन०)। तैसो–सीता (दीन०)। [२८] कहैं०–बरनि कहत कबिनाह (बाल०)। [२९] जनाइयै–मनाइयै (बाल०)। इनही पै–हेम ही मैं (याज्ञिक०)। हम ही में (याज्ञिक अ०, हरि० सरदार०, दीन०)।

सुंदर सुबास तन कोमल अमल मन,
षोड़स बरस मय हरष बढ़ाइयै।
बलित ललित बास 'केसोदास' सबिलास,
सुंदरी सिंगारि लाई गहरु न लाइयै।
चातुरी की साला माँझ आतुर ह्वै नंदलाल
चंपे की सी माला बाला उर उरमाइयै॥३१॥

अथ धर्मोपमा—(दोहा)

एक धर्म को एकु अँगु, जहाँ जानिजतु होइ।
ताही सों धर्मोपमा, कहत सयाने लोइ॥३२॥

(कबित्त)

ऊजरे उदार उर वासुकी बिराजमान,
हार के समान आन उपमा न टोहियै।
सोभिजै जटान बीच गंगाजू के जलबिंदु,
कुंद-कलिका से 'केसोदास' मन मोहियै।
नख कैसी रेखा चंद चंदन सी चारु रज,
अंजन सिंगार हू गरल रुचि रोहियै।
सब सुख सिद्धि सिवा सोहै सिव-बाम-अंक,
जावक सो पावक लिलार लाग्यो सोहियै॥३३॥

अथ बिपरीतोपमा—(दोहा)

पूरब पूरे गुननि के, तेई कहिजै हीन।
तासौं बिपरीतोपमा, 'केसब' कहत प्रबीन॥३४॥

(सवैया)

भूषित देह बिभूति दिगंबर नाहिन अंबर अंग नबीने।
दूरि कै सुंदर सुंदरी 'केसव' दौरि दरीनि में मंदिर कीने।
देखि बिमंडित दंडन सों भुजदंड दोऊ असिदंड-बिहीने।
राजनि श्रीरघुनाथ के राज कुमंडल छाँड़ि कमंडल लीने॥३५॥

अथ निर्णयोपमा—(दोहा)

उपमा अरु उपमेय को, जहँ गुन-दोष-बिचार।
निर्णय उपमा होति तहँ, सब उपमनि को सार॥३६॥

---

[३१] बाग—आइ (बाल०); गहि (याज्ञिक०)। सिंगारि—सँवारि (दीन०)। माँझ—मानि (वही)। [३३] बाम अंक—जू के साथ (याज्ञिक अ०, दीन०)। [३४] गुननि—पुन्य (दीन०)। [३५] मंदिर—आसन (दीन०)। देखि०—देखिये (वही)।

(कबित्त)

एक कहैं अमल कमल मुख सीताजू को,
एक कहें चंदमय आनंद को कंद री।
होइ जौ कमल तौ वै रैनि में न सकुचै री,
चंद जौ तौ बासर न होइ दुतिमंद री।
बासर ही कमल रजनि ही में चंद, मुख
बासरहू रजनि बिराजैं जगबंद री।
देखें मुख भावत न देख्योई कमल चंद,
तातें मुख मुखैं सखि कमलौ न चंद री ॥३७॥

अथ लाक्षणिकोपमा–(दोहा)

लक्षन लक्षि जु बरनियै, बुधिबल बचन-बिलास।
तासों लाक्षनिकोपमा, कहियत 'केसवदास' ॥३८॥

(कबित्त)

वासों मृग-अंक कहैं तोसों मृगनैनी सवै,
वह सुधाधर तुही सुधाधर मानियैं !
वह दुजराज राजै तेरे दुजराजी वह
कलानिधि तुही कलाकलित बखानियैं।
रतनाकर के दोऊ 'केसव' बिलासकर,
अंबर प्रकास कुबलय-हित गानियैं।
वाके अति सीतकर तुही सीता सीतकर,
चंद्रमा सी चंद्रमुखी सब जग जानियैं ॥३९॥

अथ असंभावितोपमा–(दोहा)

जैसे भाव न संभवत तैसे करत प्रकास।
होत असंभावित तहाँ, उपमा 'केसवदास' ॥४०॥

(कबित्त)

जैसे अति सीतल सुबास मलयज माहिं,
अमल अनल बुद्धिबल पहिचानियैं।
जैसे कौनो कालबस कोमल कमल कोस,
'केसोदास' केसोराइ कंटक से जानियैं।
जैसे बिधु सधर मधुर मधुमय सोहै,
मोहरुख बिष बिषमुखहि बखानियैं।

---

[३७] ०मय–सम (दीन०); माई (सरदार०)। [३८] बचन०–केसवदास (बाल०)। तासों०--लाछनिको उपमा सु यह बहुधा बचन-बिलास (बाल०)। [३९] बिलास--प्रकास (दीन०); बिसाल (अन्यत्र)। प्रकास--बिलास (दीन०)।

सुंदरि सुलोचनि सुबचनि सुदंति तैसे,
तेरे मुख आखर परुषरुख मानियै ॥४१॥

अथ विरोधोपमा (दोहा)

जहँ उपमा उपमेय सों, आपुस माहिं बिरोध ।
सो बिरोध उपमा कहत, 'केसव' जिनहिं प्रबोध ॥४२॥

(कवित्त)

कोमल कमल कर कमला के भूषननि,
'केसोदास' दूषन सरद ससि पाई है।
ससि अति अमल अमृतमय मनिमय,
सीता को बदन देखि ताकों मलिनाई है।
सीता को बदन सब सुख को सदन जाहि,
मोहत मदन दुख-कदन निकाई है।
आधो पल माधोजू के देखे बिनु सोई ससि,
सीता के बदन कहँ होत दुखदाई है ॥४३॥

अथ मालोपमा–(दोहा)

जो जो उपमा दीजियै, सो सो पुनि उपमेय ।
सो कहियै मालोपमा 'केसव' कबिकुल-गेय ॥४४॥

(कवित्त)

मदनमोहन कहौ रूप को रूपक कैसो,
मदन-ब्रदन ऐसो जाहि जग मोहियै।
मदन-बदन कैसो, सोभा को सदन स्याम
जैसौ है कमल रुचि लोचननि पोहियै ।
कैसो है कमल जैसो आनँद को कंद सुभ,
कैसो है सुचंद जैसो उपमान टोहियै ;
कैसो है जु चंद वह 'केसव' कुवँर कान्ह,
सुनौ प्रान प्यारी जैसौ तेरौ मुख सोहियैं ॥४५॥

अथ परस्परोपमा–(दोहा)

जहाँ अभेद बखानिजै, उपमेयो उपमान ।
तासों परस्परोपमा, 'केसवदास' बखान ॥४६॥

---

[४१] कोस-महि (याज्ञिक०)। मधु०-मधुमय माहि (दीन०)। [४२] कहत०-सदा बरनत जिन्हें (दीन०)। [४३] पाई-ठाई (दीन०); गाई (सरदार०)। [४४] यह दोहा बाल०, सरदार० में नहीं है। कहीं-कहीं यह रूप मिलता है—'केसव' जहां न प्रेम है उपजत भाव सरूप। ताही सों मालोपमा कहि बरनत कबिभूप ॥ [४५] पोहियै-जोहियै (दीन०)। [४६] उपमेयो०-उपमा मरु (बाल०); उपमेय रु (दीन०)।

(कवित्त)

बारे न बड़े न बृद्ध नाहिनै गृहस्थ सिद्ध,
बावरे न बुद्धिवंत, नारियौ न नर से।
अंगी न अनंगी तन ऊजरे न मैले मन,
स्यार ऊ न सूरे रन थाबर न चर से।
दूबरे न मोटे रंक राजा ऊ कहे न जाइँ,
मर न अमर अरु आपने न पर से।
बेद हू न कछु भेद पाइजतु 'केसोदास'
हरिजू से हेरे हर हरि हेरे हर से ॥४७॥

(दोहा)

कोकिल से अति कृस्न घन करिनी सो गिरिराज।
मृग सूरो मृगराज सो, ऐसो बरनत लाज ॥४८॥

अथ संकीर्णोपमा--(दोहा)

बंधु, चोर, बादी, सुहृद, कल्प, वृक्ष, प्रभु जानि।
सम, रिपु, सोदर आदिदै, इतने अर्थ बखानि। ४९॥

(कवित्त)

बिधु को सो बंधु किधौं चोर हासरस को कि,
कुंदन को बादी किधौं मोतिन को मीत है।
कल्प कलहंस को कि छीरनिधि छबि बृक्ष,
हिम-गिरि-प्रभा-प्रभु, प्रगट पुनीत है।
अमल अमित अंग गंगा के तरंग सम
सुधा को सुबुद्धि रिपु रूपक अभीत है।
दिस दिस देस देस परम प्रकासमान
किधौं 'केसोदास' रामचंद्रजू को गीत है ॥५१॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
विशिष्टालंकारवर्णने उपमालंकारवर्णनं
नाम चतुर्दशः प्रभावः ॥१४॥

---

[५१] वृक्ष-पृच्छ (दीन०); वृष्यु (बाल०)। तरंग०-तरंगन को (दीन०)। सुधा०-सोदर सुधा को (दीन०); सुधा को समूह (सरदार०)। रूपक-रूपको (दीन०, सरदार०)।

१६

अथ नखशिख-वर्णन--(दोहा)

सबिता के परताप ज्यों बरन्यो कबिता-अंग।
कहौं जथामति बरनि त्यों बनिता के प्रत्यंग ॥१॥
कही जु पूरब पंडितनि जाकी जितनी जानि।
तितनी अब ता अंग की उपमा कहौं बखानि ॥२॥
नख तें सिख लौं बरनियै देवी दीपति देखि।
सिख तें नख लौं मानुषी 'केसवदास' बिसेषि ॥३॥
जग के देवी देव के श्रीहरिदेव बखानि।
तिन हरि की श्रीराधिका इष्टदेवता जानि ॥४॥
भूषित तिनके भूषननि त्रिभुवनपति के अंग।
तिनके 'केसवदास' कवि बरनतु है प्रति अंग ॥५॥
उपमा और समान सब इतनो भेदु बखानि।
जावकजुत पद बरनियैं महँदीसंजुत पानि ॥६॥

अथ जावक-वर्णन--(दोहा)

राजु रजोगुन को प्रगट प्राची दिसि को भागु।
रंगभूमि जावकु बरनि कोपराग अनुरागु ॥७॥

अथ जावक-वर्णन--(कवित्त)

कोमल अमलता की किधौं यह रंगभूमि
सोभिजतु अंगुन कि सोभा के सदन को।
अरुन दलनि पर कीनो कि तरनि कोप,
जीत्यो किधौं रजोगुनु राजिव के गन को।
पलु पलु प्रनय करत किधौं 'केसोदास'
लागि रह्यो पूरबानुरागु पिय-मन को।
एरी बृषभानु की कुमारि तेरे पाइँ सोहै
जावक को रंगु कैं सुहागु सौतिजन को ॥८॥

अथ चरणोपमा--(दोहा)

अति कोमल पद बरनियैं पल्लव कमल समान।
जलज कमल से चरन कहि कर कहि थलज प्रमान ॥९॥

[७] राजु--रागु (याज्ञिक०)। विशेष--नखशिख याज्ञिक अ० और दीन० में नहीं है।

अथ पदपंकज-वर्णन--(कबित्त)

गंगाजू के जल मध्य कंठ के प्रमान पैठि
जपि जपि सूर-मंत्र आनँद बढ़ावहीं।
'केसोदास' घाम जल सीत सहि एकरस,
एक पाइँ ठाढ़े कोटि कलप नसावहीं।
कोमल अमल भए सुंदर सुवास भए
कमल-निवास मनु जदपि भ्रमावहीं।
पायो परब्रह्मपद पदुमनि पदुमिनि
तेरे पद पदवी को पदु पै न पावहीं ॥१०॥

अथ अंगुली-वर्णन--(दोहा)

अँगुलीं चंपक की कलीं जीवनमूरि प्रमान।
तारा रबि ससि सुमन मन मनिगन किरनि समान ॥११॥
बिछिया बाँक अनौट की नाहिन उपमा आन।
सोभा प्रभा तरंग गन हंस अंस तन त्रान ॥१२॥

(सवैया)

चंपकली-दल हू तें भली पद-अंगुली बाल की रूप रसे हैं।
सुभ्र सुदेस लसँ नख यों जनु प्रीतम के दृग देखि बसे हैं।
बाँक अनौट बनैं बिछियानि बिभूषित जोति जराइ ग्रसे हैं।
'केसव' सोम सरोजनि ऊपर कोपि मनौं तनत्रान कसे हैं ॥१३॥

अथ नूपुर-वर्णन -(दोहा)

नूपुर रक्षाजंत्र मन लोचन गुनगन हार।
जाचक जसपाठक मधुप जामिक बंदनमार ॥१४॥

(कबित्त)

गतिनि के हार की बिहार के पहरु-रूप
किधौं प्रतिहार रतिपति के निलय के।
हंस गतिनाइक कि गूढ़ गुनगाइक कि
श्रवन-सुहाइक कि माइक हैं मय के।
'केसव' कमलमूल अलिकुल कुनित कि
मनु प्रतिधुनित सुमनित निचय के।
हाटक घटित मनि स्यामल जटित पग,
नूपुर जुगल किधौं बाजे हैं बिजय के ॥१५॥

[१०] पर-बरु (बाल०)। [११] किरनि--नखन (याज्ञिक०)। [१३] देखि-देव (याज्ञिक०)। [१५] प्रतिधुनि०--किंकिनि प्रतिधुनित (बाल०, याज्ञिक०)।

अथ जेहरी-वर्णन-(दोहा)

जेहरि जयकंकन कलित 'केसवदास' सुजान।
माला साला सुभ सभा सीमा सम सोपान ॥१६॥

(कबित्त)

कोमल कमलमूल नूपुर नवल अलि-
कुलनि की साला किधौं 'केसव' सुभाइ की।
चरन-सरोवर समीप किधौं बीछिया
कनक कलहंसनि की बैठकें बनाइ की।
गज हंस सारस की जीती गति मेरी मति
बाँध्यो जयकंकन की सोभा सुखदाइकी।
अमिल सुमिल सीढ़ी मदन-सदन की कि
जगमगै पग जुग जेहरी जराइ की ॥१७॥

अथ उरु-वर्णन--(दोहा)

उरू करी-कर केरि सम करभ-सोभ सों लीन।
चक्र पास थल पुलिन सम बरनि नितंबनि पीन ॥१८॥

(कवित्त)

कोमल कमलमुखी तेरे ये जुगल जानु
मेरे बलवीरजू के बलहि हरत हैं।
सौरभ सुभाय सुभ रंभा कों सदंभ अरु
'केसव' करभ हू की सोभा निदरत हैं।
कोटि रतिराज ब्रजराज सिरताज की सौं
देखि देखि गजराज लाजनि मरत हैं।
मोचि मोचि मद रुचि सकुल सकोचि सोचि
सुधि आएँ सुंडनि की कुंडली करत हैं ॥१९॥

अथ नितंब-वर्णन--(कबित्त)

चहूँ वोर चितचोर चाक चक चक्रमन,
सुंदर सुदरसन दरसन हीने हैं।
दितिसुत-सुखनि घटाइबे कौं सुपरुख,
सुरनि बढ़ाइबे कौं 'केसव' प्रबीने हैं।
सब ही के मननि मथत हरिहरहू के,
मन मथिबे कौं मनमथ साथ दीने हैं।

[१७] कनक-कुनज (याज्ञिक०)। [१८] केरि-केलि (याज्ञिक०)। पास०-पीठि सम थल पुलिन (याज्ञिक०)। [१६] लाजनि-भाजनि (बाल०)।

रुचि सुचि सकुच सकेलि कै तरुनि तेरे
काहू नए चतुर नितंब चक्र कीने हैं ॥२०॥

अथ कटि-वर्णन--(दोहा)

कटि अति सूक्षम उदर दुति चलदल-दल उनमान।
रोमलता तम धूम अलि चारु चिटीँनि प्रमान ॥२१॥

(कबित्त)

भूत की मिठाई जैसी साँच की झुठाई तैसी,
स्यार की ढिठाई ऐसी छीन छ्वैं रितु है।
धीरा को सो हास, 'केसोदास' दास कैसो
सुख सूर की सी संक अंक रंक को सो बितु है।
सूम कैसो दानु मतिमूढ़ कैसो ज्ञानु,
गोरी गौरा कैसो मानु मेरे जान समुदितु है।
कौनै है सँवारी बृषभानु की कुमारी यह,
जाकी कटि निपट कपट कैसो हितु है ॥२२॥

अथ रोमराजी-वर्णन--(कबित्त)

किधौं काम बागवान बई है सिंगार-बेलि
सींचि कै बढ़ाई नाभि कूप मनु मोहियै।
किधौं हरिनैन खंजरीटनि के खेलिबे की
भूमि 'केसोदास' नख पंक रेख रोहियै।
सुंदर उदर सुभ सुंदरी की रोमराजी
किधौं चित चातुरी की चोटी चारु सोहियै।
किधौं चलदल-दल पिय की कपट जुरु
टूटिबे कौं मंत्रु लिखि लोचननि पोहियै ॥२३॥

अथ कुच-वर्णन--(दोहा)

चक्रवाक कुच बरनियै 'केसव' कमल प्रमान।
सिव गिरि घट मठ गुच्छफल सुभ इभ-कुंभ-समान ॥२४॥

(कबित्त)

किधौं मनोहर मनिहार दुति सर खेलैं,
जोबन कलभ कुंभ सोभन दरस हैं।
मोहनी के मठ किधौं इंदिरा के मंदिर,
कि इंदीवर इंदुमुखी सौरभ सरस हैं।
आनँद के कंद किधौं अंग द्वै अनंग ही के,
बाढ़त जु 'केसोदास' बरस बरस हैं।

[२०] साथ-हाथ (याज्ञिक०)। [२१] गोरी--और (याज्ञिक०)।

एरी बृषभानु की कुमारि तेरे कुच किधौं,
रूप अनुरूप जातरूप के करस हैं ॥२५॥

अथ भुज-वर्णन–(दोहा)

कर कंजनि पल्लवनि भुज ब्रिस बल्लरी सुपास।
रत्न तारका कुसुम सर नखरुचि 'केसवदास' ॥२६॥

(कबित्त)

'केसोदास' गोरे गोरे गोल कामसूल-हर
भामिनी के भुजमूल भाइ से उतारे हैं।
सोभा सुख बरसत माखन से दरसत
परसत कंचन से कठिन सुधारे हैं।
बलया बलित बाहु देखि रीझे हरिनाहु,
मानौ मन पासिबे के पासियैं बिचारे हैं।
मलिन मृनाल मुख पंक में दुराए दुख
देखौ जाइ छातिनि में छेद कैं कैं डारे हैं ॥२७॥

अथ करभूषण-वर्णन–(कबित्त)

गजरा बिराजैं गजमोतिन के अति नीके
जिनकी अजीत जोति 'केसोदास' गाई है।
बलय बलित कर कंचन कलित मनि
लाल की ललित पौंची पौंचिनि बनाई है।
सेत पीत हरित झलक झलकति अति
स्यामल सुमिल मेरे स्यामले कौं भाई है।
मानौ सूर सोम की कला सकेलि आपनीयौ
आपुने सखा कों सुखु पाइ पहिराई है ॥२८॥

अथ नखांगुलिमुद्रिका-वर्णन–(कबित्त)

गोरी गोरी अंगुरिनि राते से रुचिर नख
और अति पैने पैने रचि रुचि कीने हैं।
रतिजय लेखिबे की लेखनी सुलेख किधौं
मीनरथ सारथी के नोदन नबीने हैं।
किधौं 'केसोदास' पंचबानजू के पाँचौ बान
सकल भुवन जिहि बस करि दीने हैं।
कंचन कलित मनि मुदरी ललित मानौ
पिय परिजन मन हाथ करि लीने हैं ॥२९॥

[२५] बृषभानु०–मेरे कान्हजू की प्यारी (याज्ञिक०)। [२७] दरसत–परसत (याज्ञिक०)। परसत–दरसत (याज्ञिक०)। पासियै–पासी से (याज्ञिक०)। दुख–मृदु (अन्यत्र)।

अथ मेहदो-संयुत पाणि-वर्णन—(सवैया)

राधिका रूपनिधान के पानिनि आनि मनौंछिति की छबि छाई।
दीह अदीहन सूक्षम थूल गही दृग गोरी की दौरि गुराई।
महँदीमय बिंदु बने तिनमें मनमोहन के मन मोहनी लाई।
इंदुबधू अरबिंद के मंदिर इंदिरा कौं मनौ देखन आई॥३०॥

अथ ग्रीवा-वर्णन—(दोहा)

कंठ सुकंठ कपोत-दुति 'केसवदास' प्रमान।
पीठि कनक की पट्टिका बरनत सकल सुजान॥३१॥

(कबित्त)

सुर नर प्राकृत कबित्त रीति आरभटी
सातुकी सु भारती की भारतीयौ भोरी की।
किधौं 'केसोदास' कलगानता सुजानता
निसंकता सों बचन-बिचित्रता किसोरी की।
बीना बेनु पिक सुर सोंभा की त्रिरेख रुचि
मन-क्रम-बचन कि पिय-चित चोरी की।
अंबुसाइँ की सौं मोहै अंबिकाऊ देखि देखि
अंबुज नयन कंबु ग्रीवा गोरी गोरी की॥३२॥

अथ ग्रीवा-भूषण वर्णन—(कबित्त)

लेत मोल लाल को अमोल चितु गोल ग्रीव
लोल नैन देखि देखि जात गर्ब भागि कै।
स्याम सेत पीत लाल कंबु-कंठ कंठमाल
जाति नाहि नेकहीं रही जु जोति जागि कै।
'केसोदास' आसपास बास कै रहे मनौं
समेत राग रागिनीनि राग रंग रागि कै।
सूर के निवास तें प्रकास सोमजू कियौ
अनेक भाँति की किधौं रही मयूख लागि कै॥३३॥

अथ पीठि-वर्णन—(कबित्त)

केसव कुँवर देखि राधिका कुँवरि आजु,
सोवत सुभाइ सेज जननी जनक की।
बेनी में बनाइ गुही काहू अली भाँति भली,
कुंदन की कली तन तनक तनक की।
पीठि में तिनकी प्रतिमूरति बिसेखजति,
पूरति नयन जुग सूरति बनक की।

[३०] दौरि गोरी—(बाल०)।

हरि-मन मथिबे कौं मानौ मनमथ लिखे,
रूप के रुचिर अंक पट्टिका कनक की ॥३४॥

अथ चिबुक-वर्णन--(दोहा)

कज्जल-मनिरस क्षीर छवि, रदनु राह को आनु।
फोंक कामसर चिबुक को, स्यामल ब्रिंदु बखानु ॥३५॥

(कबित्त)

सोभन सिंगार रस की सी छींट सोहै, फोंक
कामसर की सी कहौं जुगतिन जोरि जोरि।
राह कैसो रदनु रह्यो है चुभि चंद माँझ
तमी को सहागु किधौं डारौं तिनु तोरि तोरि।
चतुर बिहारीजू को चितु सो चिहुँटि रह्यो
'केसोदास' चितएँ तें लेतु चितु चोरि चोरि।
तनक चिबुक तिल तेरे पर मेरी सखि
डारौं वारि तरुनी तिलोतमा सी कोरि कोरि ॥३६॥

अथ अधर-वर्णन--(दोहा)

अधर बिंब पल्लव बरनि प्रगट प्रबाल-प्रमान।
मुक्ता दाड़िम कुंद मनि हीरा दसन । समान ॥३७॥

(कबित्त)

अरुन अधर अति सुबुधि सुधा के धर
कोमल अमल दल दुति छीनि लीनी है।
'केसव' सुवास मंदहासजुत कौन काम
बिद्रुम कठोर कटु बिंब मति हीनी है।
सूक्षम सुरेख अति सूधी सूधी सबिसेष
चतुर चतुरमुख रेखा रचि कीनी है।
मानौ मैन गुरु हरिनाह के नयन गनि
गनि गनि लीबे कहुँ बिद्या गनि दीनी है ॥३८॥

अथ दसन-वर्णन--(कबित्त)

सूक्षम सुबेष सूधी सुमन बतीसी किधौं
लक्षन बतीस हू की मूरति बिसेखियैं।
राती है रतीक रुचि सेत सब किधौं ससि
मंडल में सुरनि की सभा अवरेखियैं।

---

[३४] नयन जुग—न क्यौंहू कही (याज्ञिक०)। बिसेखजति—बिलोकियतु (अन्यत्र) [३५] आनु-जान (सरदार०)। फोंक—कोक (याज्ञिक०)। [३८] छीनि०—छबि छीनी (याज्ञिक०)। मति—बुधि (याज्ञिक०)। गनि—गन (वाल०)। गनि—गनि-कनि (वही)। सुबेष-सुरेख (बाल०)।

किधौं पिय-जुगति अखंडता के खंडिबे कौं
खंडन को 'केसव' तरक-कूल लेखियै।
दीनी दूनी कला बिधि तेरे मुखचंद कौं,
सु न्याइ ही अकासचंदु मंददुति देखियै ॥३९॥

अथ हास-वर्णन—(दोहा)

जोति जुन्हाई दामिनी-दीपति-सुधा-प्रकासु।
महिमा मोह मरीचिका रुचि मोहनी सुहासु ॥४०॥

(कवित्त)

किधौं मुखकमल में कमला की जोति, किधौं
चारु मुखचंद्र चंद्र-चंद्रिका चुराई है।
किधौं मृगलोचन मरीचिका-मरीचि किधौं
रूप की रुचिर रुचि रुचि सों दुराई है।
सौरभ की सोभा कि दसन घन-दामिनी कि
'केसव' चतुर चित ही की चतुराई है।
एरी गोरी भोरी तेरी थोरी थोरी हाँसी मेरे
मोहन की मोहनी कि गिरा की गुराई है ॥४१॥

अथ मुखवास-वर्णन—(दोहा)

मदन-जीविका सुख-जननि मनमोहनी-बिलासु।
निपट कृपानी कपट की रति-सुषमा मुखबासु ॥४२॥

(कबित्त)

किधौं भयो उदित अनंगजू को अंग उर
सुरभित अंगरागु दाहै देह दुख को।
किधौं चितचातुरी चमेली चारु फूलि रही
फैल्यो बासु 'केसव' प्रकासकर सुख को।
किधौं परिमलु प्रेम पूरनावतंसनि को
किधौं बरबानी-बनमाल के बपुष को।
किधौं पाएँ प्रानपति हृदय-कमलु फूल्यो
ताको गंधु बंधु कि सुगंधु सुख मुख को ॥४३॥

अथ मुखराग-वर्णन—(दोहा)

अरुनोदय राजीव में अंगराग अनुरागु।
रूपभूप रतिराजु सो राजत सुख मुखरागु ॥४४॥

---

[३९] सुबेष-सुरेख (याज्ञिक०)। लक्षन०—लक्ष नव तीस (अन्यत्र)। बिधि-बिधु (याज्ञिक०)। [४३] बनमाल—बरमाल (बाल०)। [४४] भुप—रूप (याज्ञिक०)।

(कबित्त)

'केसोदास' राग रागिनीनि को कि अंगरागु
किधौं दुज सेवत हैं संध्या भली भोर की ।
अरुन रदन बहुरतन की खानि किधौं
तिनकी झलक झलकति चहूँ ओर की ।
किधौं भाषा भूषन की मनिनि को चाकचक्य
चितएँ तें चोरें लेतु तेरे चितचोर की ।
लागि रह्यो अनुरागु किधौं नाहनैननि को
किधौं रुचि राची तेरें तरुनि तमोर की ॥४५॥

अथ रसना-वर्णन-- (दोहा)

रसना कोमल बरनियै, कोबिद अमल अलोल ।
'केसव' देवी रसनि की, रसहि स्रवत मृदु बोल ॥४६॥

(कबित्त)

देखत हीं आधु पलु बाधिजति बाधा सब
राधाजू की रसना सुरूप की सी रानी है ।
आछी आछी बातनि की जननी सी जगमगै
रसनि की देवी किधौं पचि पहिचानी है ।
'केसोदास' सकल सुबासु कैसी सेज किधौं
सकल सुजानता की सखी सुखदानी है ।
किधौं मुखकंज में सकति कौनौ सेवैं दुज
सबिता की छबिता को कबिता निधानी है ॥४७॥

अथ वाणी-वर्णन-- (दोहा)

बानी बीना बेनु अलि-सुक-पिक किंनर गानु ।
सोभन सुभ बहु अर्थ मय 'केसवदास' बखानु ।४८॥

(कबित्त)

काम की दुहाई कि सुहाई सखी माधुरी की
इंदिरा के मंदिर में झाँई उपजति है ।
सुरनि की सोदरी कि मोद की कृसोदरी कि
चातुरी की मातु ऐसी बातनि सजति है ।
राग-रजधानी अनुराग ही की ठकुरानी
मोहे दधिदानी 'केसो' कोकिला लजति है ।

[४५] अरुन०-अरुन दसन बहु बरन (याज्ञिक०); बदन-हृदन (बाल०) । चितएँ०-चितचालि (सहज०) । [४६] रसहि०-सरस रसिक (अन्यत्र) । [४७] जननी-रानी (याज्ञिक०) । [४८] सुभ बहु-सोभन (याज्ञिक०) ।

एरी मेरी ब्रजरानी तेरी बर बानी किधौं
बानी ही की बीन सुख मुख में बजति है ॥४९॥

अथ कपोल-वर्णन--(दोहा)

मुकुर मधूक कपोल सम 'केसवदास' प्रमान ।
तिल प्रसून तूनीर सम सुक नासिका बखान ॥५०॥

(कबित्त)

किधौं हरि मनोरथ-रथ की सुपथ-भूमि
मीनरथ-मनहू की मति न सकति छ्वै ।
किधौं रूप-भूपति के आसन रुचिर रुचि
मिली मृगलोचन-मरीचिका-मरीचि ह्वै ।
किधौं श्रुति-कुंडल-मकर-सर 'केसोदास'
चितएँ तें चित चकचौंधि कै चलतु च्वै ।
गोरे गोरे गोल अति अमल अमोल तेरे
ललित कपोल किधौं मैन के मुकुर द्वै ॥५१॥

अथ नासिका-वर्णन--(कबित्त)

'केसव' सुगंध स्वास सिद्धनि की गुहा किधौं
परम प्रसिद्ध सुभ सोभन सुवासिका ।
किधौं मनसिज-मन-मीन की कुबैनी किधौं
कुंदन की सीव लोल लोचन बिलासिका ।
मुकुता लुलित पुरी ललित मुकुंद जू की
किधौं सुर सेइजति कासी की प्रकासिका ।
त्रिभुवन रूप ताको तुंग तोयनिधि ताके
तोय के तरंग की तरनि तेरी नासिका ॥५२॥

अथ नकमोती-वर्णन--(दोहा)

'केसव' आनँद-कंद-फल सुधाबुंद मकरंदु ।
मन-पतंग कौं दीपु गनि नकमोती जगबंदु ॥५३॥

---

[४९] उपजति–झलकति (बाल०) । मंदिर में–मंदिर की (याज्ञिक०) । सुरनि०–सुरन की सोदरी कि मोदक की सोदरी (याज्ञिक०); सुरनि की सुरी किधौं मोदइ की सोदरी (हरि०, सरदार०) । राग–राजै (बाल०) । बानी ही की बीन–बीना ही की कनी (याज्ञिक०) । [५०] मधूक–बंधूक (याज्ञिक०) । बखान–समान (याज्ञिक०) । [५१] मनहू-रथहू (बाल०) । मति-गति (हरि०, सरदार०) । कै चलतु--ह्वै चलतु (याज्ञिक०) । [५२] सुगंध-सुबास (याज्ञिक०) । सुबासिका--सभालिका (बाल०) । बिलासिका-सुभासिका (अन्यत्र) ।

(कवित्त)

'केसोदास' सकल सुबास को निवासु सखि
किधौं अरबिंद-मध्य बिंदु मकरंद को।
किधौं चंद्रमंडल में सोहत असुरगुरु
किधौं गोद चंद ही की खेलै सुतु चंद को।
बाढ़ै रूप काम गुन दिन दूनो होतु किधौं
चंद फूल सूँघतु है आनँद के कंद को।
नाक-नाइकानि हूँ तें नकमोती नीको नाक
मानौ मनु उरझि रह्यो है नंदनंद को ॥५४॥

अथ लोचन-वर्णन–(दोहा)

लोचन चारु चकोर सम चातक कुमुद तुरंग।
अंजनजुत अलि कामसर खंजन मीन कुरंग ॥५५॥

(कवित्त)

पिय-मन-दूत किधौं प्रेमरथ-पूत किधौं
भँवर अभूतबपु बासु के सुरंग हैं।
चितवत चहूँ ओर चित्तचोर स्याम
मुखचंद के चकोर किधौं 'केसव' कुरंग हैं।
बान-मद-भंजन के खेलिबे के खंजन कि
रंजन कुँवर कामदेव के तुरंग हैं।
सोभा-सर-लीन मीन कुवलय-रस-भीन
नलिन नवीन किधौं नैन बहुरंग हैं ॥५६॥

अथ अंजन-वर्णन–(दोहा)

बिष सिंगाररस-तूल तम पूरे पातक लाज।
मनरंजन अंजन सबै बरनत हैं कबिराज ॥५७॥

(कबित्त)

किधौं रसराज-रस-रसित असित किधौं
ललित बिसिष बिष बलित सभालिके।
किधौं जगु जीतबे कौं राजा रतिनाथ-हाथ
बाहन बनाए 'केसोदास' चल चालि के।
ब्रतघात पातक कि चित्त चोरिबे कौं तमु
देखिबे कौं नंदलालु लालि करें कालि के।

---

[५४] सोभित-राजति (याज्ञिक०)। रूप०–रूप गुन काम जिहि दिन दूनौ किधौं (याज्ञिक०)। [५५] कामसर–मीनसम (याज्ञिक०)। मीन–कंज (याज्ञिक०)। [५६] बासु के–बासक (याज्ञिक०)। [५७] पूरे०–पूरे पातक लाइ (याज्ञिक०)।

लागि रही लोकलाज खंजन-नयन किधौं
पिय-मन-रंजन कि अंजन हैं बालि के ॥५८॥

अथ भ्रू-युग-वर्णन—(दोहा)

भृकुटि कुटिल पल्लव धनुप रेखा खड़ग अनूप।
'केसवदास' सुपास सम बरनि श्रवन करि कूप ॥५९॥

(कबित्त)

किधौं लागी पंकज के अंक पंकलीक किधौं
'केसव' मयंक अंक अंकित सुभाइ को।
जंत्रु है सुहाग को कि मंत्रु अनुराग को कि
मंत्रनि कौं बीजु अध ऊरध अभाइ को।
आसनु सिंगार को कि काम को सरासनु कि
सासनु लिख्यो है प्रेम पूरन प्रभाइ को।
रोष रुष बेष बिष पियूष बिसेष मय,
भामिनी की भौंह किधौं भौनु हाइ भाइ को ॥६०॥

अथ कर्ण-वर्णन—(दोहा)

राग-रवन भाजन भवन, सोभत सुखद पवित्र।
'केसव' लोचन लाज के, मन के मंत्रिय मित्र ॥६१॥

(कबित्त)

रागनि के आकर बिराग के बिभागकर
मंत्र के भँडार गूढ़ रूढ़ के रवन हैं।
ज्ञान के बिबर किधौं तनक तनक तन
कनक-कचोरा हरि-रसु अँचवन हैं।
श्रुतिनि के कूप किधौं मन के सुमित्र रूप
किधौं 'केसोदास' रूप-भूप के भवन हैं।
लाज के नयन किधौं नयन-सचिव किधौं
नयन - कटाक्ष-सर - लक्ष्यक श्रवन हैं ॥६२॥

अथ कर्ण-फूल-वर्णन—(दोहा)

भनि मनिमय ताटंक जुगल, ललित लक्ष्य परिमान।
तरुन तरिनि चल चक्र से, 'केसव' कुसुम-समान ॥६३॥

(कबित्त)

पहिरें करनफूल देखी है कुँवरि एक
सुनहु कुँवर कान्ह सोभा सुखदानियै।

[५८] लालि करैं—ललचात (याज्ञिक०)। [६०] मंत्रनि-मंत्रिनि (याज्ञिक०)। [६१] राग-राधा (बाल०)। [६२] बिराग०—बिरागरि के बिभाकर (याज्ञिक०)। गूढ़ रूढ़ गूढ़ गूढ़ (याज्ञिक०)। [६३] यह दोहा याज्ञिक० में नहीं है।

तिनके तन की जोति जीते जोतिवंत अति
'केसव' अनंत गति कैसें उर आनियै।
मानौ बामदेव कामदेवजू के बैर-काम
साधै सर-साधनानि लक्षि उनमानियै।
दुहूँ दिसि दुहूँ भुज भृकुटी कमान तानि
नयन-कटाक्ष-बान बेधत न जानियैं ॥६४॥

अथ खुटिला-वर्णन--(दोहा)

चलदल-दल सी तीतुरी, जनु पताक मन मीन।
सरस करस आकास के दीसत दीप नवीन ॥६५॥

(कबित्त)

खुटिला खचित-मनि मोहन बनक बने
कनक-कलस-रुचि रुचिर रवन हैं।
तनक तनक तन तीतुरी तरल गति
मानहुँ पताका पीत पीड़ित-पवन हैं।
कालिंदी के कूल कूल जात जलकेलि कहँ
कालि ही सराहे मेरे काली के दवन हैं।
'केसोदास' सुंदर श्रवन ब्रज सुंदरी के
मानौ मनभावते के भावते भवन हैं ॥६६॥

अथ लिलार-वर्णन--(दोहा)

कनक-पट्टिका सम कहौं, 'केसव' ललित लिलारु।
सोभतु की सभा, अर्ध चंद्रमा चारु ॥६७॥

(कबित्त)

'केसव' असोकु किधौं सुंदरु सिंगार-लोकु,
कनक-केदारु किधौं आनंद के कंद को।
सोभा को सुभाव किधौं प्रभा को प्रभाव देखि
मोहे हरिराव सखी नंदनु सु नंद को।
चमकत चारु रुचि गंगा को पुलिनु किधौं
चकचौंधैं चितु मतिमंदहू अमंद को।
सेज है सुहाग की कि भाग की सभा सुभग
भामिनी को भालु किधौं भागु चारु चंद को ॥६८॥

---

[६४] देखी है-देखी मैं (याज्ञिक०)। कामदेव०-जू कै बैर काम कामदेव (याज्ञिक०)। [६५] चलदल०-चलदल-दल सी चातुरी धुजा किधौं निज मीन (याज्ञिक०)। [६६] तीतुरी-तीनु सी (याज्ञिक अ०)। मनि-मन (अन्यत्र)। कालिंदी सराहे-अति ही सराहे (याज्ञिक०)।

अथ अलक-वर्णन—(दोहा)

अलक चिलक-सों बरनियँ स्यामल सुमिल सुपास ।
अति चंचल अति चारु अति सूक्षम 'केसवदास' ॥६९॥
डारि डोरि डग डीठि गनि तम-त्रिय जमुना जानु ।
छाया-माया काम की काया कुसल बखानु ॥७०॥

(कबित्त)

'केसव' कसा किधौं अनंग की सुरङ्गमुखी
लोचन-कुरंगनि की चाल हटकति है ।
पिय-मन पासिबे कौं पासि सी पसारी किधौं
उपमा कौं मेरी मति भुव मटकति है ।
तरनि-तनूजा खेलै तारानाथ-साथ किधौं
हाथ परी तम की तरुनि मटकति है ।
सुनि लोललोचनी नवल निधि नेहनि की
अलका कि अलिक अलक लटकति है ॥७१॥

अथ मुखमंडल-वर्णन—(दोहा)

अमल मुकुर सम मानियै, कोमल कमल समान ।
अकलंकितु मुखु बरनियै, चारु चंद परिमान ॥७२॥

(कबित्त)

ग्रहनि में कीन्यो गेहु सुरनि दै देख्यो देहु
सिव सों कियौ सनेहु जाग्यो जुग चार्‌यो है ।
तपिन में तप्यो तपु जलधि में जप्यो जपु
'केसोदास' बपु-मास मासप्रति गार्‌यो है ।
उड़गन-ईसु द्विज-ईसु औषधीसु भयो
जद्यपि जगत-ईस सुधा सों सुधार्‌यो है ।
सुनि नंदनंद-प्यारी तेरे मुखचंद सम
चंद पै न भयो कोटि छंद करि हार्‌यो है ॥७३॥

अथ केशपाश वर्णन—(दोहा)

भौंर चौंर सैबाल तमु जमुना कौ जलु मेहु ।
मोरपक्ष सम बरनियैं 'केसव' सहित सनेहु ॥७४॥

---

[६९] सुमिल०-अमल सुबास (याज्ञिक०) । [७०] गनि०-गन तमरिपु (याज्ञिक०) । [७१] मुखी-लोल (याज्ञिक०); भूमि (रत्ना०) । भुव-भव (रत्ना०) । मटकति-पटकति (याज्ञिक०) । निधि नेहनि-नेहनिधि नीकी (याज्ञिक०) । [७२] चारु-चोख (याज्ञिक०) । [७३] सुरनि-देवनि (रत्ना०) । चंद पै-चंदहू (याज्ञिक०) । [७४] सहित-केस (याज्ञिक०) ।

(कवित्त)

कोमल अमल चल चीकने चिलक चारु
चितए तैं चितु चक चौंधिजत 'केसोदास'।
सुनहु छबीली राधे छूटैं तें छुवें छवानि
कारे सटकारे हैं सुभाव ही सदा सुबास।
सुनि कै प्रकास उपहास निसिबासर कैं
कीनो है सुकेसी बसबासु जाइ कै अकास।
जद्यपि अनेक चंद साथ मोरपक्ष तऊ
जीत्यों एक चंदमुख-रुख तेरे केसपास ॥७५॥

अथ शिरशोभा-वर्णन—(कबित्त)

जस-अनुराग-रेख सुंदर सिंगार में कि
सूर सोम करत हैं तेज तम-बल में।
किधौं गिरा गंगाजू के पूरनि की पूरी जोति
निकसि कै चाहै मिल्यो जमुना के जल में।
स्यामल सुमिल सुभ पाटिन में चारु माँग
अरुन जलज-सोभ सोभैं पल पल में।
मनो 'केसोदास' रूरे रूपे जातरूपहू की
कसी 'केसोराइ' लीक कसोटी अमल में ॥७६॥

अथ वेणी-वर्णन—(दोहा)

ऐसी बेनी बरनियैं 'केसवदास' बनाइ।
असि निसि जमुनाधार अहि अलि-अवली सुखु पाइ ॥७७॥

(कबित्त)

चंदनु चढ़ाइ चारु कुंकुम लगाइ पीछें
किधौं निसिनाथ निसि नेह सों दुराई है।
किधौं बंदी बंदन छिरकि क्षीर सापिनि-समीप
सुधानिधि सोधि सुधा-सीध आई है।
मेलि मालती की माल लाल डोरी गोरी गुही
बेनी पिकबैनी की त्रिबेनी सी बनाई है।
'केसोदास' हासरस मिलि अनुरागरस
किधौं रसराजरस-धारा धरा धाई है ॥७८॥

अथ बेंदा-वर्णन—(दोहा)

बेंदा बरनत सकल कबि 'केसव' ललित लिलार।
भाम सुहाग नरेस सम रबि ससि उदित उदार ॥७९॥

---

[७५] चिकुर–चिलक (याज्ञिक०)। [७७–७८] ये छंद याज्ञिक० में नहीं हैं।
[७९] बेंदा -बेंदी (याज्ञिक०)। सकल कबि–बुध सबै (याज्ञिक०)।

मॉग-फूल सिर-फूल सुभ बेनी-फूल बनाउ।
रूप-भूप जग-जोति जनु पूरन प्रगट प्रभाउ॥८०॥
मौतिनि की लरि सीस पर सोभति हैं इहिं भाँति।
चारु चंद्रिका की चमू घन मराल की पाँति॥८१॥

अथ शिरोभूषण-वर्णन—(कवित्त)

बेनी पिकबैनी की त्रिबेनी सी बनाइ गुही
कंचन कुसुम रुचि लोचननि पोहियैं।
'केसोदास' फैलि रही फूलि सीसफूल-दुति
फूल्यो तनु मनु मेरो न्यायैं हरि मोहियैं।
बदा जगमगतु जराय-जन्यो ताकी जोति
जीत्यो है अजित उपमा न आन टोहियैं।
मानौ इन पाँवड़ेनि पाइँ धरि आए दोऊ
सोहत सुहागु सिरभागु भाल सोहियैं॥८२॥

अथ अंगवास-वर्णन—(दोहा)

सहज सुबास सरीर की आकरषन-बिधि जानु।
अति अदृष्टगति दूतिका इष्टदेवता मानु॥८३॥

(कवित्त)

कमल बदन कर नयन चरन, कुच
कपुर कुरंगमद दृगनि बिलासु है।
भृकुटी कुटिल कच मेचक सुगंधमय
कुंद-कलिका से दंत, चंदन सो हासु है।
कुंकुम सरीर कुमकुमानि कौं स्वेद-नीर
अंबर कौं 'केसोदास' अंबर-बिलासु है।
मन-करषन-बिधि किधौं इष्ट-देवता
अदृष्टगति दूतिका कि सहज सुबासु है॥८४॥

अथ वसन-वर्णन--(कवित्त)

किधौं यह 'केसव' सिंगार की है सिद्धि किधौं
भाग की सहेली कि सुहाग को सहाउ है।
जोबन की जाया किधौं माया मनु मोंहिबे की
काया किधौं लाज की कि लाज ही की आउ है।
सारी जरकसी जगमगति सरींर किधौं
भूषन जरावही की जोति को जराउ है।

---

[८०] सुख–सम (याज्ञिक०)। पूरन–सूरज (याज्ञिक०)। [८१] यह छंद याज्ञिक० में नहीं है। [८२] न्यायै हरि–न्याइ मन (याज्ञिक०)। [८३] इष्टदेवता मानु–इष्टदेवता जानु (बाल०)। [८४] दृगनि–कटाक्ष (अन्यत्र)। चँदन--चंद्रिका (याज्ञिक०)। [८५] भाग–संग (रत्ना०)। सहाउ–सुहाउ (वही)।

लाख लाख भाँतिनि के प्रीतम के अभिलाष
पहिरे बनाइ किधौं सोभा को सुभाउ है ॥८५॥

अथ समस्त भूषण-वर्णन–(कवित्त)

बिछिया अनौट बाँकें घूघरी जराइ जरी
जेहरी छबीली क्षुद्रघंटिका की जालिका।
मुँदरी उदार पौंची कंकन वलय नीके चुरी
कंठ कंठमाल हार पहिरे गुपालिका।
बेनीफूल सीसफूल कर्नफूल माँगफूल
खुटिला तिलक नकमोती बनी बालिका।
'केसोदास' नीलबास ज्योति जगमगि रही
देहु धरें देखियति मानौ दीपमालिका ॥८६॥

अथ अंगदीप्ति-वर्णन–(दोहा)

कंचन केसर केतकी चपला चंपक चारु।
कमलकोस गोरोचना त्रिय-तन दुति-अवतारु ॥८७॥

(सवैया)

राधा के अंग गुराई-सी और गुराई बिरंचि बनावन लीनी।
कै मनु बुद्धि बिवेक सों एक अनेक बिचारनि मैं दृग दीनी।
बानिक तो सी बनी न बनाउत 'केसव' कैसे हूँ ह्वै गई हीनी।
लै तब केसर केतकी चंपक कुंदन के तन दामिनी कीनी ॥८८॥

अथ गति-वर्णन–(दोहा)

राजहंस कलहंस सम अति गति मंदबिलास।
महामत्त गजराज सी वरनत 'केसवदास' ॥८९॥

(कबित्त)

किधौं गजराजनि को राजति है अंकुस सी
चरन-बिलासनि कों आरस सजति है।
किधौं राजहंसनि की संकासक 'केसोदास'
किधौं कलहंसनि की लाज सी लगति है।
ललित अनंग-तरु-बलित सिंगार-बेलि
फूलि फूलि हाव-भाव-फलनि फलति है।
किधौं नंदलाल लोल लोचन की शृंखला कि
तेरी लोललोचनी अलोल अति गति है ॥९०॥

प्रीतम–पिय हिय (याज्ञिक०)। [८६] बलय-नवैया (अन्यत्र)। [८७] केसर–केतक (बाल०); कुंदन (अन्यत्र)। [८८] गुराई०-गुराइये देखि (याज्ञिक०)। केसर–केतक (बाल०)। [९०] अंकुस सी–अंकुस सिर (याज्ञिक०)। चरन-बिलासनि कों–किधौं पद सारस को (याज्ञिक०)।

अथ संपूर्ण-मूर्ति-वर्णन–(दोहा)

चंद्रकला उडु दामिनी कनक-सलाका देखि।
दीपसिखा ओषधिलता माला बाला लेखि ॥९१॥

(सवैया)

तारा सी कान्ह तराइन-संग अचंद्रकला निसि चंद्रकला सी।
दामिनी सी घनस्याम-समीप लसै उर-स्याम तमाल लता सी।
आधि की ओषधि काहे कौं 'केसव' काम के धाम में दीपसिखा सी।
सोने की सींक सी दूरि भएँ तँ मिलें उर में उरहार-प्रभा सी ॥९२॥

(छप्पय)

महि मोहन-मोहिनी-रूप महिमा रुचि रूरी।
मदन-मंत्र की सिद्धि प्रेम की पद्धति पूरी।
जीवन-मूरि बिचित्र किधौं जग जीव मित्र की।
किधौं चित्त की बृत्ति मृत्ति अभिलाष-चित्र की।
कहि 'केसव' परमानंद की आनँद-सक्ति किधौं धरनि।
आधार-रूप भव धरन कौं राधा ब्रजबाधा-हरनि ॥९३॥

(दोहा)

इहि बिधि बरनहु सकल कबि अबिरल छबि अँग अंग।
कही जयामति जीव जड़ 'केसव' पाइ प्रसंग ॥९४॥

इति नखशिख

अथ यमकालंकार–(दोहा)

अब्ययेत सब्ययेत पुनि, यमक बरनि दुहुँ देत।
अब्ययेत बिनु अंतरहि, अंतर सो सब्ययेत ॥९५॥

अब्ययेत आदिपत की यमक–(दोहा)

सजनी सज नीरद निरखि हरिख नचत इत मोर।
पीउ पीउ चातक रटत चितवैं हरि की ओर ॥९६॥

---

[९२] अचंद्रकला०–यो चंद्रकलानि सी (याज्ञिक०)। उर में०–उतै हार बिहार (याज्ञिक०)। उर स्याम–तन स्याम (याज्ञिक०)। याज्ञिक० में चरणों में १-४-३-२ का क्रम है, अन्यत्र १-२-४-३ भी है।

[९३] महि०–मोहनि मोहन रूप भूप उपमा रुचि रूरी (याज्ञिक०)। मूरि-मित्र (याज्ञिक०)। इसके अनंतर बाल० में २८ छंदो का शिखनख' भी है।

[९५] बाल० में यह नहीं है। दीन० में ये दो दोहे आदि में और हैं—
पद एकै नाना अरथ जिनमें जेतो बित्तु। तामें ताको काढ़िये यमक माहि दै चित्तु ॥
आदिपदादिक यमक सब लिखे ललित चित लाय। सुनहु सुबुद्धि उदाहरण 'केसब' कहत बनाय ॥
दुहुँ०–दुइ० (दीन०); करि हेत (सहज०)।

दूसरे चरण की यमक–(दोहा)

मान करत सखि कौन सों, हरि तू हरि तू आहि।
मान भेद को मूल है, ताहि देखि चित चाहि ॥९७॥

तीसरे चरण की यमक–(दोहा)

सोभति सोभा अंगननि, हींसत हय हयसार।
बारन बारन गुंजरत, दीने बिनु संसार ॥९८॥

चौथे चरण की यमक–(दोहा)

राधा 'केसव' कुवँर की, बाधा हरहु प्रबीन।
नेंक सुनावहु करि कृपा, सोभन बीन प्रबीन ॥९९॥

अथ आदि-अंत यमक–(दोहा)

हरि के हरि के बल मनहिं, सुनि बृषभानुकुमार।
गावहु कोमल गीत दै, सुखकरता करतारि ॥१००॥

अथ त्रिपाद यमक–(कबित्त)

सारस सारस नैनि सुनि चंद्र चंद्र-मुख देखि।
सुनि रमनी रमनीय तर तिनत हरिमुख लेखि ॥१०१॥

अथ द्विपदादि यमक–(दोहा)

अलिनी अलि नीरज बसैं, प्रति तरुबरनि पतंग।
त्यों मनमथ-मन-मथन हरि, बसें राधिका संग ॥१०२॥

अथ पादानुपादादि यमक–(दोहा)

आप मनावत प्रानप्रिय, मानिनि मानि निहारु।
परम सुजान सुजान हरि, अपनें चित्त बिचारु ॥१०३॥

द्विपादांत यमक–(दोहा)

जिन हरि सब को मन हर्‌यो, बाम बाम दृग चाहि।
मनसा बाचा कर्मना, हरि-बनिता बनि ताहि ॥१०४॥

उत्तरार्ध यमक–(दोहा)

आजु छबीली छबि बनी, छोड़ि छलनि के संग।
मिलौ तरुनि तरु के निकर, 'केसव' के सब अंग ॥१०५॥

अथ त्रिपाद यमक–(दोहा)

देखि प्रबाल प्रबाल हरि, मन मनमथ रस भीनि।
खेलन वह सुंदरि गई, गिरि सुंदरी दरीनि ॥१०६॥

---

[१०२] तरुप्रति–युगल बिहंग (दीन०)। [१०४] सब–जग (सरदार०, दीन०)!
[१०५] मिलौ०–तरुनि तरुनि के तर मिलै (वही); मिलौ तरुन तरु करुन कर (अन्यत्र)।

परमा-नद पर-मानदहि देखत बन-उपकंठ।
यह अबला अब लागिहै मन हरि हरि के कंठ ॥१०७॥
जूझि गयो संग्राम में, सूरज सूरज देखि।
दिव रमनी रमनीय तजि, मूरति रति सम लेखि ॥१०८॥

अथ चतुष्पादादि यमक—(दोहा)

नहीं उरबसी उर बसी, मदन मद न बस भक्त।
सुर तरवर तरवर तजैं, नंद नंद आसक्त ॥१०९॥

सव्ययेत—(दोहा)

अव्ययेत जमकनि सदा बरनहु इहि बिधि जानि।
करौं व्ययेत-बिकल्पना जमकनि की सुखदानि ॥११०॥

अथ द्विपदादि यमक—(दोहा)

माधव तो धव राधिका, पावहु कान्ह कुमार।
पूजत माधव नेम सों, गिरिजा को भरतार ॥१११॥

अथ आदि-अंत यमक—(दोहा)

सीय स्वयंबर माँझ जिन जुवतिनि देखे राम।
ता दिन तें तिन सब सखिनि, तजे स्वयं बर-धाम ॥११२॥

आद्यंत निरंतर यमक—(दोहा)

पाप नसत यों कहत ही, रामचंद्र अवनीप।
नीप प्रफुल्लित देखि त्यों, बिरही बिरह समीप ॥११३॥

आद्यंत सांतर यमक—(दोहा)

जैसें छुवै न चंद्रमा, कमलाकर सबिलास।
तैसें ही सब साधु पर-कमला करनि उदात ॥११४॥
अंग देस में लक्षियै लक्षी लक्ष सरूप।
अंगन में जैसे लसै, अंगनानि के रूप ॥११५॥
दान देत ज्यों सोभिजै, दानरतन के हाथ।
दानसहित ज्यों राजहीं, मत्त गजनि के माथ ॥११६॥
परम तरुनि यों सोभिजै, परम ईस अरधंग।
कल्पलता जैसी लसै, कल्पवृक्ष के संग ॥११७॥

चतुष्पादादि यमक—(दोहा)

नर-लोकहि राखत सदा, नरपति श्री रघुनाथ।
नरकनिवारन नाम जग, नर बानर को नाथ ॥११८॥

[१०७] मनु०—मनु मनहरि (याज्ञिक प्र०); मनुहरि हरि (दीन०) [१०६] बस-हित (बाल०)। [११०] यह दीन० में नहीं है। [११२] जाम—काम (याज्ञिक०)। [११५] लक्षियै—देखिये (दीन०)।

सुखकर दुखकर भेद द्वै, सुखकर बरने जानि।
जमक सुनौ कबिराज सब, दुखकर कहौं बखानि॥११९॥
मान-सरोवर आपने मानस मा नस चाहि।
मानस-हरि के मीन को मानस बरनहि ताहि॥१२०॥
बरनी बरनी जाइ क्यों, सुनि धरनी के ईस।
रामदेव नरदेवमनि, देवदेव जगदीस॥१२१॥
राजराज जगदीस द्विज-राज राज मनमान।
विष बिषधर अरु सुरसहित, बिष बिषम न उर आन॥१२२॥

(छंद)

अमान मान नाचहीं। अमान मान राचहीं।
समान मान पावहीं। बिमान मान धावहीं॥१२३॥

(दोहा)

कुमति हारि संहारि हठ, हितहारिनी प्रहारि।
कहा रिसाति बिहारि बन, हरि मनुहारि निहारि॥१२४॥

(छंद)

जौ तू सखि न कहूँ कछु चालहि। तौ हौं कहौं इक बात रसालहि।
तो कहुँ देउँ बनी मनिमालहि। मो कहँ तू मिलवै नँदलालहि॥१२५॥
जैसें रमै जयश्री करवालहि। ज्यों नलिनी जलजात सनालहि।
ज्यों बरखा हरखै बिनु कालहि। त्यों दृग देख्योई चाहैं गुपालहि॥१२६॥

(सवैया)

स्यंदनु हाँकत होत दुखी दिन दूरि करैं सबके दुख-दंदनु।
छंदनु जानी नहीं जिनकी गति नामु कहावत हैं नँदनंदनु।
फंदनु पंड के पूतनि कीरति काटि करै महि मोह-निकंदन।
चंदनु चेरी को अंग चढ़ावत देव अदेव कहैं जगबंदनु॥१२७॥

(चौपही)

सुर तरवर मै रंभा बनी। सुरत रव रमै रंभा बनी।
सुर-तरंगिनी कर किंनरी। सुरत रंगिनीकर किंनरी॥१२८॥

(दोहा)

श्रीकंठ-उर बासुकि लसत, सर्बमंगलामार।
श्री कंठ उर बासुकि लसत, सर्बमंगला मार॥१२९॥

(सवैया)

दूषन दूषन के जस भूषन भूषन अंगनि 'केसव' सोहै।
ज्ञान संपूरन पूरन कै परिपूरन भावनि पूरन जोहै।

---

[११८] बानर–बाहन (अन्यत्र)। नाथ-साथ (दीन०)। [१२१] बरनी-करनी (बाल०)। [१२२] जगदीस-सँग ईस (दीन०)। मन०-सनमान (वही)। बिषम न-बिषधर (बाल०)। [१२३] अमान-प्रमान (दीन०)। [१२६] नलिनी-अलिनी (याज्ञिक०, याज्ञिक

श्री परमानंद की परमा-पर मानंद की परमा कहि को है।
पातुर सी तुरसी मति को, अन्नदातुरसी तुरसीपति मोहै ॥१३०॥

(दोहा)

इहि बिधि औरहु जानिजहु, दुखकर जमक अनेक।
कहिहौं चित्र कबित्त अब, सुनिजहु सहित बिवेक ॥१३१॥

इति श्रीमद्विविधभूषणभूषितायां कविप्रियायां
विशिष्टालंकारवर्णने उपमालंकारवर्णनं
नाम पंचदश: प्रभाव: ॥१५॥

१६

अथ चित्र-कबित्त-लक्षण—(दोहा)

'केसव' चित्र-समुद्र में बूड़त परम बिचित्र।
ताके बूँदक के कनै बरनत हौं सुनि मित्र ॥१॥
अध ऊरध बिन बिदजुत, जति रसहीन अपार।
बधिर अंध गन अगन के गनिजत अगन बिचार ॥२॥
'केसव' चित्र-कबित्त में इनके दोष न देखि।
अक्षर मोटे पातरे ब व, ज य एकै लेखि ॥३॥
अति रति मति गति एक करि बहु बिबेकजुत चित्त।
ज्यों न होइ क्रमभंग त्यों बरनहु चित्र-कबित्त ॥४॥

अथ निरोष्ठक-लक्षण—(दोहा)

पढ़त न लागै अधर सों अधर बरन त्यों मंडि।
बरनहु, एक व बरन जहँ एक प बर्गहि छंडि ॥५॥

(कबित्त)

लोक लीक लीकी, लाज लीलत से नंदलाल,
लोचन ललित लोल लीला के निकेत हैं।
सौंहनि को सोच न सकोच लोकालोकनि को,
देत सुख सखी, ताकौं दूनो दुख देत हैं।

---

[१३०] पातुर०—मातुल सी तुलसीपति कों अवदातुलसी तुलसी० (बाल०)। [१] समुद्र—कवित्त (बाल०)। [३] कवित्त—समुद्र (दीन०)। [५] बरनहु०—और बरणं बरणी सबै उ पंवर्गहि सब छंडि (दीन०)। व बरन—उ बरन (अन्यत्र)। जहँ०—और एक

'केसोदास' कान्हर कनेर ही के कोरक से,
अंग रँगे राते रंग, अंत अति सेत हैं।
देखि देखि हरि की हरनता हरिननैनि,
देखौ कहा देखत ही हियो हरें लेत हैं ॥६॥

अथ मात्रारहित-लक्षण–(दोहा)

एकै स्वर जहँ बरनियै अदभुत रूप अ बर्न।
कहियो मात्रारहित यह मित्र चित्र-आभर्न ॥७॥

(कबित्त)

जग जगमगत भगत-जन-रस-बस,
भव-भर-सह कर करत अचल चर।
कनक-बसन तन असन अनल-बड़,
बटदल-बसन सजलथल थत्र कर।
अजर अमर अज बरन चरन धर,
परम धरम गन बरन सरन-पर।
अमल कमल बर बदन सदन जस,
हरन - मदंन - मद मदन-कदन-हर ॥८॥

अथ एकादि शब्द-वर्णन–(दोहा)

एक आदि दै बरन बहु बरनहु सब्द बनाइ।
अपने अपने बुद्धिबल समुझि सकल कबिराइ ॥९॥

अथ एकाक्षर शब्द-वर्णन–(दोहा)

गो गो गं गो गी अ आ श्री ध्री ह्री भी भा नु।
भू बि ख स्व ज्ञा द्यौ हि हा नौ ना सं भं मा नु ॥१०॥

अथ द्वि अक्षर शब्द-वर्णन–(होहा)

रमा उमा बानी सदा हरि हर बिधि सँग बाम।
क्षमा दया सीता सती कीनी रामा राम ॥११॥

अथ त्रि-अक्षर शब्द वर्णन–(दोहा)

श्रीधर भूधर केसिहा, 'केसव' जगत प्रमान।
माधव राघव कंसहा, पूरन पुरुष पुरान ॥१२॥

अथ चतुरक्षर शब्द-वर्णन–(कबित्त)

सीतानाथ सेतुनाथ सत्यनाथ रघुनाथ,
जगनाथ ब्रजनाथ दीनानाथ देवगति।

---

[६] लोका०—लोकहू को (बाल०); काहू लोकहू को (सहज०)। अंग०--वाह्य रंग राते अंग अंतस में (दीन०)। कहा--नहीं (बाल०)। हरें--हरि (दीन०)। [८) भर--भय (दीन०), हर (बाल०)। सह-हर (दीन०)। बसन--सयन (बाल०); मयन (अन्यत्र)। बरन--चरन (बाल०); रचन (अन्यत्र)। [९] समुझि०—समझैं सब (दीन०)। ध्री—घी (बाल०)।

देवदेव जक्षदेव बिस्वदेव ब्यासदेव,
बासुदेव बसुदेव दिव्यदेव दीनरति।
रनबीर रघुबीर जदुबीर ब्रजबीर,
बलबीर बीरबीर रामचंद्र चारुमति।
रमापति रामापति रामपति राधापति
रसपति रसापति रासपति राजपति ॥१३॥
इत्यादि जानिबो।

अथ षड्विंशाक्षरादि एकाक्षरांत-वर्णन—(दोहा)

आखर षटंबिसति सबै भाषा बरनि बनाउ।
एक एक घटि एक लगि 'केसवदास' सुनाउ ॥१४॥

अथ षड्विंशाक्षर-वर्णन—(दोहा)

चोरी माखन दूध घी ढूँढन हठि गोपाल।
डरौ न जल थल भटकि फिरि झगरत छन्नि सों लाल ॥१५॥

पंचविंशाक्षर—(दोहा)

चेटी चंदन हाथ कै रीझि चढ़ायो गात।
बिह्वल छितिधर डिंभ सिसु फूले बपुष न मात ॥१६॥

चतुर्विंशाक्षर—(दोहा)

अघ बक सकट प्रलंब हति मारयो गज चाणूर।
धनुष भंजि दिढ़ दौरि पुनि कंस मथे मदमूर ॥१७॥

त्रयोविंशत्यक्षर—(दोहा)

सूधी यशुमात नंद फुनि भोरे गोकुलनाथ।
माखन-चोरी झूठ हठ पढ़यौ कवन के साथ ॥१८॥

द्वाविंशत्यक्षर—(दोहा)

हरि दिढ़बल गोबिंद बिभु मायक सीतानाथ।
लोकप बिठ्ठल संखधर गरुड़ध्वज रघुनाथ ॥१९॥

एकविंशत्यक्षर—(दोहा)

जैसें तुम सब जग रचे दिये काल के हाथ।
तैसें अघ दुख काटि बलि करमफंद डिढ़ नाथ ॥२०॥

विंशत्यक्षर—(दोहा)

थके जगत समझाइ सब निपट पुरान पुकारि।
मेरे चित वे चुभि रहे मधुमद-माखन-हरि ॥२१॥

---

[१३] जग०—जदुनाथ (वाल०)। जक्ष०—जज्ञदेव (दीन०)। राम०—राजपति (दीन०)। राज०--राजपति (वही)। [१५] घी-घ्यौ (वाल०); घिव (अन्यत्र)। डरौ--दुरहु (वही)। [१६] चेटी--चेरी (वाल०),। [१७] मथे-हते (वाल०)। [२१] मधुमद--मधुमन (याज्ञिक प्र०), मधुमदमर्दन हारि (याज्ञिक)।

एकोनविंशत्यक्षर—(दोहा)

को जानै को कहि गयो राधा सों यह बात।
करी जु माखन चोरि बलि उठत बड़े परभात ॥२२॥

अष्टादशाक्षर—(दोहा)

जतन जमायो नेह-तरु फूलत नंदकुमार।
खंडत कसकत जी न अब कपट कठोर कुठार ॥२३॥

सप्तदशाक्षर—(दोहा)

बालापन गोरस हरे बड़े भए जिमि चित्त।
त्यौं 'केसो' हरि देह हू जो न मिलौ अब मित्त ॥२४॥

षोडशाक्षर—(दोहा)

तुम घर घर मँडरात अति बलिभुक से नंदलाल।
जाकी मति तुमहीं लगी कहा करै वह बाल ॥२५॥

पंचदशाक्षर—(दोहा)

जौ काहू तें वह सुनै ढूकत डोलत साँझ।
तौ सिगरौ ब्रज बूड़िहै वाके आँसुनि माँझ ॥२६॥

चतुर्दशाक्षर—(दोहा)

ढूँका ढाँकी दिन करौ टकाटका अरु रैनि।
यामहि 'केसव' कौन रसु घैरु करैं पिकबैनि ॥२७॥

त्रयोदशाक्षर—(दोहा)

कह्यो और को मैं सुन्यों मन दीनो हरि हाथ।
ता दिन तें बन बन फिरै को जानै किहि साथ ॥२८॥

द्वादशाक्षर—(दोहा)

काहू बैरिनि कें कहें जी जुरि गयो सनेहु।
टोरौं तौ टूटै नहीं कहा करौं अब लेहु ॥२९॥

एकादशाक्षर—(दोहा)

वे सब सोहैं काल्हि की बिसरी केसव' राज।
मुख देखौ लै मुकुर कर करी कलेऊ लाज ॥३०॥

---

[२२] बलि—छल (बाल०)। [२४] अब—तुम (दीन०) [२५]वह—सो (बाल०, दीन०)। [२६] तें—पै (बाल०, सरदार०, सहज०)। वह—यह (बाल०)। ढूकत—ढूँढत (याज्ञिक०, दीन०)। सिगरो—सारो (दीन०)। [२७] रसु—सुख (याज्ञिक०, दीन०, सरदार०, सहज०)। [२८] और को—परायो (बाल०)। ता—वा (बाल०)। [२९] तौ—हू (दीन०)। [३०] केसव- गोकुल (बाल०, दीन०)।

दशाक्षर—(दोहा)

लै वाके मन-मानिकहिं कत काहू के जात।
जब कोऊ जिय जानिहै सब कहिहैं को बात ॥३१॥

नवाक्षर—(दोहा)

चिचुनि चुनै अँगार-गन जाको करि जिय जोर।
सोही जो जारै जियैं कैसें जियैं चकोर ॥३२॥

अष्टाक्षर—(दोहा)

नैन न नेहहु नेकहु कमलनैन नउ नाथ।
मन बालनि के मोहि लै बेचे मनमथ-हाथ ॥३३॥

सप्ताक्षर—(दोहा)

राम काम सिव बस करे बिबुध काम सब साधि।
काम राम बर बस करे 'केसव' सों आराधि ॥२४॥

षडक्षर—(दोहा)

काम नाहिने काम के सब मोहन के काम।
बस कीनो मन सबनि को का बामा का बाम ॥३५॥

पंचाक्षर—(दोहा)

कमलनैन के नैन से नैन न कौनो काम।
कौन कौन सों नेम कै मिले न साम सकाम ॥३६॥

चतुरक्षर—(दोहा)

बनमालीं बन में मिले बनी नलिन-बनमाल।
नैन मिली मन मन मिली बैननि मिली न बाल ॥३७॥

त्र्यक्षर—(दोहा)

लगालगी लोपौं गली, लगें लागु लै लाल।
गैल गोप गोपी लगें, पा लागौं गोपाल ॥३८॥

द्वयक्षर—(दोहा)

हरि हीरा राही हरे हेरि रही ही हारि।
हर हर हीं हाहा ररौं हरे हरे हरि रारि ॥३९॥

प्रतिपदैकाक्षर—(दोहा)

गो गौ गी गो गंग गज जीजै जीजी जोजि।
रूरे रूरे रेरु ररि हाहा हुहू होहि ॥४०॥

---

[३३] न०—नवावहु (दीन०); नि नेबहु (सरदार०)। मोहि—हाथ (याज्ञिक प्र०), चोरि (बाल०)। [३४] सों—श्री (बाल०); सी (दीन०)। [३६] मिले—मिलत (बाल०)। साम—कान्ह (बाल०); स्याम (अन्यत्र)। [३९] हर०—रहि-रहि (दीन)। [४०] गो गौ-गोरौ (दीन०)। गंग—[illegible]

अर्धैकाक्षर-(दोहा)

केकी वेका कीक का कोकू काको कोकं ।
लोंलि लालि लोलै लली लाला लीला लोल ॥४१॥

एकाक्षर--(दोहा)

नोनी नोनी नौनि नै नोनें नोनें नैनं ।
नाना नन नं नाननै नन नूनं नूनै नं ॥४२॥

अथ बहिर्लापिका–अंतर्लापिका-वर्णन–(दोहा)

उत्तर बरन न बाहिरे बहिर्लापिका होइ ।
अंतह अंतरलापिका यह जानै सब कोइ ॥४३॥

अथ बहिर्लापिका--(दोहा)

अक्षर कौन बिकल्प को, जुवति बसति किहि अंग ।
बलि राजा कौने छल्यो सुरपति कें परसंग ॥४४॥
वामनु जानिबो ।

अथ अंतर्लापिका--(दोहा)

कौन जाति सीता सती, दई कौन कँहं तात ।
कौन ग्रंथ बरनी हरी, रामायन अवदात ॥४५॥

अथ गुप्तत्तोर-वर्णन--(दोहा)

उत्तर जाको अति दुर्यो दीजे 'केसवदास' ।
तासों गुप्तोत्तर सबै बरनत बुद्धि बिलास ॥४६॥

(सवैया)

नख तें सिख लौं सुख दै कै सिंगारि सिंगार न 'केसव' एक बच्यो ।
पहिराए मनोहर हार हियें सब गात सुगंध-समूह सच्यो ।
दरसाई सिरी कर दर्पन लै कपि कुंजर ज्यों बहु नाच नच्यो ।
सखि पान खवावत ही किहि कारन कोप पिया पर नारि रच्यो ॥४७॥
हास-बिलास-निवास सो 'केसव' केलि-बिधान-निधान दुनी में ।
देवर जेठ पिता सुत सोदर है सुख ही महिं बात सुनी में ।
भाजन भोजन भूषन भौन भरे जस पावन देवधुनी में ।
क्यों सब जामिनि रोवति कामिनि कंत करै सुभ गान गुनी में ॥४८॥
नाह नयो नित नेह नयो पर नारि तौ 'केसव' क्यों हूं न जोवै ।
रूप अनूपम भू पर भूप सु आनंद रूप नहीं गुन गोवै ।
भौन भरी सब संपति दंपति श्रीपति ज्यों सुखसिंधु में सोवै ।
देव सो देवर प्रान सो पूत सु कौन दसा सुदती जेहि रोवै ॥४९॥

---

[४१] केका-कोका (बाल०) । कोकू०-कोकु कीक का (दीन०) । [४२] नूनं-नूनै (दीन०) [४३] बरन न-ब्ररन जु (दीन०) । [४४] बसति-बरति (बाल०) । [४६] गुप्तो-त्तर-गढोत्तर (दीन०) । सबै-कहत (दीन) । [४६] नयो-नवो (बाल०) । तो-त्यों (दीन०) ।

अथ एकानेकोत्तर-वर्णन-(दोहा)

एकहि उत्तर में जहाँ उत्तर गूढ़ अनेक।
उत्तर एकानेक यह बरनत सहित बिबेक ॥५०॥
उत्तर एकु समस्त में व्यस्त अनेकनि मानि।
जोरि अंत के बर्न सों क्रम हीं बरन बखानि ॥५१॥

(छप्पय)

कहा न सज्जन बवत कहा सुनि गोपी मोहित।
कहा दास को नाम, कबित में कहियत को हित।
को प्यारो जग माँझ, कहा छत लागे वत।
को बासर कों करत, कहा संसारहि भावत।
कहि कहा देखि कायर कँपत आदि अंत है को सरन।
यह उत्तर 'केसवदास' दिय, 'सबै जगत सोभा धरन' ॥५२॥

अथ व्यस्त-समस्तोत्तर-वर्णन--(दोहा)

मिलै आदि के बरन सों 'केसव' करि उच्चार।
उत्तर व्यस्त समस्त सो साँकर के अनुहार ॥५३॥

(छप्पय)

को सुभ अक्षर, कौन जुवति जोधन बस कीनी।
बिजय सिद्धि संग्राम राम कहँ कौनें दीनी।
कंसराज जदुबंस बसत कैसें 'केसव' पुर।
बट सों कहिजै कहा नाम जानहु अपने उर।
कहि कौन जननि सब जगत की कमल नयनि सूछम बरुनि।
सुनि बेद पुरानन म कही सनकादिक 'संकरतरुनि' ॥५४॥

(कबित्त)

कोल को है धरी धरा धीरज धरम हित,
मारे किहि सूतु बलदेव जोर जव सों।
जाँचै कहा जग जगदीस पर 'केसोदास',
कौनें गायो रामायन गीत सुभ रव सों।
जस अंग अवदात जात बन ताननि सों,
कही कौन कुंती मात बात नेह नव सों।
बाम ग्राम दूरि करि देवकाम पूरि करि,
मोहे राम कौन सों संग्राम 'कुस लव सों' ॥५५॥

---

[५०] यह-तेहि (दीन०)। [५२] यह-तहँ (सरदार०); यक (दीन०)। [५४] सूक्ष्म०-कंचन बरनि (दीन०)।

अथ ब्यस्त गतागत उत्तर-वर्णन—(दोहा)

एक एक तजि बरन कों जुग जुग बरन बखानि।
उत्तर ब्यस्त गतागतनि एक समस्तनि आनि ॥५६॥

(कवित्त)

के हैं रस कैसें लई लंक, काहे पीत पट
होत, 'केसोदास' कौन सोभिजै सभा में जन।
भोगनि को भोगावत, कौनें गनैं भागवत,
जीत्यो को जतीन, कौन हें प्रनाम के बरन।
कौन करी सभा, कौन जुवती अजीत जग,
गावैं कहा गुनी, कहा भरे हैं भुजंगगन।
काहे मोहे पसु, कहाँ करें तपी तप, इंद्र-
जीतजू बसत कहाँ, 'नवरँगराय मन' ॥५७॥

(दोहा)

'केसवदास' बिचारि के भिन्न पदारथ आनि।
उत्तर ब्यस्त समस्त ते दुऔ गतागत जानि ॥५८॥

(सवैया)

दासनि सों, पर सों, परमान की बात सों, बात कहा कहिजै नय।
भूपनि कौं उपदेस कहा, किहि नेम बसै किहि जीति तजें भय।
आपु बिषैनि सों क्यों कहिजै, बिनु काह भए छितिपालन की छय।
न्याउ के बोल्यो कहा जम 'केसव' कैं अहिमेघ कर्‌यो 'जनमेजय' ॥५९॥

(रोला)

कै ग्रह, क्यों मधु हत्यो, प्रेम किहि पलुहत प्रभु-मन।
कह कमला को गेह, सुनत मोहत कह मृगगन।
कहाँ बसत सुख-सिद्धि, कबिन कौतुक किहि बरनन।
केहि सेए पितु मातु, कह्यो कबि 'केसव' 'सरवन' ॥६०॥

(दोहा)

उत्तरु ब्यस्त समस्त सों दुऔ गतागत आनि।
एकहि अर्थ समर्थ मति 'केसवदास' बखानि ॥६१॥

(सोरठा)

कंठ बसत को सात, कोक कहा बहु बिधि कहै।
को कहिजै सुर-तात, को कामी-हित 'सुरतरसु' ॥६२॥

---

[५६] बखानि-बिचारि (दीन०)। आनि-निहारि (वही)। [५७] अजीत०—अतीव कौन (बाल०)। पसु-मृग (याज्ञिक)। तप-तप्त (बाल०)। [५८] समस्त०—गतागतनि कछु समस्त के (दीन०)। [५९] नेम०—रूप भले (दीन०)। [६०] कह०-कहा कमल (याज्ञिक० दीन०)।

अथ शासनोत्तर – (दोहा)

तीनि तीनि सासननि को इक इक उत्तर जानि।
सासन-उत्तर कहत सब बुधजन ताहि बखानि ॥६३॥

(छप्पय)

चौक चारु करु, कूप ढारु, वरियार बांधु घर।
मुक्त-मोल करु, खग्ग खोलु, सिंचहि निचोल बर।
हय कुदाउ, दै सुरकुदाउ, गुन गाउ रंक को।
जानु भाउ, सब धाम धाउ धन ल्याउ लंक को।
यह कहत मधूकर साहि कहँ रह्यो सकल दीवान दबि।
तब उत्तर 'केसवदास' दिय 'घरी न, पान्यौ, जानु, कबि' ॥६४॥

अथ प्रश्नोत्तर – (दोहा)

जेई आखर प्रस्न के तेई उत्तर जानु।
इहि बिधि प्रस्नोत्तर सदा कहें सुबुद्धि-निधानु ॥६५॥

(दोहा)

को दंडग्राही सुभट, को कुमार रतिवंत।
को कहिये ससि तें दुखी, कोमल मन को संत ॥६६॥

(दोहा)

कालि काहि पूजै अली, को किल कंठहि नीक।
को कहिये कामी सदा, काली को है लीक ॥६७॥

अथ गतागत–वर्णन–(दोहा)

सूधो उलटो बाँचियै एकहि अर्थ प्रमान।
कहत गतागत ताहि कबि 'केसवदास' सुजान ॥६८॥

अथ गतागत-एकार्थ—(सवैया)

मासम सोह सजै बन बीन नबीन बजै सहसोम समा।
मानव हीरहि मोरद मोद दमोदर मोहि रही बन मा।
मारलतानि बनावति सारि रिसाति बनावनि ताल रमा।
मालबनी बलि 'केसवदास' सदा बस केलि बनी बलमा ॥६९॥

अथ गतागत भिन्नार्थ-वर्णन-(दोहा)

सूधो उलटो बाँचियै औरहि औरहि अर्थ।
एक सवैया मैं सुकवि प्रगटित होय समर्थ ॥७०॥

अनुलोम—(सवैया)

सैन न माधव, ज्यो सर 'केसव' रेख सुदेस सुबेस सबै।
नै नव की तचि जी तरुनी रुचि चीर सबै निमि काल फलै।

---

[६३] तीनि-दोय (दीन०)। सब-जिह (याज्ञिक०); है (दीन०)। [६४] हुब-बहु (याज्ञिक०)। पान्यौ-जारी (अन्यत्र)।

तै न सुनीं जस भीर भरी, धर धीर ब रीति सु कौंन बहै।
मैन मनी गुरु चाल चलै सुभ, सो वन में सर सीव लसै ॥७१क॥
सैल बसी रस में नव सोभ सु लै चल चारु गुनी मन मै।
है बन कोसु ति री बर धीर धरी भर भी सजनी सुन तै।
लै फल कामिनि बैस रची चिरु नीरुत जी चित्त की बननै।
बैस सबेसु सदेसु खरे बस कै रस ज्यो बध मान नसै ॥७१ख॥

अथ चित्र-लक्षण–(दोहा)

इंद्रजीत संगीत लै किये रामरस लीन।
छुद्रगीत संगीत लै भये कामबस दीन ॥७२॥

अथ गतागत चतुर्पदी

राकाराज जराकारा, मास मास समा समा।
राधा मीत तमी धारा, साल सीसु सुसील सा ॥७३॥

अथ त्रिपदी–(दोहा)

रामदेव नरदेव गति परसुधरन मद धारि।
बामदेव गुरदेव गति पर कुधरन हद धारि ॥७४॥

अथ चरणगुप्त–(दोहा)

राजत अँग रस बिरस अति सरस सरस रस भेव।
पग पग प्रति दुति बढ़ति अति बय नव मन मति देव ॥७५॥
सुबरन बरन सु सुबरननि रचित रुचिर रुचि लीन।
तन मन प्रगट प्रबीन मति, नवरँगराय प्रबीन ॥७६॥

अथ सर्वतोभद्र

सीता सीन नसी तासी, तार मार रमा रता।
सीमा कली लीक मासी, नर लीन नली रन ॥७७॥
कामदेव चित्त दाहि, बाम देव मित्त दाहि।
रामदेव चित्त चाहि, धाम देव नित्त माहि ॥७८॥

अथ चक्रबंध–(दोहा)

मुरलीधर मुख दरसि मुख संमुख मुख श्रीधाम।
सुनि सारसनैनी सिखे जी सुख पूजें काम ॥७९॥

अथ कमलबंध–(दोहा)

राम राम रम छेम छम सम दम जम श्रम धाम।
दाम काम क्रम प्रेम बम जम जम दम भ्रम बाम ॥८०॥

अथ धनुषबंध–(दोहा)

परम धरम हरि हेरहीं 'केसव' सुनै पुरान।
मन मन जानै नार द्वै जिय जस सुनत न आन ॥८१॥

---

[७२] इसके पहले कहीं-कहीं यह दोहा भी है—जैसो सूधो पाठ त्यों मंत्रि प्रसवगति भान। तासों कहियत मंत्रिगति गोमूत्रिका सुजान ॥

अथ पर्वतबंध--(सवैया)

या मय रागे सुतौ हित चोरटी काम मनोहर है अभया।
मीत अमीतनि कों दुख देत दयाल कहावत हीन दया।
सत्य कहौ कहा झूँठ म पावत देखौ वेई जिन रेखी कया।
या मय जे तुम मीत सवै स सबै सत भी मत गेय मया॥८२॥

अथ सर्वतोमुख--(सवैया)

काम अरै तन लाज मरै कब मानि लिये रति गान गहै रुख।
बाम बरै गन साज करै अब कानि किये पल प्रान दहै दुख।
धाम धरै धन राज हरै तब बानि बिये मति हानि लहै सुख।
राम ररै मन काज सरै सब हानि हिये अति आन कहै मुख॥८३॥

अथ हारबंध--(दोहा)

हरि हरि हरि ररि दौरि दुरिफिरि फिरि करि करि आरि।
मरि मरि जरि जरि हारि परि परिहरि अरि तरि तारि॥८४॥

डमरूबंध

नर सरब श्री सदा तन मन सरस सुर बसि करन।
नर कसि बर सु सकल सुख दुख हीनव जनि मरन॥
नर मन जीवन हीन रदय सदय मति मत हरन।
नर हत मति मय जगत 'केसवदास' श्रीवर सरन॥८५॥

अथ मंत्रीगतिबंध--(सवैया)

राम कहौ नर जानि हिये मृत लाज सवै धरि मौन जनावत।
नाम गहौ उर मानि किये कृत काज तवै करि तौन बतावत।
काम दहौ हर आनि हिये बृत राज जवै भरि भौन अनावत।
याम बहौ बर पानि पिये घृत आज अबै हरि क्यों न मनावत॥८६॥

(दोहा)

कामधेनु दै आदि सब कल्पबृक्ष-परजंत।
बरनत 'केसव' सकल कबि चित्र-कबित्त अनंत॥८७॥
यहि बिधि 'केसव' जानिये चित्र-कबित्त अपार।
बरनन पंथ बताय मैं दीनो बुधि-अनुसार।८८॥
सुबरन जटित-पदारथनि भूषन-भूषित मान।
कबिप्रिया है कबि-प्रिया कबि की जीवन-प्रान॥८९॥
पल पल प्रति अवलौकिबो पढ़िबो गुनिबो चित्त।
कबिप्रिया कों रक्षियौ कबिप्रिया ज्यों मित्त॥९०॥
अनल अनिल जल मलिन तें बिकट खलन तें नित्त।
कबिप्रिया कों रक्षियौ कबिप्रिया ज्यों मित्त॥९१॥
'केसव' सोरह भाव सुभ सुबरन मय सुकुमार।
कबिप्रिया के जानियै ये सोरह सिंगार॥९२॥

---

[८३] पल प्रान--प्रति प्रान (दीन०)। सुख-दुख (दीन०)।

त्रिगतिबंध–

इं	द्र	जी	त	सं	गी	त	लै	कि	ये	रा	म	र	स	लीं	न
छु	द्र	गी	त	सं	गी	त	लै	भ	ये	का	म	ब	स	दी	न

[कविप्रिया, २२७–७२]

कपाटबंध–

[कविप्रिया, २२७–७२]

अश्वगतिबंध–

[कविप्रिया, २२७–७२]

गोमूत्रिकाबंध–

इं	जी	सं	त	कि	रा	र	ली
द्र	त	गी	लै	ये	म	स	न
छु	गी	सं	त	भ	का	ब	दी

[कविप्रिया, २२७–७२]

गतागत चतुष्पदी–१

रा	का	रा	ज
मा	स	मा	स
रा	धा	मी	त
सा	ल	सी	सु

[कविप्रिया, पृष्ठ २२७–छंद ७३]

गतागत चतुष्पदी–२

राका	राज	जरा	कारा
मास	मास	समा	समा
राधा	मीत	तमी	धारा
साल	सीसु	सुसी	लसा

[कविप्रिया, २२७–७३]

त्रिपदी–१

रा	दे	न	वे	ग	प	सु	र	म	धा
म	व	र	व	ति	र	ध	न	द	रि
बा	दे	गु	दे	ग	प	कु	र	ह	धा

[कविप्रिया, २२७–७४]

त्रिपदी–२

राम	वन	देव	तिप	सुध	नम	धा
दे	र	ग	र	र	द	रि
बाम	बगु	देव	तिप	कुध	नह	धा

[कविप्रिया, २२७–७४]

त्रिपदी—३

राम	नर	गति	सुध	मद
देव	देव	पर	रन	धारि
बाम	गुर	गति	कुध	हद

[कविप्रिया, २२७–७४]

चरणगुप्त—

	५		४		३	
	रा →	जतअँ	ग	रसवि	र	
	स र ति	अतिस सभेव दुतिब	र प ढ़	ससर गपग तिअति	स प्र ब	
६	य	नवस	न ए	मतिदे	व	२
	सु ब र	बरन रननि रुचिली	ब र न	रनसु चितरु तनम	सु चि न	
७	प्र	गटप्र	बी	नमति	न	१
			८			

[कविप्रिया, २२७–७५, ७६]

सर्वतोभद्र—१

सी	ता	सी	न	न	सी	ता	सी
ता	र	मा	र	र	मा	र	ता
सी	मा	क	ली	ली	क	मा	सी
न	र	ली	न	न	ली	र	न
न	र	ली	न	न	ली	र	न
सी	मा	क	ली	ली	क	मा	सी
ता	र	मा	र	र	मा	र	ता
सी	ता	सी	न	न	सी	ता	सी

[कविप्रिया, २२७–७७]

सर्वतोभद्र—२

काम	देव	चित्त	दाहि
बाम	देव	मित्त	ताहि
राम	देव	चित्त	चाहि
धाम	देव	नित्त	नाहि

[कविप्रिया, २२७–७८]

सर्वतोमुख—१
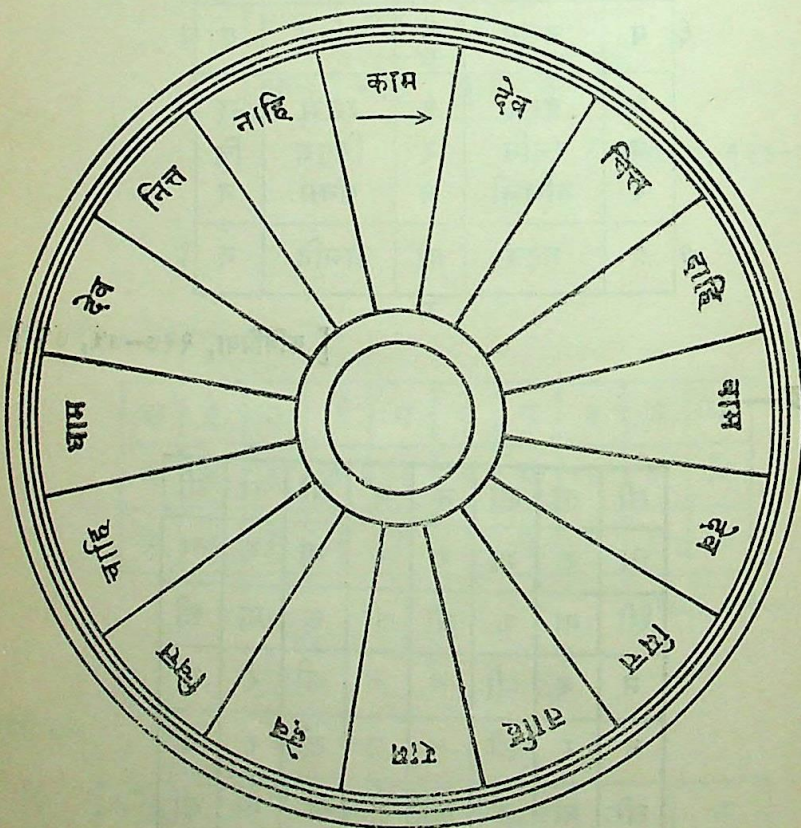
[कविप्रिया, २२७–७८]

चक्रबंध–
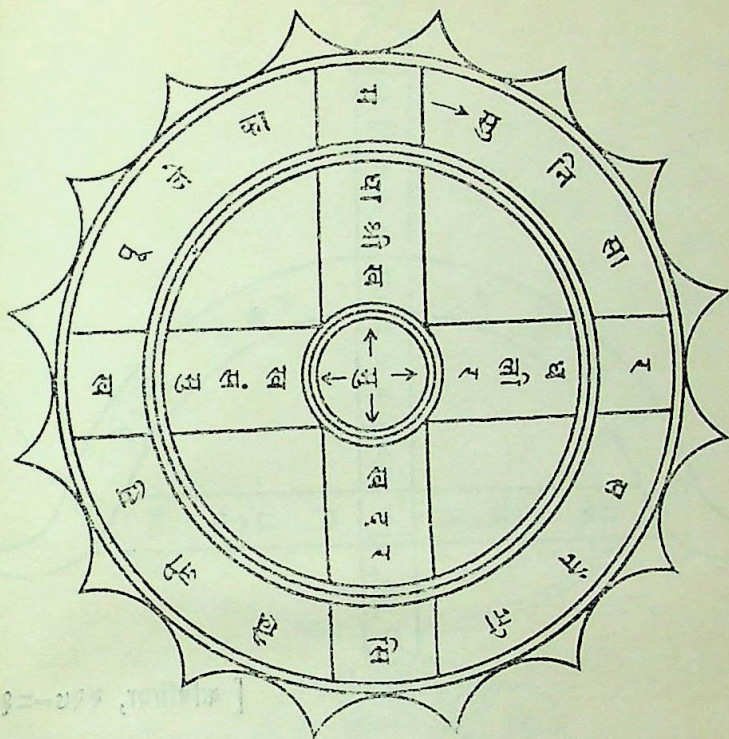
[कविप्रिया, २२७–७६]

कमलबंध–

[कविप्रिया, २२७–८०]

धनुषबंध–
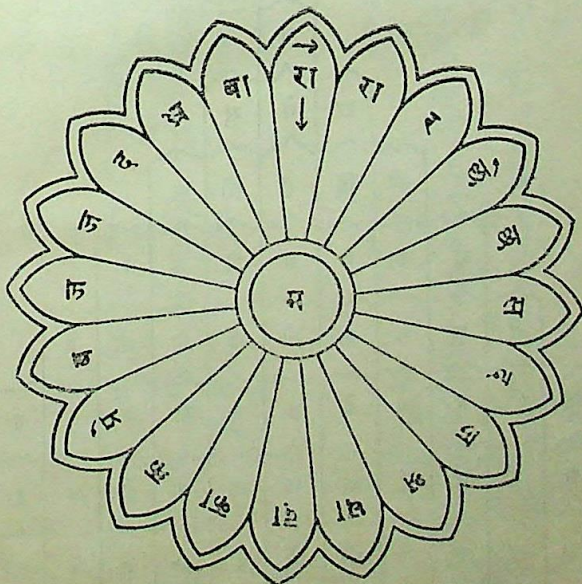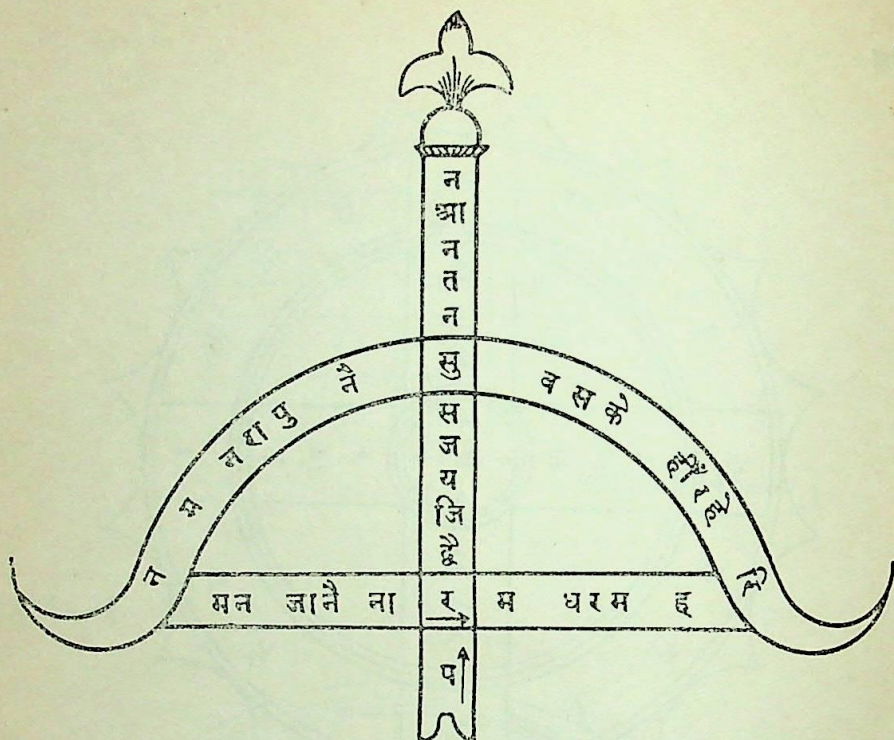
[कविप्रिया, २२७–८१]

पर्वतबंध–
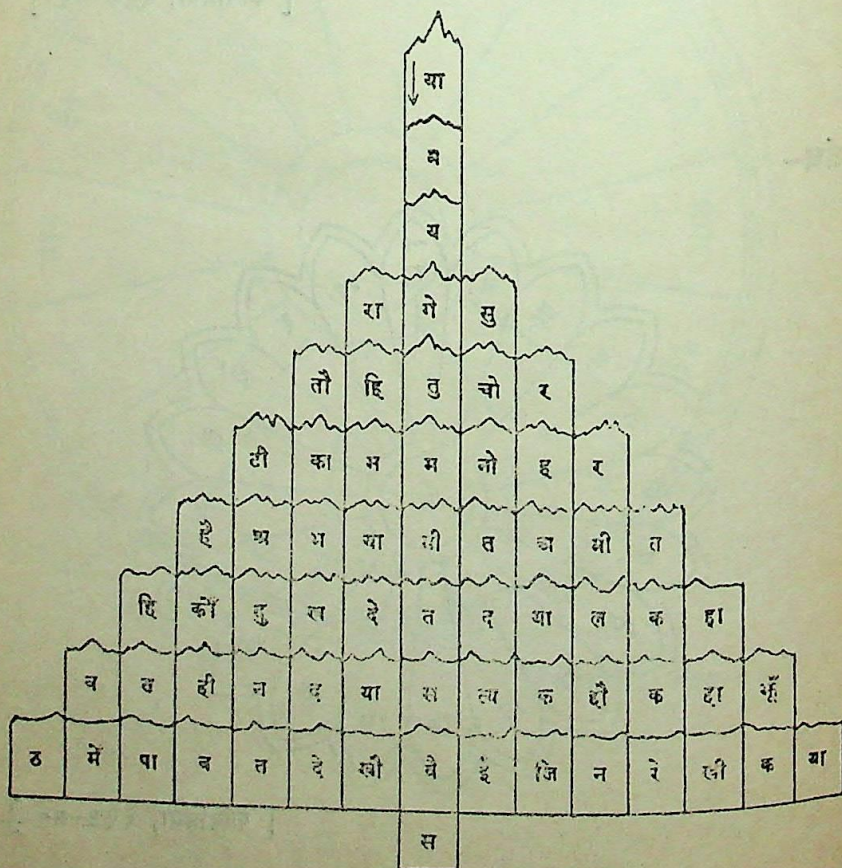
[कविप्रिया, २२५–८२]

सर्वतोमुख–२

[कविप्रिया, २२८–८३]
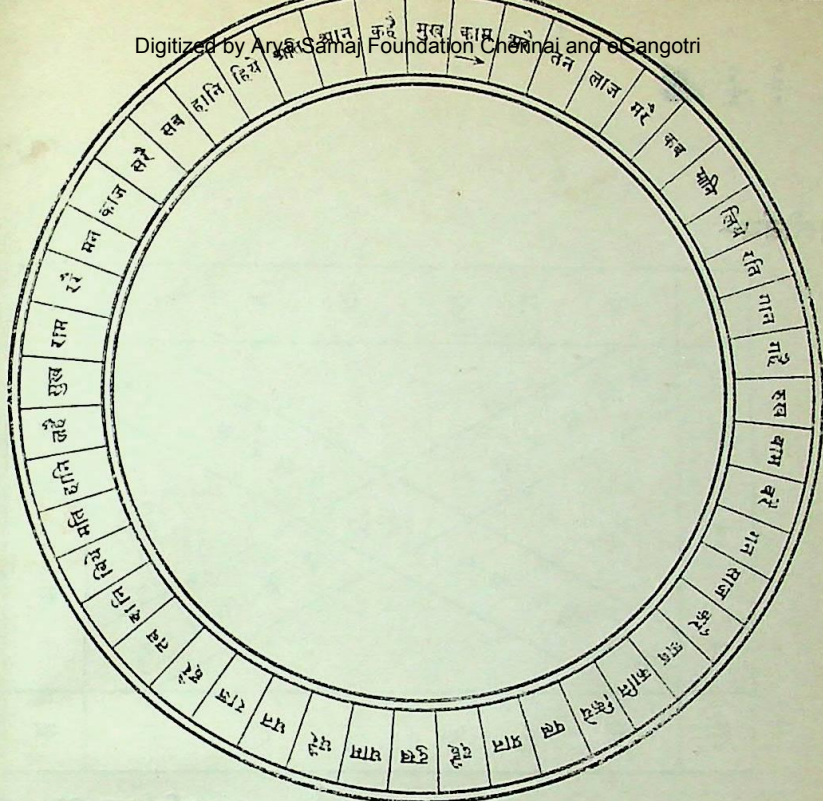
हारबंध–

[कविप्रिया, २२८–८४]
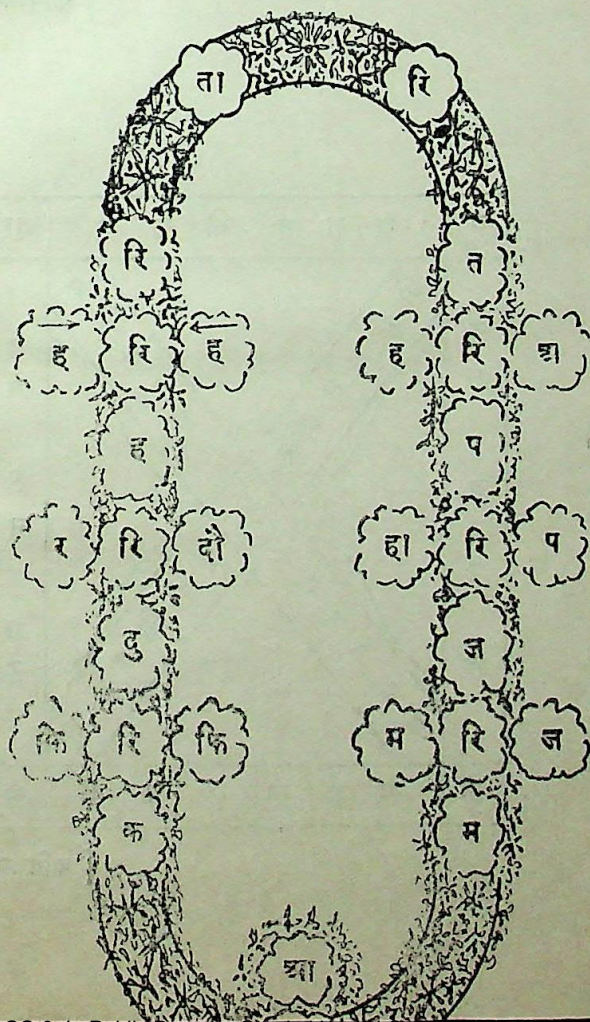
चौकीबंध–

य	ज ग त के स ब	दा
द स य द र न	मतिमतहर न रकलिबरसु नवजिनमर न रसरबश्रीस	त न म न स र
ही	ख दु ख सु ल क	स

[कविप्रिया, २२८–८५]

डमरुबंध–

[कविप्रिया, २२८–८५]